विकल्प

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन
Version- 2

23 जून 2018

श्रद्धेय श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह "विकल्प" शब्द के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

Version history

Version 0.1	Draft document created	Roshani Sahu	05 Nov 2017
Version 0.2	Draft document created	Roshani Sahu	23 June 2018

प्राक्कथन

सम्मानीय श्रेष्ठजनों ,

श्रद्धेय श्री ए. नागराज़ जी (प्रणेता–मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद) ने कहा है –

"शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के मूल में अस्तित्व में वस्तु होता है. वस्तु को इंगित करना ही शब्द का काम है। उसको पहचान लेना व्यक्ति का काम है. पहचान लिया = समझ में आया। नहीं पहचाना = समझ में नहीं आया। पहचान पूरा हो जाना = अध्ययन पूरा होना। अध्ययन पूरा होना = सह–अस्तित्व रुपी अस्तित्व में बोध संपन्न होना."

इसका उद्देश्य है कि प्रत्येक मानव शब्द के अर्थ के जरिये अस्तित्व में शब्द द्वारा इंगित वस्तु को पहचान सके, समझ सके और सही समझ के साथ निर्वाह कर सके।

मध्यस्थ दर्शन के विद्यार्थियों की व स्वयं की आवश्यकता को देखकर और उनके कहने पर मैंने दर्शन में प्रयुक्त शब्दों के संदर्भों का वाङ्ग्मय में से संकलन करना शुरू किया। इसी क्रम में "विकल्प" शब्द के संदर्भों का भी संकलन किया गया है। इस संकलन का उद्देश्य है कि जो भी भाई–बहन इस दर्शन का अध्ययन व शोध कर रहे हैं, उनको "विकल्प" शब्द के अर्थ व उद्देश्य को समझने में सहायता मिले।

श्रद्धेय श्री ए. नागराज़ जी के द्वारा रचित वाङ्ग्मय से ही संकलित संदर्भों को आदरणीय बाबा जी को समर्पित करते हुए अत्यंत खुशी व परम कृतज्ञता का भाव महसूस हो रहा है।

इस संकलन के पीछे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मध्यस्थ दर्शन के सभी विद्यार्थियों और मेरे परिवार वालों का योगदान है।

आशा है कि हम सभी विद्यार्थियों के लिए यह संकलन उपयोगी साबित होगा। यदि इस प्रयास में कोई कमी रह गई हो तो आप मुझे इस ईमेल पर अवगत करा सकते हैं। आपके द्वारा दिये गए सुझावों का स्वागत है।

रोशनी साहू

05/11/2017

भिलाई

ईमेल – sahuroshani@gmail.com

विकल्प की परिभाषा

- हर समस्या का विकल्प समाधान, समस्या के स्थान पर समाधान।
- अपरिपूर्ण अवधारणा को पूर्णता की ओर गति प्रदायी तथ्य।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012, मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पेज नंबर: 167)

विकल्पात्मक दर्शन – मध्यस्थ दर्शन, सह अस्तित्ववाद।

विकल्पात्मक प्रावधान – समस्या के स्थान पर समाधान, अभाव के स्थान पर भाव, अज्ञान के स्थान पर ज्ञान, अविवेक के स्थान पर विवेक, दुष्टता के स्थान पर शिष्टता, अव्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012, मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पेज नंबर: 168)

अनुक्रमणिका

विकल्प शब्द को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1.	मानव व्यवहार दर्शन	६
2.	मानव कर्म दर्शन	७
3.	मानव अभ्यास दर्शन	१४
4.	मानव अनुभव दर्शन	१६
5.	समाधानात्मक भौतिकवाद	१७
6.	व्यवहारात्मक जनवाद	२७
7.	अनुभवात्मक अध्यात्मवाद	२८
8.	व्यवहारवादी समाजशास्त्र	२९
9.	आवर्तनशील अर्थशास्त्र	३५
10.	मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान	४६
11.	मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या	४८
12.	जीवन विद्या – एक परिचय	५१
13.	विकल्प एवं अध्ययन बिन्दु	५६
14.	मानवीय आचरण सूत्र	७५
15.	संवाद – भाग १	७६
16.	संवाद – भाग २	१०६

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- जागृत मानव परंपरा में हर परिवार में प्राप्त अर्थ का सदुपयोग धर्मनीति के रूप में तथा सुरक्षा राज्यनीति के रूप में प्रमाणित होता है। यही अखंड–समाज सार्वभौम–व्यवस्था का आधार है।

★ इस प्रकार धर्मनैतिक व्यवस्था तथा राज्यनैतिक व्यवस्था का क्षेत्र बिलकुल ही स्पष्ट है। जब यह दोनों व्यवस्थाएं एक दूसरे की पोषक अथवा पूरक न होकर, एक दूसरे की शोषक या एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने लगती हैं तभी सामाजिक असंतुलन उत्पन्न होता है और अमानवीयतावादी विचार एवं व्यवहार को पुष्टि मिलती है। **विकल्प** के रूप में मानवीयता की आवश्यकता उदय होती है। **(अध्याय:4, पेज नंबर: 28)**

- बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि तथा **विकल्पात्मक** ज्ञान जिस प्रकार के मानवकृत वातावरण से बोद्धगम्य होता हो इससे ही मानव के विकास व जागृति का मार्ग प्रशस्त होता है। **(अध्याय: 12, पेज नंबर: 87)**

- यह **विकल्प** अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में है। इस प्रस्ताव में मानव ही अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण देना प्रतिपादित है। साथ ही मानव ही प्रमाण होने का साक्षी को भी संजो लिया है। इस मुद्दे पर सर्वमानव का ध्यानाकर्षण करना आवश्यक है ही। इस क्रम में समुदाय चेतना से मानव चेतना, मानव चेतना से समाज चेतना में परिवर्तित होना ही महत्त्वपूर्ण घटना है। ऐसे स्थिति की सफलता मानव ही, शिक्षा–संस्कार पूर्वक, सर्वतोमुखी समाधान संपन्न होना ही एक मात्र उपाय है। इसे सार्थक बनाने के क्रम में ही मानव व्यवहार दर्शन, मानव के सम्मुख प्रस्तुत है। इस प्रकार समग्र विकास और जागृति को परंपरा में प्रमाणित करने हेतु एक मात्र इकाई मानव है क्योंकि अस्तित्व में केवल मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में है। भ्रमित मानव के द्वारा भ्रमित मानव के चार ऐश्वर्यों (रूप, बल, पद, धन) का शोषण होता है। **(अध्याय:17, पेज नंबर:150)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- इस धरती के ऊपरी सतह में जंगल, समुद्र और थोड़े भाग में मरूस्थली होना पाया जाता है। यह जंगल कैसा भी हो, जंगल के सर्वाधिक पेड़–पौधे, लता–गुल्य अपान वायु (कार्बन डाई आक्साइड) नाम से जाने वाले द्रव्य को अपना खाद्य पदार्थ बनाते हुए अथवा पाचन पदार्थ बनाते हुए प्राण वायु को अर्थात् ऑक्सीजन को प्रदान करता है। जबकि, कोयला और खनिज कोयले से निष्पन्न तेल–पेट्रोलियम को जितने भी यंत्रों में ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं अथवा प्रौद्योगिकी विधि से यंत्र संचालन में प्रयोग किया जाता है, इन सब के विसर्जित ईंधनावशेष में पाई जाने वाली प्राण घातक वायु (कार्बन मोनोआक्साईड) पर्यावरण के लिए अत्यंत घातक मानी जा रही है। इससे पता लगता है, ऐसे खनिज कोयला के मूल में जो बड़े–बड़े जंगल धरती में दबकर कोयले के रूप में आज प्रकट हैं, ऐसे दबने के पहले के जंगल वही द्रव्य अपने में पचा रखा है, इसी को अपना खाद्य पदार्थ बनाकर आकाशचुंबी वृक्ष बने रहे होंगे। ऐसी आकाशचुंबीयता की परिकल्पना को धरती में बनी हुई खनिज कोयले की मोटाई के आधार पर किया जाना स्वाभाविक है। वर्तमान में कहीं–कहीं, कोयले की 150 से 180 मीटर मोटाई की परत बिछी है। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि कितने बड़े–बड़े वृक्ष रहे होंगे। एक मीटर कोयला होने के लिए कम से कम दस मीटर वृक्ष की लम्बाई की आवश्यकता पड़ती है, इसकी सघनता गणितीय विधि से सभी समझ सकते हैं। इस प्रकार अपार कोयला बनाने के लिए कितने बड़े वृक्षों का जंगल रहा होगा, गणितीय विधि से ही इसको निकाला जा सकता है। सामान्य परिकल्पना में समाना ही बहुत मुश्किल है, परिकल्पना में यही लाया जा सकता है कि आकाशचुंबी सघन जंगल रहे होंगे। ऐसे जंगल भूमि के अंदर दबकर सैकड़ों हजारों वर्षों में कोयला हुआ होगा, वही जंगल प्राणघातक वायु (कार्बन मोनो ऑक्साईड) को पचाता रहा होगा, अब वही कार्बन मोनोऑक्साईड को पैदा करता है। अभी पौधे कार्बनडाईऑक्साईड पचाते हैं, ऑक्सीजन को पैदा करते हैं। यह सभी ज्ञानियों–विज्ञानियों को विदित हो चुकी है। इस बात का जिक्र यहाँ इसलिए कर रहे हैं कि इस धरती के लिए इसका प्रयोजन क्या है ?

  हम इस बात को समझ चुके हैं कि कोयला, कार्बन उष्मा को शोषित करता है। वातावरणीय ऊष्मा को अपने में ज्यादा से ज्यादा समा लेता है। इसका प्रयोग इस प्रकार कर सकते हैं कि एक समान स्थली में कोयला को पोते, एक दूसरे समान स्थली में सफेद को पोत दें। कड़ी धूप के समय कोयला जहाँ पोता रहता है, वहाँ पैर रखने से गरम लगता है, सफेद जहाँ पोता रहता है वहीं कम गरम लगता है। इस दोनों के बीच की स्थितियों को भी अन्य जगहों में देखा जा सकता है। इससे यह पता लगता है कि कोयला ज्यादा से ज्यादा ताप को अपने में पचा लेता है। धीरे–धीरे वितरित करता है। इस प्रमाण से हमें यह समझ में आता है कि इस धरती पर पहुँचने वाली ब्रह्माण्डीय उष्मा, इसमें सबसे अधिक सूर्य ऊष्मा, इस धरती पर पचाने की आवश्यकता रही। क्योंकि धरती अपने ऊष्मा संतुलन को बनाये रखने के उपरान्त ही धरती के सतह पर हरियाली सुरक्षित रही। हरियाली सुरक्षित रहने के उपरान्त ही कृमि, कीट, जीव, जानवरों का प्रकटन, उसके उपरान्त ही मानव का प्रकटन होना क्रमिक रचना वैभव के रूप में हम मानव को समझ में आता है। इस वैभव के मूल में धरती अपने में ऊष्मा संतुलन बनाये रखना एक प्रमुख उपलब्धि रही है। इसमें मानव का कोई योगदान नहीं रहा। इसी कोयले में समाहित तेल ही धरती में खनिज द्रव्यों के साथ परिपक्व हो कर खनिज तेल के रूप में उपलब्ध हुआ है। इसका भी संरक्षण धरती के अन्दर

उचित वातावरण के रक्षा कवच के साथ बना ही रहा। सुरक्षित रखने का तात्पर्य तेल तक प्राणवायु अर्थात् आक्सीजन के न पहुँचने देने के लिए वातावरण को बनाये रखना ही है।

इस प्रकार से हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि धरती की कम्पनात्मक गति के समान रूप में सम्पूर्ण खनिज में कम्पन और स्पन्दन, उससे अधिक रासायनिक द्रव्यों में स्पन्दन, उससे अधिक प्राण वायु में स्पन्दन, फलस्वरूप रचनाएं इस धरती पर प्रकट हैं। ये सब ऐसी संतुलित रचनाओं को प्रकट करने के अर्थ में, इसके पूर्व भूमि में सम्पन्न सम्पूर्ण क्रियाकलाप है, अतएव ये सब नियम पूर्वक ही सम्पादित हुई हैं, नियंत्रण और संतुलन पूर्वक अवस्थायें प्रकट हैं। इसे हम मानव को अच्छी तरह से समझने की आवश्यकता है और अनुशीलन पूर्वक संरक्षण, संवर्धन विधि से स्वयं को व्यस्थित कर लेने की आवश्यकता है। मानव के व्यवस्थित होने के मूल में ज्ञान, विज्ञान, विवेक का एक संगीतमय कार्यकलाप स्पष्ट रहने से है। यही कार्य–कलाप भाषा, कार्य–व्यवहार में नियोजित होकर प्रयोजनों को प्रतिपादित करता है। मानव का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करना ही है।

इस क्रम में मानव अपने तर्क से ऐसा सोचते हैं – सूर्य विकसित होने पर (स्वभावगति) धरती के लिए ऊष्मा कहाँ से मिलेगा, इस धरती पर यह हरियालियाँ कैसे रहेंगी, ये सब हरियालियाँ सूर्य प्रकाश के कारण है। इसमें समाधान का सूत्र हम स्वयं मानव में ही पहले कदम में ही मिल जाता है। मानव देह की निश्चित ऊष्मा (तापमान) विधि बनी हुई है। उसे हम अपने मापदंड के अनुसार 98–99^{0} फारेनहाइट रखते हैं। मापदंड का नाम थर्मामीटर माना जा रहा है। इस तथ्य को धरती पर जीता जागता मानव में देखा गया है कि जहाँ 0^{0} फारेनहाइट से नीचे तापमान है, वहाँ भी मानव रहता है, वहाँ के मानव शरीर की तापमान भी उसी सामान्य तापमान के रूप में नापा जाता है। इस धरती पर 120^{0} फारेनहाइट से अधिक ताप प्रभावित है, वहाँ भी मानव शरीर का वही सामान्य तापमान मापा जा रहा है, तभी मानव को स्वस्थ कहा जा रहा है। वातावरण के अनुसार ताप यदि बदल जाता है तो रोगी कहलाता है अथवा मर गया कहा जाता है। इस प्रमाण के आधार पर धरती का स्वास्थ्य भी विचार किया जा सकता है। धरती के वातावरण में जो ब्रह्माण्डीय किरण और ताप परावर्तित होकर धरती को स्पर्श करता है, इससे धरती का तापमान न बढ़ने, न घटने के लिए ताप पाचन व्यवस्था को धरती अपने स्वयं में से संतुलन बनाये रखना पहले वर्णित हो चुकी है। यह कोयले के परत के रूप में धरती में समायी हुई है। मानव अपने अविवेक वश और प्रलोभन वश धरती का पेट फाड़ दिया, कोयले को निकाल लिया, धरती तापग्रस्त हो गयी। कोई भी विज्ञानी और प्रौद्योगिकी संसार इस जिम्मेदारी को स्वीकारने को तैयार नहीं है। इसका उपचार दर किनार रहा। इस विधि से हम कहाँ पहुँचेंगे, क्या हो सकता है ? पहले दुष्परिणाम का स्वरूप है कि धरती किसी तादात् से तप्त होने के उपरान्त इस धरती पर हरियाली जीव–जानवर, मनुष्य रह नहीं पायेंगे। दूसरी स्थिति में धरती के ताप ग्रस्त होने के उपरान्त उत्तर, दक्षिणी ध्रुव में जितनी भी बर्फ संग्रहीत हैं उस सबके पिघलने के स्थिति में ऊँचे–ऊँचे पर्वत शिखरों को छोड़कर सभी जगहों में जल मग्न की स्थिति हो सकती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य की क्या हालत हो सकती है, सभी सोच सकते हैं। तीसरे दुष्परिणाम की स्थिति यह भी हो सकती है कि इस धरती पर जब कभी पानी के रूप में यौगिक क्रिया संपादित हुआ, तब एक जलने वाले, एक जलाने वाले द्रव्य के सहज रूप में जुड़ने की स्थिति बनी ही होगी। उस समय जलने वाले, जलाने वाले उप द्रव्य दोनों को सामान्य बनाये रखने के लिए एकमात्र ब्रह्माण्डीय किरण ही उपादेय रहा है। ऐसे ब्रह्माण्डीय किरण बनाम विकिरण और विकिरणीयता के संसार

को आज का मानव पहचान चुका है। इस बात को ध्यान में रखने पर निम्न वर्णित कल्पना ध्यान में आती है, भले ही उक्त घटना घटित न हो। आज हम अपने ही अविवेक और प्रलोभन वश धरती को ताप ग्रस्त करते जा रहे हैं, परिणाम में धरती की सुरक्षा की संभावना न्यून हो गयी हैं। प्राणवायु की मात्रायें शनै:–शनै: घटने लगी हैं, प्राणवायु विरोधी द्रव्य बढ़ने लगा है, इसी को हम प्रदूषण कह रहे हैं।

ऐसी स्थिति में ब्रह्माण्डीय किरण जो पानी बनने के लिए संयोजक रहा है, ऐसे प्रदूषण के संयोजन वश इसके विपरीत घटना का कारण (पानी के विघटन का कारण) बन सकता है। ऐसी स्थिति में मानव का क्या हाल होगा? इस भीषण दुर्घटना का धरती के छाती पर हम जितने भी विज्ञानी कहलाते हैं, प्रौद्योगिकी संसार के कर्णधार कहलाते हैं, क्या इनके पास इसका कोई उत्तर है। इस बात का उत्तर देने वाला कोई दिखता नहीं। क्योंकि, जिम्मेदारी कोई स्वीकारता नहीं। यही इसका गवाही है। जिम्मेदारी स्वीकारने में परेशानी है, क्योंकि व्यक्ति प्रायश्चित के लिए उत्तर दायी हो जाता है। इसलिए इसके सुधार के लिए प्रयास ही एकमात्र कर्त्तव्य लगता है। इसकी औचित्यता अधिकाधिक लोगों को स्वीकार होता है।

चौथी विपदा धरती के ताप ग्रस्त होने के आधार पर धरती के चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र का विचलित होना भी एक संभवना है। इस धरती में उत्तर और दक्षिणी ध्रुव के बीच, स्वयं स्फूर्त विधि से चुम्बकीय धारा अथवा चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र बना हुआ है। इस बात को भी स्वीकारा गया है। इसी आधार पर दिशा सूचक यंत्र तंत्र बनाकर प्रयोग कर चुके हैं। इस विधि से जो ध्रुव से ध्रुव अपने संबद्धता को बनाये रखा है, इसके आधार पर ही धरती के ठोस होने का अविरल कार्य संपादित होता रहा। इससे धरती के परत से परत ऊष्मा संग्रहण, पाचन, संतुलनीकरण संपादित होती रही। इससे धरती का स्वास्थ्य, ताप के रूप में संतुलित रहने की व्यवस्था बनी रही है। अभी धरती के असंतुलित होने की घोषणा तो मानव करता है, किन्तु उसके दायित्व को स्वीकारता नहीं, इसलिए उपायों को खोजना बनता नहीं, फलस्वरूप निराकरण होना बनता नहीं। इस क्रम में आगे और धरती में ताप बढ़ने की संभावना को स्वीकारा जा रहा है यह इस बात के लिए आगाह करता है – ध्रुव से ध्रुव तक संबद्ध चुम्बकीय धारा, किसी ताप तक पहुँचने के बाद, विचलित हो सकती है, इससे यह धरती अपने आप में ठोस होने के स्थान पर बिखरने लग जाना स्वभाविक है। यह बिखर जाने के बाद धूल के रूप में मानव की कल्पना में आता है। इसके उपरान्त मानव कहाँ रहेगा, जीव जानवर कहाँ रहेंगे, हरियाली कहाँ रहेगी, पानी कहाँ रहेगा, पानी की आवर्तनशीलता की व्यवस्था कहाँ रहेगा। ये सब विलोम घटनायें मानव के मानस को काफी घायल करने के स्थिति में तो हैं।

इसके उपचार का उपक्रम यही है कि कोयले और खनिज तेल से जो–जो काम होना है, उसका **विकल्प** पहचानना होगा। कोयला और खनिज तेल के प्रयोग को रोक देना ही एकमात्र उपाय है। इसी के साथ विकिरणीय ईंधन प्रणाली भी धरती और धरती के वातावरण के लिए घातक होना, हम स्वीकार चुके हैं। विकिरण विधि से ईंधन घातक है, कोयला, खनिज विधि से ईंधन भी घातक है। इनके उपयोग को रोक देना मानव का पहला कर्त्तव्य है। दूसरा कर्त्तव्य है मानव सुविधा को बनाये रखने के लिए ईंधन व्यवस्था के **विकल्प** को प्राप्त कर लेना। यह **विकल्प** स्वभाविक रूप में दिखाई पड़ता है – प्रवाह बल को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर लेना। इस अकेले स्रोत के प्रावधान से, प्रदूषण रहित प्रणाली से, विद्युत ऊर्जा आवश्यकता से अधिक उपलब्ध हो सकती है। इसी के साथ समृद्ध होने के लिए हवा का दबाव, समुद्र तरंगों का दबाव, गोबर गैस, प्राकृतिक गैस जो स्वभाविक रूप में धरती के

भीतर से आकाश की ओर गमन करती रहती है, ऐसे सभी स्रोतों का भरपूर उपयोग करना मानव के हित में है, मानव के सुख समृद्धि के अर्थ में है। कुछ ऐसे यंत्र जो तेल से ही चलने वाले हैं, उनके लिए खाद्य, अखाद्य तेलों (वनस्पति, पेड़ों से प्राप्त) को विभिन्न संयोगों से यंत्रोपयोगी बनाने के शोध को पूरा कर लेना चाहिए। तभी मानव यंत्रों से प्राप्त सुविधाओं को बनाये भी रख सकता है। ईंधन समृद्धि बना रह सकता है। तैलीय प्रयोजनों के लिए जंगलों में तैलीय वृक्षों का प्रवर्तन किया जाना संभव है ही, सड़क, बाग बगीचों में भी यह हो सकता है। किसानों के खेत के मेंड़ पर भी हो सकता है, यह केवल मानव में सद्बुद्धि के आधार पर संपन्न होने वाला कार्यक्रम है। धरती के ऊपरी सतह में विशाल संभावनायें है, ऊर्जा स्रोत बनाने की, ईंधन स्रोत बनाने की। दबाव स्रोत, प्रवाह स्रोत, सौर्य ऊर्जा स्रोत, ये सब स्वभाविक रूप में प्रचुर मात्रा में हैं ही। इनके साथ ही तैलीय वृक्षों के विपुलीकरण की संभावना धरती पर ही है। धरती के भीतर ऐसा कुछ भी स्रोत नहीं है। जो है केवल धरती को स्वस्थ रखने के लिए है। यदि सही परीक्षण, निरीक्षण करें तो धरती के सतह पर ही संपूर्ण सौभाग्य स्रोत है। धरती के भीतर, ऊपरी हिस्से के समान या सदृश्य कोई स्रोत दिखाई नहीं पड़ती।

इसी क्रम में और भी एक तथ्य याद रखने योग्य है। धरती के पाताली जल स्रोत के ओर दृष्टि गयी, कुल 25–30 वर्ष में ही सर्वाधिक जगह में पाताली जल स्रोत क्षीण हो गया। फलस्वरूप, ऊपरी जल स्रोत सूख गया तालाब, बावड़ी सूख गये। मनुष्य बर्बादी की ओर चल दिया। इस मुद्दे पर थोड़ा सा ध्यान दें। धरती के ऊपरी हिस्से में जितनी विशालता है, हरेक 10 फुट में विशालता घटती जाती है। इसको परीक्षण, निरीक्षण हर विद्यार्थी कर सकता है। जैसे एक गोल वृत्त बनायें, यह आसानी से हाथ से भी बनता है, कम्पास से भी बनता है। उसके बाद आधे–आधे में एक–एक वृत्त भीतर बनायें, भीतर बना वृत्त छोटा होता जाता है, इस प्रकार धरती का भीतरी सतह ऊपरी सतह से छोटा ही होता जाता है। हम मानव भ्रमवश पाताली स्रोतों में ऊपरी सतह से ज्यादा मिलने के उम्मीद से जूझ गये। इससे भी अपूर्व क्षति घटित हो चुकी है। इस मुद्दे पर सार्थक विचार किया जाय तो यह निश्चित होता है कि पाताली जल का स्रोत धरती की ऊपरी सतह पर बहता हुआ जल ही है। इस धरती के ऊपरी हिस्से में जल फैला है, बह रहा है, इनकी आवर्तनशीलता बनी ही रहती है। यह सीधा सूर्य ऊष्मा के सम्पर्क में होने के फलस्वरूप, धरती पर जल का वाष्पित होना, यही वाष्प सघन होकर बादल के रूप में परिणित होना, ऐसे बना हुआ बादल किसी अवधि तक समृद्ध होना, ऐसे समृद्ध होने का फलन में पुनः धरती पर बूंद–बूंद के रूप में वर्षा होना, यह आवर्तनशीलता देखने को मिलता है। इसमें यही सार्थक होना सुनिश्चित होता है, धरती पर जल को ज्यादा जगह में फैला कर रोका जाय, रखा जाय। इसी से मानव का भविष्य सुरक्षित हो सकता है।

इसके साथ–साथ और भी ध्यान देने पर पता लगता है कि प्राणावस्था का वैभव, जीवावस्था और ज्ञानावस्था का वैभव, कार्यकलाप, कार्य–व्यवहार की शुभ स्थली धरती के ऊपरी सतह पर ही प्रमाणित है। ये तीनों अवस्थायें धरती के भीतर कहीं भी वैभवित नहीं हो पाती। इसी के साथ यह भी देखने को मिलता है, खगोलीय प्रकाश ऊपरी हिस्से में ही प्रतिबिम्बित होती है। धरती अपारदर्शी होने के आधार पर खगोलीय प्रकाश धरती में पारगामी होना संभव नहीं है। इन सभी तथ्यों पर मानव को ही ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि मानव ही धरती के भीतरी हिस्से में हस्तक्षेप किया है, इसका परिणाम अशुभ हो चुका है। इसका स्पष्टीकरण हो चुका है। मानव शुभ ही चाहता है। शुभ सूत्र और व्याख्या में पारंगत होने की आवश्यकता है। ऐसे शुभ सूत्र और व्याख्या अथवा सर्व शुभ सूत्र और व्याख्या के आधार पर सह अस्तित्व विधि अर्थात् नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक समाधान,

समृद्धि, अभय, सहअस्तितव को प्रमाणित करता हुआ जीता है। सार्वभौमता शुभ का सूत्र और व्याख्या है। इस बात को हम अच्छी तरह समझ चुके हैं। पहले व्याख्या कर चुके हैं, अखंडता सूत्र है सार्वभौमता व्याख्या है, इसका धारक–वाहक मानव ही है। यही जागृति का प्रमाण है, सौभाग्य का वैभव है। यही मानव की चाहत भी है, इसीलिए सभी अनुचित, अनावश्यक, अनर्थकारी प्रवृत्तियाँ, कार्य–व्यवहार, विन्यास, मानव के द्वारा भ्रमवश घटित हो चुकी, उसे जागृतिपूर्वक सुधार लेना ही मानव का सम्मान है, साथ में सौभाग्य है। (**अध्याय:3–7, पेज नंबर:81–87**)

- सापेक्षता में छोटे बड़े का बोध होता है। संपूर्णता ओझिल हो जाता है। संपूर्णता में ही प्रत्येक एक का सम्मान हो पाता है, मूल्यांकन हो पाता है। ऐसा मूल्यांकन और सम्मान प्रतिष्ठा की पहचान करने वाला मानव ही है। मानव जब संपूर्णता के साथ सहअस्तिव में प्रत्येक एक को प्रमाणित करता है, ऐसी स्थिति में मानव अपने स्वयं के संपूर्णता की ओर ध्यान देना स्वाभाविक होना पाया जाता है। इसके विपरीत सापेक्ष विधि से छोटे बड़े की ओर ध्यान जाता है। स्वयं को बड़ा मानना एक आवश्यकता हो जाता है। उसे बरकरार रखने के लिए अन्य को छोटा बनाये रखना भी एक आवश्यकता बन जाती है। इस क्रम में द्रोह, विद्रोह, शोषण, भूखमारी, तोपमारी सारे काम संपन्न होते हैं। जिसके प्रति जब संवाद होता है तब उसकी अनौचित्यता को स्वीकार करते हैं। इस ढंग से मानव अंतर्विरोधी हो जाता है। इस प्रकार की स्थिति को हम न घर की न घाट की भाषा से संबोधित करते हैं। इसी से अनिश्चयता वाद तैयार होता है। फलत: मानव संपूर्ण प्रकार की कुंठा अथवा आवेश का शिकार हो जाता है। स्वभाव गति से दूर हो जाता है। फलस्वरूप असामाजिकता, अव्यवस्था हाथ आती है। अव्यवस्था रूपी अप्रत्याशित घटनायें घटित होती हैं। यह पूर्णतया मानव कुल के लिए अनावश्यक सिद्ध हुआ। इसीलिए इसके **विकल्प** में स्वभाव गति, स्थिति, निश्चयता के साथ निश्चित योजना सहित आशावादिता एवं प्रमाण संपन्न होना आवश्यक हो गया। यह सहअस्तित्व विधि से सर्वमानव के लिए समीचीन है। (**अध्याय:3 –11, पेज नंबर:** 109 –110)

- स्थिति गति अपने स्वरूप में दबाव और प्रवाह का संयुक्त रुप है। कुछ मिसाल में दबाव रहते हुए प्रवाह नहीं होता है। जैसे धरती के ऊपर पत्थर, धरती के ऊपर तालाब में पानी प्रवाह दिखाई नहीं पड़ता। धरती के ऊपर नदी में प्रवाह दिखाई पड़ती है। पानी के प्रवाह में दबाव सुस्पष्ट है। दबाव रहता ही है। पानी का प्रवाह ढाल की ओर, ढाल अन्ततोगत्वा समुद्र तक जुड़ना। इसलिए सभी नदी का पानी समुद्र तक पहुँचना, स्वभाविक विधि से अथवा नियति विधि से सुस्पष्ट हो चुका है। पानी का हर दबाव, प्रवाह दूसरे प्रकार के प्रवाह, दबाव में परिवर्तित हो सकता है। इसमें से दबाव ही परिवर्तन का प्रधान कारण है। जैसा पानी का वाष्प निश्चित दबाव के उपरान्त निश्चित प्रकार के यंत्रों को संचालित करने योग्य हो जाता है। जिसके फलन में चुम्बकीय विद्युत को पाया जाता है। इसमें से चुम्बकीयता दबाव के रुप में, विद्युत तरंग प्रवाह के रुप में होना स्पष्ट हो चुकी है। इससे यह पता लगता है कि कोई भी बल, दूसरे प्रकार के बल और प्रवाह का कारक बन सकता है। इसी विधि से तैलीय वस्तु को उष्मित करते हुए अर्थात् जलाते हुए कुछ यंत्रों को संचालित करना मानव परंपरा में सुलभ हो गया है। ऐसे यंत्रों से भी अनेक प्रकार के कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। जैसे धरती, पानी, हवा में चलने वाले यंत्रों के रुप में देखने को मिलता है। ऐसे तेल दहन प्रक्रिया से विद्युत पैदा करने वाले यंत्रों को संचालित किया जाता है। फलत: विद्युत चुम्बकीय प्रवाह और दबाव होता है। इसी प्रकार विकिरणीय द्रव्यों से भी उष्मा उद्गमन प्रक्रिया पूर्वक विद्युत प्रसारीय यंत्रों को भी

संचालित किया जाना मानव ने अभ्यास किया है। इनके विसर्जन अर्थात् खनिज, कोयला, तेल और विकिरणीय द्रव्यों का विसर्जन अथवा अवशेष प्रदूषण का कारण बन बैठा है। इस मुद्दे पर पहले अध्ययन कर चुके हैं। इसके **विकल्प** के संदर्भ में भी प्रस्ताव के रूप में पानी के प्रवाह बल की ओर ध्यानाकर्षण किया गया है। इसी के साथ हवा और समुद्री तरंग की ओर भी ध्यान जाना आवश्यक है। सूर्य उष्मा की ओर भी मानव का ध्यान जाना, चुम्बकीय विद्युत धारा को प्राप्त करने के क्रम से उत्साहित होने की आवश्यकता है। तभी मानव का प्रदूषण कारी नियति विरोधी, विकास विरोधी, जागृति विरोधी, मानव विरोधी, धरती के वातावरण विरोधी, महा अपराध परंपरा से मुक्ति पाना संभव है। यह अस्तित्व विधि से स्थिति गति को जाँचने पर पता लगता है (जाँचने का मतलब परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक निश्चय करने से है) कि सभी इकाईयों की स्थिति में बल, गति में शक्ति का प्रदर्शन, प्रकाशन किये रहते हैं। ऐसी स्थिति, छोटे से छोटे और बड़े से बड़े, सम्पूर्ण इकाईयों में समान रुप में होना पाया जाता है। स्थिति गति संपन्न इकाई व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी के रुप में होना पहले से स्पष्ट हो चुका है। स्थिति में बल संपन्नता का मतलब स्वयं में व्यवस्था का प्रमाण, गति में शक्ति का मतलब समग्र व्यवस्था में भागीदारी है। मूलत: हर इकाई व्यापक वस्तु में संपृक्त रहने के फलस्वरुप ऊर्जा संपन्नता, बल संपन्नता होना ज्ञातव्य है। हर इकाई के मूल में परमाणु ही है। परमाणु ही भौतिक, रासायनिक, जीवन क्रिया के रुप में कार्य करता हुआ सुस्पष्ट है। जीवन परमाणु अणु बंधन, भार बंधन से मुक्त तथा भ्रमवश आशा, विचार, इच्छा बंधन से युक्त रहते हैं। अन्य सभी परमाणु जो भौतिक रासायनिक क्रिया में भागीदारी करते हैं, ये सब अणु बंधन, भार बंधन से युक्त रहते हैं। ऐसे अणु बंधन, भार बंधन वश ही छोटी रचना, बड़ी रचना के रुप में रचित होना पाया जाता है। सबसे छोटी रचना परमाणु ही है। परमाणु ही अणु और अणु रचित रचना के रुप में वैभव को प्रकट करते हैं। ऐसे वैभव का स्वरुप सहअस्तित्व सूत्र से ही अनुप्राणित रहता है। जैसा, एक परमाणु में एक से अधिक अंश होना, एक अणु में एक से अधिक परमाणु होना, अणु रचना में एक से अधिक अणु होना, ये सब अपने आप में सहअस्तित्व सूत्र से अनुप्राणित रहने वाले प्रमाण है। रचनाओं में भौतिक रचना, रासायनिक रचना ही होते हैं। इन रचनाओं में एक दूसरे के लिए पूरक और उपयोगी होना सुस्पष्ट हो चुका है। इन सभी प्रजाति के अणु में, स्थिति और गति दोनों की अभिव्यक्ति निरंतर वर्तमान है। ये कभी रुकने वाला नहीं है। सदा–सदा से ये क्रियाकलाप और प्रकाशन वर्तमान ही है। इसीलिए मानव इन सबका अध्ययन करने योग्य इकाई के रुप में प्रस्तुत है। इसीलिए स्वयं भी स्थिति में व्यवस्था, गति में समग्र व्यवस्था में भागीदारी को मानव को प्रमाणित करना है। तभी मन: स्वस्थता का प्रमाण, परंपरा में प्रस्तुत होता है। मन: स्वस्थता के बिना मानव में सर्वतोमुखी समाधान होना संभव ही नहीं है। इसीलिए मन: स्वस्थता मानव के लिए अत्यावश्यक अथवा परम आवश्यक उपलब्धि है। **(अध्याय: 3 – 11, पेज नंबर: 110–112)**

- सह–अस्तित्ववादी ज्ञान, विवेक, विज्ञान विधि से हम धरती और मानव के सह अस्तित्व को ध्यान में ला सकते हैं। मानव और धरती का सहअस्तित्व समझ में आने की स्थिति में धरती का स्वास्थ्य वरीय स्थिति में आना, प्रदूषण मुक्ति का उद्देश्य वरीय स्थिति में आना, एक स्वाभाविक प्रक्रिया रहेगी। **विकल्प** पहले से ही स्पष्ट है। थोड़ा सा ध्यान देने की आवश्यकता है। **(अध्याय: 3 – 13, पेज नंबर:127)**

- जल प्रवाह बल को हम उपयोग करें न करें, प्रवाह तो हर देश काल में बना ही रहता है। ऋतु संतुलन की सटीकता, इन नदियों के अविरल धारा का स्रोत होना ही समझदार मानव को स्वीकार होता है। इसी के साथ वन, खनिज का अनुपात धरती पर कितना होना चाहिए, इसका भी ध्यान सुस्पष्ट होता है। इसमें ध्यान देने का बिन्दु यही है कि हर देश में विभिन्न स्थितियाँ बनी हुई हैं। हर विभिन्नता में वहाँ का ऋतु संतुलन अपने आप में सुस्पष्ट रहता ही है।

  विकल्प विधियों में अर्थात् प्रदूषण मुक्त विधि से हम विद्युत को जितना पा रहे हैं, उससे अधिक प्राप्त कर लेना आवश्यक है, ऐसे विद्युत से सड़क में चलने वाली जितनी भी गाड़ियाँ हैं, उसके लिए बैटरी विधि से विद्युत को संजो लेने की आवश्यकता है। जिससे छोटी से छोटी, बड़ी से बड़ी गाड़ी चल सके। उसकी उपलब्धि जैसा खनिज तेल उपलब्ध होता है, ऐसा हो सकता है। इसे हर समझदार व्यक्ति स्वीकार कर सकता है। जहाँ तक खेत में चलने वाली गाड़ी, हवा में चलने वाली गाड़ी की बात है, उसके लिए वनस्पति तेल को योग्य बनाकर उपयोग करेंगे। जल पर चलने वाले जहाजों के लिए वनस्पति तेल अथवा सूर्य ऊर्जा और बैट्री विधि तीनों को अपनाये रखेंगे। इस क्रम में मानव का मन सज जाये, मानव एक बार ताकत लगाये तो प्रौद्योगिकी संसार अर्थात् प्रवाह बल के साथ जूझते मानव जाति से प्रकृति के साथ होने वाले पाप कर्म, अपराध कर्म रुक सकते हैं। **(अध्याय: 3 – 13, पेज नंबर: 127)**

- सहअस्तित्ववादी नजरिए में ज्ञान संचार, विवेक संचार ही प्रधान मुद्दे के रूप में प्रस्तुत हुई। इसके बिना भ्रम के चंगुल से छुटकारा नहीं पाएगा। इसी के लिए लोकव्यापीकरण करने का प्रयोग का शुरुआत, शुरुआत में ही ज्ञान, विज्ञान, विवेक का सम्पूर्ण अध्ययन, निर्णय लेने का सूत्र, सम्भावना की व्याख्या ये सभी चीज **विकल्पात्मक** प्रस्ताव में समाहित है। यहाँ उल्लेखनीय मुद्दा यही है चिरकाल से मानव शरीर यात्रा का जिक्र इस धरती पर है ही। जीवन अपने में शाश्वत रूप में, चैतन्य इकाई के रूप में, अक्षय शक्ति, अक्षय बल के रूप में विद्यमान वर्तमान है ही। यह अनुकूल परिस्थिति बने रहते हुए, परिवार में ही क्रमिक संयोग होते आए। सर्व प्रथम मानव ईश्वरीयता, ईश्वर ही कर्त्ता के रूप में शरणागत होने की बात सोची। इसका अंतिम छोर तिरोभाव ही कल्याणमय होने की स्थिति, इसी के लिए सारा ताना–बाना, इसमें मानव भरोसा न पाने के फलस्वरूप ही सुविधा संग्रह की ओर दौड़,यह सबको न मिलने के आधार पर इसमें तृप्ति बिन्दु का अभाव पुनः **विकल्पात्मक** स्वीकृतियाँ, इसी क्रम में सह अस्तित्व मानव सम्मुख प्रस्तुत हुई। **(अध्याय:3–16, पेज नंबर: 146)**
- जीवन ज्ञान जब तक नहीं होता रहा, तब तक हम यह मानने के लिए तैयार थे, बाध्य थे कि वंश के अनुसार रूप, गुण, संस्कार होते हैं। इस प्रकार की मान्यता के साथ जातिवादी, वंशवादी श्रेष्ठता की बहस और वकालत पहले चली। ये सब आज की स्थिति में टूट चुकी है। ब्रह्मवाद, आत्मवाद, जातिवाद, नस्लवाद ये सभी वाद विवादग्रस्त हो चुके हैं। फलस्वरूप, शंकाओं का घेरा बलवती होता जा रहा है। शरीर रचना के आधार पर चेतना निष्पन्न होने, बहने का जो आश्वासन था, वह भी विवादग्रस्त हो गया। अब आदमी कहाँ जाय, यही मुख्य मुद्दे की बात है। इसी 21वीं शताब्दी के पहले दशक तक 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक से शुरु हुई, एक **विकल्पात्मक** प्रस्ताव, सहअस्तित्व वादी विश्व दृष्टिकोण, मानव को एक अखण्ड समाज के रूप में, जाति, धर्म समझ अर्थात् ज्ञान, विज्ञान, विवेक और जीवन अर्थात् चैतन्य इकाई में समानता, अक्षय शक्ति, अक्षय बल के समानता और जागृति के स्वरूप में समानता को बोध कराने के लिए अध्ययन विधि प्रस्तुत हो चुकी है। **(अध्याय: 3–16, पेज नंबर: 152)**

सन्दर्भ :मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- अखण्ड समाज परम्परा में स्थापित मूल्य का निर्वाह ही शिष्टता की अभिव्यक्ति तथा "अर्थ" का सदुपयोग है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन में एकसूत्रता ही "न्याय"है। यही सार्वभौम कामना है, जो व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में, परिवार के सहयोग एवं सहकार्य में, समाज के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा में, राष्ट्र के संरक्षण तथा संवर्धन में एवं अंतर्राष्ट्रीयता के अनुकूल परिस्थिति एवं एकसूत्रता में चरितार्थ होती है। यही सर्व–मानव की कामना, मांगल्य, शुभ, संगीत, वांछनीय अनिवार्यता, ऐतिहासिक उपलब्धि, नियतिक्रम स्थिति, अखंडता, अभयता, सतर्कता एवं स्वर्ग है।

  अखण्ड समाज परम्परा में स्थापित मूल्यों के निर्वाह में ही शिष्टताएं समर्पित हैं। "अर्थ" का सदुपयोग मानवीयता में चरितार्थ होता है, जो जागृति में पायी जाने वाली सुखद स्थिति है।

  शिष्टता में वैविध्यता की संभावना देश–कालवश है। "अर्थ" के सदुपयोग में तथा स्थापित मूल्यों में **विकल्प** नहीं है। यही अखंडता एवं अक्षुण्णता का मूल तथ्य है। इससे ही अनुप्राणित जीवन नित्य–कार्यक्रम, उत्सव, समृद्धि, समाधान, उत्साह, सफलता, स्थिरता, शान्त, संतोष एवं सुख का अनुभव करता है। यही कामना मानव में अनन्त काल से है। (**अध्याय: 2, पेज नंबर: 32–33**)

- राज्य संस्था समाज का ही प्रतिरूप है। राज्य संस्था की प्रक्रिया का जनाकाँक्षा के विरोध में प्रस्तुत होना ही संघर्ष या क्रांति का कारण होता है। जनाकाँक्षा सर्वदा ही न्याय की पक्षपाती रही है। प्रत्येक संस्था की भ्रमित विचार रूप में भी मंगल कामना रही है। जब वह प्रक्रिया पद्धति, नीति व प्रणालीपूर्वक प्रस्तुत होती है तब जनाकाँक्षा व संस्था की परस्परता में जो अव्यवहारिकताएं रह जाती है, वही अप्रत्याशित घटनाओं के रूप में प्रकट होती है। यही परस्पर विश्वास के तिरोभाव के कारण होते हैं। फलत: विरोध का प्रार्दुभाव एक आवश्यकता बनती है। इसके दो **विकल्प** प्रसिद्ध हैं:–

  1. राज्य संस्था का मूल रूपात्मक दर्शन जिसके आधार पर निर्धारित विधि व व्यवस्था का सुद्दढ़ न होना अर्थात् मानवीयता पर आधारित न होना।

  2. राज्य संस्था की कार्य–सीमा में पायी जाने वाली जन–जाति में संस्कृति–सभ्यता का आधार मानवीयतापूर्ण न होना।

  संस्कृति एवं सभ्यता के संरक्षणार्थ ही विधि एवं व्यवस्था की स्थापना है। सभ्यता संस्कृति "में, से, के लिये" ही सामाजिकता है। सामाजिकता के लिये ही उत्पादन, वितरण, उपयोग व सदुपयोग होना आवश्यक है। इसी कारणवश विधि व व्यवस्था का ध्रुवीकरण एवं उसकी अक्षुण्णता सर्व स्वीकार्य है। यह मानवीयता पूर्वक सफल और अमानवीयता की सीमा में असफल सिद्ध हुआ है। (**अध्याय: 4, पेज नंबर: 67**)

- अपूर्णता ही तृष्णा, तृष्णा ही **विकल्पापेक्षा**, **विकल्पापेक्षा** ही सापेक्षता, सापेक्षता ही अपेक्षा, अपेक्षा ही गति, गति ही अग्रिम, अग्रिम उदय ही परिणाम– परिवर्तन– परिमार्जन, परिणाम– परिवर्तन– परिमार्जन ही गठन क्रिया एवं आचरण पूर्णता है यही जागृति क्रम और जागृति की आद्यांत स्थिति है जिसके संदर्भ में संपूर्ण अध्ययन है यही दर्शन है। **(अध्याय: 6, पेज नंबर: 82)**
- "मानव जीवन में गुणात्मक जागृति के लिए शिक्षा–संस्कार प्रसिद्ध है।" गुणात्मक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने का कार्यक्रम पद्धति, नीति, वस्तु, विषय, प्रणाली एवं प्रक्रिया ही मानव जीवन में शिक्षा–संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। यह क्रम से माता–पिता, परिवार, संपर्क, संबंध, शिक्षा मंदिर, शिक्षा संस्थान एवं मानवकृत वातावरण से सम्पन्न होता है। प्रत्येक मानव जन्म से जाति एवं वर्ग विहीन है। शिक्षापूर्वक ही उसमें वर्गीय, जातीय संस्कारों को स्थापित किया जाता है, जो मानवता के लिए वांछित घटना नहीं है। इसका **विकल्प** अर्थात् मानवीयतापूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता का अप्रचुर होना ही ऐसी अवांछित घटना के लिए विवशताएं हैं। इसका निराकरण मानवीयतापूर्ण जीवन चित्रण एवं ऐसी चेतना की परम्परा ही है, जो शुद्धत: मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता में विलीन होती है। गुरू मूल्य में लघु मूल्य का विलय होना पाया जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी में क्रम से शैशव, बाल एवं किशोरावस्था से ही माता–पिता, परिवार, शिक्षा मन्दिर, शिक्षा संस्थान, व्यवस्था–पद्धति, प्रचार, प्रकाशन,प्रदर्शन–समुच्चय द्वारा मानवीयता पूर्ण जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को उद्बोधन–प्रबोधन कराने वाली प्रक्रिया परम्परा ही वर्ग विहीन चेतना को प्रस्थापित करने का एकमात्र उपाय है। यही मानवीय संस्कृति का मौलिक देय है। संस्कृति एवं सभ्यता से संबद्ध शिक्षा सर्वसुलभ न होने से अखंड सामाजिकता में प्रत्येक व्यक्ति के भागीदार होने की संभावना नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका सर्वसुलभ होना अनिवार्य है। यही शिक्षा–संस्कार की गरिमा, महिमा एवं जीवन में अविभाज्यता है। **(अध्याय:7, पेज नंबर:102–103)**

सन्दर्भ :मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

- चैतन्य क्रिया में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प सक्रियता और उसका परिमार्जन, **विकल्प** भी प्रसिद्ध है। सत्यानुभव–योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से परिपूर्ण होने तक स्वीकृति रूपी परिपाक, परिमार्जन और जागृति सहज **विकल्प** की श्रृंखला बनी हुई है, जो पूर्णता एवं स्वतंत्रता हेतु मार्ग है। **(अध्याय:2, पेज नंबर:15)**
- "यह" आकार–प्रकारात्मक सीमा से बाधित नहीं है। अत: इसमें कोई संकल्प–**विकल्प** नहीं है। **(अध्याय:3, पेज नंबर:18)**
- ब्रह्म संकल्प–**विकल्पादी** क्रिया नहीं है। **(अध्याय:3, पेज नंबर:18)**
- ब्रह्म में प्रेरणा पाने– प्रदान करने के लिए संकल्प–**विकल्पादी** की पुष्टि नहीं है। **(अध्याय:3, पेज नंबर:19)**

सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण:2009)

- इस संघर्ष युग में "धार्मिक राजनीति" का पराभव हुआ और "आर्थिक राजनीति" की पराकाष्ठा हुई। इसमें एक और निष्कर्ष निकल कर आता हैं कि इस आर्थिक राजनीति संघर्ष युग और गणतंत्र प्रणाली के चलते शासन की संभावनाएँ टूट चुकी हैं। शासन की बुनियाद रहस्यमय होने से, राजगद्दी में बैठे हुए व्यक्ति के रहस्योद्घाटन हो जाने से ईश्वर स्वयं न तो किसी को मारने दौड़ता हैं न ही बचाने दौड़ता हैं – यह स्पष्ट हो जाने से तथा हर व्यक्ति संग्रह का उम्मीदवार होने से शासन की बुनियाद ही हिल चुकी हैं। अस्तु, इसका **विकल्प** समाधान युग का आरंभ होना है, जो स्वयं व्यवस्था के रूप में पल्लवित, पुष्पित व फलित होगा ही। (**अध्याय:2, पेज नंबर: 29–30**)
- परम्परा जागृत होने के क्रम में ही **विकल्पात्मक** दर्शन, **विकल्पात्मक** विचारधारा और **विकल्पात्मक** शास्त्रों को अर्पित करने के क्रम में ही यह "समाधानात्मक भौतिकवाद" एक प्रबंध है। इस प्रबंध में अस्तित्व सहज अध्ययन प्रस्तुत करना हमारी प्रतिबद्धता है। अस्तित्व निरतंर व्यक्त रूप है। इसका प्रमाण वर्तमान है। अस्तित्व स्वयं समाधान रूप है। मानव की भ्रमित बुद्धिवश सम्पूर्ण समस्याएँ मानव के लिए, समुदाय कल्पनावश मानव से निर्मित हैं। इस बीच नैसर्गिकता के साथ जो कुछ भी अपराध, अत्याचार मानव ने किया है, उसके कुछ परिणाम मानव को भयभीत करने के रूप में घटनाएँ देखने सुनने को मिल रही हैं। जैसे– प्रदूषण, ऋतु असंतुलन, भूमि के वातावरण में असंतुलन आदि। मानव के साथ मानव समुदाय चेतना के आधार पर विकसित, अविकसित के आधार पर जो कुछ भी द्रोह, विद्रोह और शोषण हुआ है, उससे युद्ध का प्रभाव और भावी महायुद्ध की संभावना ने मानव को आकुल–व्याकुल कर दिया है। आज मानव के पास समाधान की कोई दिशा न होने से मानव के प्रताड़ित, शोषित होने को स्वीकारने की विवशता में मानव आ गया है। पर इसका निराकरण एक विधि से है– वह है "समाधान विधि"। अस्तित्व स्वयं समाधान है, इसीलिए अस्तित्व सहज विधि से ही सर्वमानव के समाधानित होने का सूत्र और संभावना समीचीन है। इसकी आवश्यकता को अधिकांश लोग अनुभव कर रहे है। (**अध्याय:6, पेज नंबर: 104–105**)
- सह–अस्तित्व सहज रूप में विकास परमाणु में होने वाली प्रक्रिया है। इसी क्रम में गठन पूर्णता होती है। ऐसा गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य पद में संक्रमित होता हैं यही जीवन का स्वरूप है। इसमें पहला आशाबन्धन अर्थात् आशा में भ्रम, दूसरा विचार बंधन अर्थात् विचारों में भ्रम, तीसरा इच्छाबंधन अर्थात् इच्छाओं में भ्रम पाया जाता है। इन तीनों प्रकार से भ्रमित मानव भ्रम मुक्ति अर्थात् जागृति सुलभता पर्यन्त अव्यवस्था के चक्कर में पीड़ित रहेगा ही। परंपरा स्वयं भ्रमित है। मानव जाति को डूबाने का कार्य लाभोन्मादी अर्थ चिंतन, कामोन्मादी मनोविज्ञान, भोगोन्मादी समाज शास्त्र ने किया है। इसी के पक्ष में संपूर्ण प्रचार तंत्र कार्य करने को मिल रहा है। इससे छूटने के लिए ही **विकल्प** है–आवर्तनशील अर्थचिंतन, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान। रासायनिक–भौतिक वस्तुओं एवं उनके क्रियाकलापों को जब मानव व्यवस्था के रूप में देख पाता हैं तभी आवर्तनशील अर्थचिंतन सहज रूप में समझ में आता है। आवर्तनशीलता का मूल तत्व रासायनिक वैभव की पूरकता, भौतिक वस्तुओं के लिए और भौतिक वस्तुओं की पूरकता, रासायनिक वैभव के लिए अर्पित है ही; इसमें प्रधान तत्व मानव द्वारा इसे समझ लेना ही है। (**अध्याय: 6, पेज नंबर: 109**)

- अव्यवस्था तीन उन्मादों के रूप में व्याख्यायित होती हैं। मानव में सम्मोहनात्मक उन्माद लाभोन्माद, कामोन्माद तथा भोगोन्माद के रूप में सर्वेक्षित होता है। विरोधात्मक उन्माद द्रोह, विद्रोह और युद्ध के रूप में सर्वेक्षित है। इन्हीं छ: प्रकार के उन्मादों का स्वरूप दिखाई पड़ता है। इसके प्रभाव में कर्ता सहित सभी अव्यवस्था के रूप में दिखाई पड़ते है। अव्यवस्था मूलत: भ्रम है। ऐसे सर्वेक्षण को संपन्न करना तभी संभव है, जब मानव निर्भम हो और व्यवस्था का स्वरूप तथा अधिकार कम से कम एक मानव के पास हो। मानव इतिहास के अनुसार इस घटना की तीव्र प्रतीक्षा रही। इस बात को इस प्रकार से समझाया जा सकता है कि उन्मादित होते हुए भी मानव ही, इन उन्मादों के परिणाम स्वरूप जो अव्यवस्थाएँ हुई, उसकी समझ के बराबर में पीडि़त भी होते आया। भले ही यह सबमें न हुआ हो अधिकांश लोगों में अव्यवस्था की पीड़ा है। इस सर्वेक्षण के साथ यह भी देखने को मिलता है कि इन उन्मादों को लिए हमारी कला, शिक्षा और शासन रूपी व्यवस्था तंत्र सहायक हो गया है। **विकल्प** के लिए कोई कल्पना भी नहीं रही है इसलिए विवशता पूर्वक इसे झेलने के अलावा दूसरा रास्ता दिखता नहीं। इसी स्थिति में कराहते हुए अधिकांश व्यक्ति इस धरती पर पाये जाते हैं। ...**(अध्याय: 6, पेज नंबर: 148)**

- **विकल्प** के स्वरूप में अर्थात् अव्यवस्था के **विकल्प** में, व्यवस्था ही है। अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन व्यवस्था– सार्वभौम व्यवस्था, अस्तित्व सहज व्यवस्था, सह–अस्तित्व सहज व्यवस्था, रासायनिक–भौतिक रचना सहज व्यवस्था, विकास सहज व्यवस्था, जीवन सहज व्यवस्था और जीवन जागृति सहज व्यवस्था को स्पष्ट करता है। इसको अध्ययनगम्य कराना ही सह–अस्तित्ववाद का उद्देश्य है। "सह–अस्तित्ववाद" में "समाधानात्मक भौतिकवाद" एक प्रबंध है। **(अध्याय: 6, पेज नंबर: 149– 150)**

- भौतिक और रासायनिक क्रियाकलापों द्वारा सह–अस्तित्व सहज रूप में ही व्यवस्था और समाधान को प्रकाशित करना स्पष्ट हुआ हैं। सम्पूर्ण वस्तुएँ ही अपना अविभाज्यता वश सह–अस्तित्व रूप में स्पष्ट हैं जैसे अनन्त परमाणु, अनंत अणु, अनंत रचना और अनंत जीवन व्यापक सत्ता में संपृक्त हैं। अत: क्रियाशील है, "त्व सहित व्यवस्था" के रूप में सहअस्तित्व सहज वैभवित है। इस क्रम में मानव के अतिरिक्त संपूर्ण प्रकृति ही सह–अस्तित्व में "त्व सहित व्यवस्था" के रूप में व्याख्यायित है। मानव संस्कारानुषंगी व्यवस्था है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक मानव को समझदारी के साथ जीने का हक बनता है। परंतु साथ–साथ व्यवस्था को समझने की जिम्मेदारी भी है। समझदारी का स्रोत परंपरा ही है। इस क्रम में लाभोन्मादी, भोगोन्मादी, कामोन्मादी अध्ययन प्रबंधों और उपक्रमों के स्थान पर **विकल्प** के रूप में "कामोन्मादी मनोविज्ञान" का **विकल्प** "मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान" भोगोन्मादी समाज चेतना अथवा "भोगोन्मादी समाज शास्त्र" के स्थान पर "व्यवहारवादी समाजशास्त्र" **विकल्प** है। इसी प्रकार "लाभोन्मादी अर्थशास्त्र" के स्थान पर "आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था" का **विकल्प** के रूप में प्रतिष्ठित होना स्वाभाविक रहा है, क्योंकि उन्मादों से होने वाली पीड़ाओं से अथवा उन्मादों से होने वाली अव्यवस्थाओं की पीड़ा से अधिकांश मानव पीडि़त हो चुके हैं। भ्रम से बेहोशी की ओर जो घनीभूत होंगे, वे ही इस पीड़ा को नहीं समझ पाएँगे, ऐसे लोग भी कम ही होंगे। अस्तु, इन प्रबंधों को शिक्षा में अपना लेने से शिक्षा का मानवीकरण संभव हो सकेगा। ऐसे आवर्तनशील अर्थचिंतन, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान सहज ऐश्वर्य से संपन्न होने के लिए समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद की आवश्यकता, अनिवार्यता हैं ही, जो पहले स्पष्ट की जा चुकी हैं। ये सब उपलब्ध हो गए हैं। इन छ: प्रबंधों को पाने

के लिए अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण के प्रतिपादन सहज रूप में, मध्यस्थ दर्शन प्रतिपादित हुआ है। जो स्वयं मानव व्यवहार दर्शन, “मानव कर्म दर्शन” “मानव अभ्यास दर्शन” और “मानव अनुभव दर्शन” की अभिव्यक्ति हैं। इस दर्शन के आधार पर वाद और शास्त्र निर्गमित हुआ। इसे मानव परंपरा में अर्पित करने का संकल्प स्वयं प्रेरित है। इस अनुसंधान के मूल में, अव्यवस्था की समझ में जो पीड़ाएँ थीं, उन्हें दूर करना ही प्रधान कारण रहा है। (**अध्याय:6, पेज नंबर: 150– 152**)

- मानव में समाधान परंपरा प्रामाणिकता पूर्ण परंपरा ही वैभव है। ऐसी सहज परंपरा क्रम में प्रत्येक मानव ऐसी परंपरा में अर्पित होकर, जो एक व्यक्ति ने परम ज्ञान, परम दर्शन एवं परम आचरण किया है, उसे सभी व्यक्ति पा सकते हैं, आचरण कर सकते हैं। इसी के आधार पर मानव परंपरा में समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व प्रमाणित है। सह–अस्तित्व को जो एक व्यक्ति प्रमाणित करता है, उसे प्रत्येक व्यक्ति प्रमाणित कर सकता है। जो एक व्यक्ति “परम–त्रय” के आधार पर व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन को प्रमाणित करता है, उसे प्रत्येक व्यक्ति प्रमाणित कर सकता है। जो एक व्यक्ति में स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, “परम–त्रय” के आधार पर प्रमाणित करता है, उसे प्रत्येक व्यक्ति प्रमाणित कर सकता है। यही मानव परंपरा का संस्कारानुषंगी गरिमा, महिमा और वैभव है।

अभी इस क्रम में अर्थात् उपरोक्त कहे गये क्रम में, अस्तित्व में कुछ और अवस्था जुड़कर अथवा पाँचवीं अवस्था जुड़कर सर्व कल्याण मार्ग प्रशस्त होने की कल्पनाओं को क्यों नहीं किया? इसके उत्तर में इस बात को स्पष्ट किया कि:–

1. प्रत्येक मानव जागृत होना चाहता है।
2. प्रत्येक मानव जागृत होने के लिए “परम–त्रय” विधि को अपना सकता है।
3. प्रत्येक व्यक्ति जागृति और प्रामाणिकता पूर्वक ही व्यवस्था है और व्यवस्था में भागीदारी कर सकता है।
4. प्रत्येक मानव में “परम–त्रय” विधि से जागृति समीचीन है।

इसलिए और कोई आगे अवस्था पैदा होगी, उस समय में अर्थात् कल्पनातीत लंबे समय के बाद सर्वशुभ होने का दिन आवेगा, तब तक अपनी हविश पूरी कर लेवें। इस प्रकार की मनोगतवादी विधि से अपराधों को अपनाने को, इसे सवैध मानने की हठवादिता को त्याग देना चाहिए। मानवीयता में संक्रमित होना चाहिए और जागृत परंपरा को स्थापित कर लेना चाहिए। जिसमें मानवीयता पूर्ण शिक्षा, मानवीयता पूर्ण संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जिसमें सबकी भागीदारी को पा लेना ही सर्व शुभ स्थिति का, गति का प्रमाण है। यह मानव के लिए समीचीन है, इसीलिए मानवीयता में परिवर्तित होने की सहज सहमति सर्वाधिक मानव में प्रस्तुत है ही। अभी तक अव्यवस्था पर आधारित शिक्षा तथा परंपरा से छुटकारा पाने का **विकल्प** नहीं रहा है, इसीलिए सर्वाधिक मानव छटपटाते आया है। इस तरह जिस **विकल्प** की तलाश था, वह आ चुका है और किसी अवस्था के इंतजार की आवश्यकता नहीं है। (**अध्याय:7, पेज नंबर: 159–160**)

- मानव की मौलिकतावश अभी भी सामान्य मानव, परम्पराओं के निर्भ्रमित होने की प्रतीक्षा में है। इसी तारतम्य में यह निश्चय कर लेना आवश्यक हैं कि इस धरती में इस समय कोई भी परम्परा ऐसी नहीं हैं कि इस निर्भ्रमता का दावा कर सकें। इस विश्लेषण से एक शंका जन्मना स्वाभाविक है कि परम्पराओं में निर्भ्रमता का स्रोत नहीं है, इस शंका पर विचार करना भी एक आवश्यकता है। इसको ऐसा देखा जाता है, इसी की गवाही भी मिलती हैं परम्पराएँ भ्रमित रहते हुए भी, इन्हीं किसी परपंरा में अथवा प्रत्येक परंपरा में कभी–कभी कोई–कोई व्यक्ति परंपराओं के कथन से भी अच्छा होना पाया जाता है। इसका उदाहरण– आदर्श व्यक्तियों की सूची, प्रत्येक समुदाय परंपरा में, मानव इतिहास में रखी हुई हैं। इसके बावजूद आदर्श व्यक्तियों की कमी नहीं लेकिन कोई आदर्श परंपरा नहीं हुई, जिसे सभी अपनाते हुए हों। परम्पराएँ वैसे ही उतनी ही रह जाती है। इसमें एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि जब अच्छे आदमी रहे हैं तो परंपरा को क्यों नहीं सुधारें? जागृति के स्रोत क्यों नहीं बने ? –ऐसा भी सोचा जा सकता है। इसका उत्तर यही मिलता है कि अच्छा लगना व अच्छा होना में दूरी है, रहस्यमय आधारों पर जैसा ईश्वर, देवता, आत्मा जितनी भी अच्छाइयों की बात कहीं गई हैं, वह सब घोर तप के अनंतर ही प्राप्त होती है। यह सांत्वना मिलने वाली बात हैं। परन्तु हर व्यक्ति घोर तप कर नहीं कर सकता। हर व्यक्ति ठीक हो नहीं सकता। इन निर्णयों पर धर्मशास्त्र, कर्मशास्त्र सबको बदल देने के लिए, इसके **विकल्पात्मक** आधार का होना अनिवार्य हो जाता है, ऐसा **विकल्प** वस्तुवाद और विज्ञान के आधार पर आया भी। इसका उद्देश्य सबको अच्छा करना नहीं रहा, प्रकृति पर शासन करना प्रधान घोषणा रहा। साथ ही सबको वस्तु मिलने की अथवा मिलना चाहिए की, उम्मीदों को लेकर भिड़ पड़ा। उसका अनुमान भी सफल नहीं हुआ। जैसा प्रकृति पर शासन करने के स्थान पर प्राकृतिक प्रकोप की चपेट में कयामत होने की जगह में आ गये हैं। **(अध्याय: 9– 1, पेज नंबर: 192–193)**
- अस्तु, **विकल्प** की आवश्यक रही आई। **विकल्पात्मक** आधार अस्तित्व ही हैं, जिसका प्रतिपादन हुआ हैं। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में विकास रूप स्पष्ट हैं। यही व्यवस्था अथवा नित्य व्यवस्था के रूप में समझ में आया हैं। अब यह स्पष्ट हो गया कि **विकल्पात्मक** आधार सह–अस्तित्व है। इस आधार पर चिंतन करने वाला, समझने वाला, जीने वाला, प्रमाणित करने वाला मानव है। इसीलिए इसका नाम अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन है। इस प्रकार हम इस जगह पर आते हैं कि सभी व्यक्ति मानवत्व सहित व्यवस्था है और व्यवस्था में भागीदार होने का अधिकार अक्षय शक्ति, अक्षय बल संपन्नता के रूप में सभी व्यक्तियों में देखने को मिलता है। इसी आधार पर हर व्यक्ति जागृत होने योग्य है। इसके लिए अनुकूल और सफलात्मक विधि से **विकल्पात्मक** जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान के आधार पर विधिवत् विचारधारा एवम् समझदारी को संजोना एक आवश्यकता रहा है। इसी आधार पर "समाधानात्मक भौतिकवाद" मानव के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। इस प्रकार सबको जागृत होने का अधिकार है। दूसरी तरफ **विकल्पात्मक** दर्शन और ज्ञान, सह–अस्तित्व पर आधारित है। उल्लेखनीय बात यहाँ यह है कि :–

  1. सह–अस्तित्व में मानव अविभाज्य वर्तमान है।
  2. अस्तित्व में मानव दृष्टा है।

  इन आधारों पर अथवा इस नजरिये के आधार पर देखने की स्थिति में "मानव का मौलिक तर्क" भी पहचान सकते हैं। प्रयोजन सम्मत विश्लेषण, विश्लेषण सम्मत प्रयोजन, दूसरे तरीके से विवेक सम्मत विज्ञान व विज्ञान सम्मत विवेक ही मानव सहज मौलिक तर्क है। **(अध्याय: 9–1, पेज नंबर: 193–194)**

- मानवीयता मानव का स्वभाव है। यह जागृतिपूर्वक व्यक्त हो पाता है। जीवन ही जागृत होता है। व्यक्त करने वाला मानव ही हैं। यह तीन प्रकार से सार्थक होना पाया जाता है–

1. **धीरता**:– यह न्याय के प्रति निष्ठा, दृढ़ता और विश्वास के रूप में दिखाई पड़ता है। यह सब आचरण में प्रमाणित होते हैं। न्याय का मूल स्वरूप जो मानव में दिखाई पड़ता है, यह संबंधों की पहचान और मूल्यों का निर्वाह है। संबंध परस्परता में रहता ही है, उसे पहचानना जागृति है। निर्वाह करना निष्ठा है। मूल्यांकन करना व्यवस्था सहज गति है।
2. **वीरता**:– यह धीरता सहज रूप में जो अभिव्यक्तियाँ होती हैं, वे रहते हुए दूसरों को न्याय सुलभ कराने में, अपने तन–मन–धन को नियोजन करता है।
3. **उदारता**:– यह जागृत सहज रूप में हैं। अविकसित के विकास में, संबंधों को निर्वाह करने में, श्रेष्ठता को सम्मान करने में, परिवार; ग्राम परिवार; विश्व परिवार की उपयोगिता–सदुपयोगिता विधि से तन–मन –धन रूपी अर्थ को सदुपयोग सुरक्षा करते हैं। इस प्रकार धीरता, वीरता, उदारता मानवीय स्वभाव के रूप में देखने को मिलता है।

आज भी किसी–किसी व्यक्ति में इसे सर्वेक्षित किया जा सकता है। इसे सर्व जन सुलभ करने की योजना और कार्य के लिए प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार मानव सहज मानवीयता पूर्ण स्वभाव सहज रूप में ही मौलिकता हैं। ऐसी मौलिकता प्रत्येक नर–नारी में जीता–जागता मिलने के लिए व्यावहारिकता में प्रमाणित होने के लिए, परम्परा जागृत रहना एक अनिवार्य स्थिति है। ऐसे मानव सहज मौलिकता किसी समुदाय में अभी तक सार्थक रहा हो, प्रमाणित रहा हो, व्यावहारिक रहा हो, संविधान और व्यवस्था में पहचान बन चुका हो, शिक्षा परंपरा में प्रवाहित हो चुका हो, संस्कार परंपराओं में मानवीयता को पहचाना हो, ऐसा कोई उदाहरण अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए भी **विकल्प** की आवश्यकता, अनिवार्यता स्पष्ट होती है। (**अध्याय:9–1, पेज नंबर: 195 – 197**)

- यह बहुत आसान हो गया है कि मानव जीवन को पहचान सकता है। जीवन विद्या इसके लिए है। जीवन सहज समानता को प्रत्येक मानव में समझा जा सकता है। इसके लिए अध्ययन सहज **विकल्प**, "परमाणु में विकास और जीवन ज्ञान" हैं। इन दोनों ऐश्वर्य से संपन्न होने के उपरान्त ईश्वर, देवता आत्मा जैसे रहस्यों से मुक्ति पाने का क्रम अस्तित्व दर्शन से बनता हैं और स्पष्ट होता हैं कि मानव ही विकसित और जागृत होकर देवी–देवताओं के पद में हो जाते है। ये सब अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति क्रम में हैं। इसलिए मानव का इसको जागृति क्रम अथवा जागृति पूर्वक स्वीकारना सहज है। मानव कुल जागृत हैं इस बात का प्रमाण अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही है। इसमें भागीदारी के लिए जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहज परंपरा ही एक मात्र **विकल्प** हैं। इस नजरिए से किसी जीवन के अधिकारों को, स्वत्व को, स्वतंत्रता को हनन करना अव्यवस्था का द्योतक होता है। इसलिए जानवरों और मानवों का वध अव्यवस्था का द्योतक सिद्ध हुआ है। नियम–नियंत्रण–संतुलन, न्याय–धर्म–सत्य सहज विधि पूर्वक जीना ही सार्वभौमता और अखण्डता सूत्र है। (**अध्याय: 9–2, पेज नंबर: 215**)

- भ्रम परंपरा में, साधना विधि में, सिद्धों की पहचान में, सिद्ध स्थलों की पहचान में:–मानव शरीर को चलाते हुए, जागृति पूर्वक चलाने में अधिकांश लोगों को जो विपदा हैं, वह परंपरा की देन के रूप में ही विश्लेषित होती है। जीवन जागृति पूर्वक भ्रम मुक्त होना भी किसी बिरले मानव में प्रमाणित होता हैं और हुआ हैं। परंपराओं के अनुसार विविधता की पंचायत, उसमें से निश्चित पद्धति, जिसमें जीवन जागृत हो सकता हैं, उन सभी पद्धतियों में सर्वाधिक अनिश्चयता बनी रहती है। इसके बावजूद बहुत सारे मेधावी अपने को साधना क्रम में अर्पित करते हैं। इसमें मूलत: ऐसी अनिश्चयता, अस्पष्टता रहते हुए भी, साधना में अर्पित रहने का मूल कारण मूलत: मानव गलत है और परंपरा ठीक है– इसी आस्था के साथ मानव अर्पित होता है। इसे साधना, अभ्यास, सत्य की खोज आदि नाम दिया जाता है। हजारों मेधावी सदा ही इसमें अर्पित होते रहते हैं, यह भी देखने को मिल रहा है। इसमें यदि परंपरा ठीक होती तो हर व्यक्ति को सत्य, आत्मा, ईश्वर, कल्याण के नाम पर जो कुछ बताना चाह रहे हैं, वह सब एक उद्देश्य के रूप में रहता हुआ देखने को मिल रहा है यह अध्ययन की कसौटी में सही नहीं उतरा। इसलिए मानव; तर्क संगत विधि न होने से तृप्त नहीं हुआ और मान्यताओं, उपदेशों पर आधारित विधि में, स्वयं को अर्पित कर देता है। अभी तक जितने लोग अर्पित हुए उन सबके परिवारों की, न्याय और व्यवसाय रूपी जिम्मेदारियाँ क्षतिग्रस्त हुई हैं। इसके बावजूद आज भी सत्य और सत्यता के प्रति आदमी अपने को अर्पित मानता हैं। इसमें सफल मान लेने के बाद भी उसकी कोई रूप रेखा, प्रमाण के रूप में अध्ययन विधि सम्मुख नहीं हो पाती है। इस बीच जिसको सामान्य जनमानस मान लेता हैं कि ये सफल हो गए हैं, ऐसी लोक मान्यता के आधार पर पहचानते हैं। इस स्थिति में ऐसा साधक "सिद्ध हो गया हूँ"– ऐसा मान भी लेता है क्योंकि लोग मान रहे हैं। इसी स्थिति को लोक मानस में ऐसा मानना पाया गया कि ऐसा सिद्ध पुरुष जो कहता है, चाहे श्राप हो, चाहे अनुग्रह हो, वह साकार हो जाएगा। ऐसा भय और प्रलोभन के मारे यह मान्यता सर्वाधिक मनोकामनाओं की सीमा और विवशता में बन पाई हैं। वे घटनाएँ उनके कहे अनुसार घटित होने के आधार पर उस व्यक्ति को सिद्ध पुरुष मानकर लोगों ने उन पर आस्था की है, विश्वास किया है। ऐसे कई स्थल बन चुके है जहाँ बहुत सारा धन एकत्रित हो चुका है। ऐसा धन संग्रह सार्वजनिक उपयोग में आता हुआ दिखने पर, उसको ठीक मानते हैं। इसके विपरीत होने पर गलत मान लेते हैं– यह भी देखने को मिला है। इस प्रकार सभी विधियों से देखने के उपरान्त:–

  1. प्रलोभनों के सफल होने की चिन्हित स्थली में ज्यादा भीड़ इकट्ठा होना।

  2. किसी संस्था के आश्वासनों के आधार पर भी भीड़ इकट्ठा होना। मान्य आश्वासनों की पूर्ति के लिए जहाँ–जहाँ आश्वासन मिलता हैं वहाँ–वहाँ ज्यादा से ज्यादा भीड़ इकट्ठा हो जाती है।

  विकल्प:–मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद)इसके द्वारा सत्य सर्व सुलभ, अध्ययनगम्य, व्यवहार प्रमाण के रूप में, परम्परा सहज रूप में समीचीन संयोग हो पाया है। मुख्य मुद्दा सत्य समझ में आना; समाधान पूर्ण विचार शैली मानव में प्रमाणित होना और मानवीयता पूर्ण आचरण, प्रत्येक मानव में आचरित होना है। जिसके फलस्वरूप अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था स्वीकार होना, यही मानव परंपरा सत्यपूर्ण विधि से, गतिशील होने का स्वरूप हैं। इसमें इसकी सहज प्रक्रिया अध्ययनगम्य विधि से जीवन ज्ञान और जीवन ज्ञान पर आधारित प्रमाण अध्ययनगम्य है। फलत: परम्परा गम्य हैं।

अध्ययन रूपी अभ्यास से अस्तित्व दर्शन, जीवन विद्या सहज रोशनी में होता है। परम सत्य सह–अस्तित्व ही है। अभिव्यक्ति के रूप में सत्य ही स्वीकार होता है। सह–अस्तित्व अस्तित्व सहज रूप में हैं, ऐसा सह–अस्तित्व का स्वीकार और जीने के कला अस्तित्व सहज सत्य के रूप में प्रमाणित होता है। यही जीवन सहज जागृति का प्रमाण, व्यवहार प्रमाण है। अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण, अस्तित्व दर्शन में परिपक्वता की अभिव्यक्ति में प्रमाण हैं। फलस्वरूप जीवन में प्रामाणिकता की तृप्ति, स्वाभाविक रूप में, अस्तित्व की अभिव्यक्ति का स्वरूप है। जागृत मानव परंपरा में इसका फलन, व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलन में सर्वमान्य है। वह –

1. सर्वतोमुखी समाधान = समझदारी के आधार पर
2. समृद्धि = समझदार परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन पूर्वक
3. अभय = अखण्ड समाज में मानवीय संस्कृति–सभ्यता, विधि–व्यवस्था पूर्वक
4. सह–अस्तित्व = सार्वभौम व्यवस्था, दस–सोपानीय रूप में भागीदारी रूप में।

इस प्रकार इन तथ्यों को प्रमाणित करने के क्रम में मानव का बहुआयामों से सूत्रित होना और व्याख्यायित होना ही मानवीयता पूर्ण वांङमय है। फलस्वरूप योजना, कार्य योजना पूर्वक प्रमाण परंपरा को स्थापित, संरक्षित कर अक्षुण्णता को देख पायेंगे। यही मानव परपंरा सहज मौलिकता अर्थात् वैभव सहित जीने की परंपरा के रूप में जीने का स्वरूप उपाय समीचीन है।

मानव सहज विधि से जीने का स्वरूप मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के रूप में ही सार्थक होना पाया जाता है। इन्हीं वास्तविकताओं के आधार पर धर्म (व्यवस्था) और राज्य (व्यवस्था की गति) प्रमाणित होना ही इसका वैभव है। यही जागृति सहज वैभव को सार्थक रूप देना ही **विकल्प** का उद्देश्य है। **(अध्याय: 9–3, पेज नंबर:231–234)**

- आज तक भय और प्रलोभन के आधार पर ही उत्पादन व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयास सतत् रहा। शनैः–शनैः प्रलोभन, सुविधा, संग्रह से संघर्ष भड़कने के अनंतर संघर्ष, दूसरों से भयभीत होने की स्वीकृतियाँ घटती आई। इसके विपरीत दूसरों को भयभीत करने की प्रवृति व मानसिकता बढ़ी। तरीकों को बारंबार बदला गया। फलतः अच्छे व्यवस्थापक भय पैदा करने में अपनी असमर्थता स्वीकारते गए। उसी की प्रतिक्रिया में उद्योग, उत्पादन संयंत्रों को स्वचालित होना सुगम मान लिया गया। उसमें भी कुछ आदमियों की आवश्यकता पड़ी। इस स्थिति को इस प्रकार अनुकूल मान लिया गया है कि बहुत लोगों की जगह थोड़े लोगों के साथ व्यवस्था देना सुगम है।

  कम और अधिक लोगों के साथ भी यह देखा गया कि प्रलोभन और धन के बंटवारे के मुद्दे पर ही व्यवस्थापक और कार्यकर्ताओं के बीच दूरी बनी रही। जहाँ ज्यादा लोग काम करते थे, वह स्वचालित होने के उपरान्त भी थोड़े लोगों के साथ भी, व्यवस्थापक और कार्यकर्ताओं के बीच बंटवारे का प्रसंग एक मुद्दे के रूप में बना ही रहता है। इसमें अधिकांश रूप में यही सुनने को मिल रहा हैं स्वचालित संयंत्रों में काम करने वाले यंत्र नियंत्रक के रूप में ही अधिकांश लोग हैं। स्वचालित संयंत्र विहीन स्थितियों में उतना ही पढ़ा लिखा व्यक्ति जो कुछ भी साधनों को प्राप्त करता हैं, उससे अधिक स्वयं को मिलने के आधार पर सांत्वना पाते हुए देखा जा रहा हैं। कुछ संयंत्रों में यह भी

आरंभ हो चुका है कि बंटवारे में और परिवर्तन की आवश्यकता है। यह मूलत: प्रलोभन के तृप्ति बिंदु न होने से है। यही समस्या मूलत: व्यवस्थापक और कार्यकर्ताओं में परेशानी का मुद्दा हैं। मूल व्यवस्थापक संग्रह और भोग के लिए लाभोन्मादी मानसिकता को अपनाए रहते हैं। कार्यकर्ता सदा ही, आज के बाद और ज्यादा प्रतिफल मिले, कम काम करना हो और जिम्मेदारियाँ कुछ न हो इसी का अनुसंधान करता ही रहता हैं, ऐसा देखने को मिलता हैं। यह स्थिति कमोवेश सभी देशों में ऐसी ही हैं। इससे यह पता चलता हैं कि लाभोन्मादी विधि में किए जाने वाले व्यवस्थापक और कार्यकर्ता दोनों के संतुष्ट होने को कोई बिंदु नहीं है।

आवश्यकता के आधार पर ही सभी उद्योग स्थापित हो पाते हैं। लाभोन्माद के आधार पर ही असंतुलन आरंभ होता हैं। असंतुलन, मानव की वांछा व उपलब्धि के बीच रिक्तता ही है। इसमें उल्लेखनीय तथ्य यही है कि भय और प्रलोभन के आधार किया गया समझौता ही तत्कालीन सांत्वना के रूप में होना देखा गया हैं। परंतु अन्तत: असफल होता हैं। यही व्यवस्था और कार्यकर्ता दोनों में देखने को मिलता हैं। एक क्षण सांत्वना रहती है तो बहुत क्षण असंतोष रहता हैं। यही स्वरूप आज का चित्रण है।

उत्पादन और संतुलन सहज वैभव का मूल सूत्र **विकल्प** के रूप में होना समझ में आता है कि:–

1. भय और प्रलोभन के स्थान पर मूल्यों की पहचान, निर्वाह और मूल्यांकन करने का दायित्व।
2. लाभोन्माद के स्थान पर **विकल्प** के रूप में आवर्तनशीलता की समझ और प्रक्रिया।
3. स्वयं व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी।
4. श्रम मूल्यों का मूल्यांकन, स्वयं का, दूसरों का मूल्यांकन।
5. श्रम विनिमय।
6. हर मानव सहज रूप में अक्षय बल, अक्षय शक्ति संपन्न है। श्रम शक्ति ही निपुणता, कुशलता के रूप में मूल पूंजी है। यह पूंजी निवेश, पूंजीवाद और साम्यवाद का **विकल्प** है।
7. संग्रह के स्थान पर समृद्धि।
8. मानव व नैसर्गिक संबंध, हर परिवार मानव का उत्पादन में भागीदारी।
9. हर परिवार में व्यवहार व उद्योग, परिवार व्यवस्था में भागीदारी।

इन सबके मूल में, प्रत्येक व्यक्ति में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान होना एक अनिवार्यता है। तभी हर मानव में, से, के लिए स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होना सहज होता है। मानव जब तक स्वयं में, से, के लिए विश्वास नहीं करेगा, तब तक एक व्यवस्थापक रहकर अथवा एक कार्यकर्ता रहकर अथवा और भी किसी स्थिति में रहकर संतुष्टि, संतुलन, नियंत्रण पाना संभव नहीं हैं। फलस्वरूप अव्यवस्था को पैदा करेगा ही करेगा। इसलिए जीवन प्रत्येक मानव में, समान रूप में विद्यमान होने के सत्य में जागृति आवश्यक है। जीवन के क्रियाकलाप का पहला स्वरूप:–

1. कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता है।
2. जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने की क्रिया है।

3. चयन और आस्वादन क्रिया है।
4. तुलन और विश्लेषण क्रिया है।
5. चिन्तन और चित्रण क्रिया है।
6. बोध और ऋतम्भरा क्रिया है।
7. अनुभव और प्रामाणिकता पूर्ण क्रिया है।

ये सभी क्रियाएँ जागृतिपूर्ण जीवन सहज रूप में प्रमाणित होना पाया गया और जागृति प्रत्येक व्यक्ति में होना संभावित भी है। **(अध्याय: 9– 10, पेज नंबर: 303– 307)**

- मानव जड़–चैतन्य–प्रकृति का संयुक्त साकार रूप है। मानव शरीर रचना की परंपरा शरीर संयोग से संपन्न होना ज्ञातव्य है। जीवन अपनी जागृति को प्रमाणित करने की अनिवार्यता वश, मानव शरीर को संचालित करता है जबकि जीवों के शरीर को भी जीवन ही संचालित करता है। इसमें उद्देश्य वंशानुषंगीय कार्यकलापों को वर्तमान में प्रमाणित करता रहता है। यही मानव और जीवों के उद्देश्य में भेद है। मानव परपंरा में जीवन प्रमाणित होता है, जबकि जीवावस्था में शरीर सहज क्रियाकलाप प्रमाणित होता है। जीवन का उद्देश्य जागृति है। जागृति सहज व्याख्या अस्तित्व में जागृति सहज ज्ञान, दर्शन और आचरण ही है। मानव जब कभी भी जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करेगा, तब इन्हीं तीन बिंदुओं में अपने को व्याख्यायित करेगा। दर्शन के अर्थ में दृष्टा और दृश्य दोनों समाहित है। दृष्टा का अर्थ समझने वाला है और समझा हुआ है। मानव ही दृष्टा है। दृष्टा रूपी मानव में छः (6) दृष्टियाँ होती हैं। जिसमें से न्याय, धर्म, सत्य से नियंत्रित प्रिय, हित और लाभ (समृद्धि) दृष्टियाँ जागृत मानव में प्रमाणित होती है। भ्रमित मानव में केवल प्रिय, हित और लाभ दृष्टियाँ प्रकाशित होती है। जीवन जागृति के अर्थ में ज्ञान यही है – जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान। जीवन–ज्ञान और अस्तित्व दर्शन के फलस्वरूप, जागृति सार्वभौम व्यवस्था विधि से आचरण, कार्य, व्यवहार के रूप में प्रमाणित हो पाता है। इसी के साथ, जागृतिपूर्वक जो कुछ भी उत्पादन कार्य करते हैं और करने के लिए प्रयत्न करते हैं, वह सब सह–अस्तित्व सहज मानसिकता सहित ही संपन्न होना देखने को मिलता है। फलस्वरूप मानव सह–अस्तित्व सहज उत्पादन कार्यकलापों को योजनापूर्वक अपनाता रहेगा। इसलिए नैसर्गिक संबंधों का निर्वाह, मूल्यों का निर्वाह और मूल्यांकन सहज हो पाएगा। मानव सह–अस्तित्व अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में ही प्रमाणित हो पाता हैं। इसलिए मानव संबंधों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह व मूल्यांकन सहज ही संपन्न होगा। इन दोनों स्थितियों के फलस्वरूप प्राकृतिक ऐश्वर्य पर जीवन और शरीर की संयुक्त विधि से नियोजित श्रम वस्तु में स्थापित उपयोगिता व कला मूल्य के आधार पर मूल्यांकन होना सहज हो जाता हैं, यही मूलतः प्रतीक का मुद्रा का **विकल्प** है। **(अध्याय: 9–11, पेज नंबर: 348– 350)**

- मुद्रा और श्रम मूल्य:– मुद्रा और प्रतीक मुद्राएँ अभी तक समुदायों में, विविध प्रकार से प्रचलित रहीं। धातुओं के ऊपर लिखी हुई संख्याओं को मुद्रा कहते है। उन्हीं संख्याओं को कागज पर छापने से वह प्रतीक मुद्रा कहलाता हैं। दोनों प्राप्ति नहीं हैं। जो कुछ भी प्राप्ति है; वह आहार, आवास, अलंकार संबंधी और दूरदर्शन, दूरगमन, दूरश्रवण संबंधी वस्तुओं में है। इन सब की उपयोगिता स्पष्ट है। इनका सदुपयोग करना भी हैं। मुद्रा और प्रतीक मुद्रा का उपयोग नहीं हो सकता, सदुपयोग होने की बात तो दूर रही। इसलिए इस भ्रम का **विकल्प** आवश्यक रहा। इसका **विकल्प** श्रम का नियोजन, श्रम मूल्य का मूल्यांकन और श्रम विनिमय ही है। वस्तुओं का विनिमय मूल्य, श्रम नियोजन के आधार पर होना पाया जाता हैं। इसलिए वस्तुओं का मूल्यांकन होना सहज संभव है। वस्तुओं का मूल्यांकन ही श्रम का मूल्यांकन है। वस्तु का विनियम ही, श्रम का विनिमय है। इस प्रकार श्रम का मूल्यांकन और श्रम विनिमय प्रणाली को अपनाना सुलभ है। जिससे द्रोह–विद्रोह, शोषण अपने–आप शांत हो जाते हैं। इसकी गति अवश्य ही मानव कुल चाहता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि:–
    1. श्रम मूल्य को पहचाना जा सकता है।
    2. श्रम मूल्य का मूल्यांकन उत्पादित वस्तु के उपयोगिता और कला के आधार पर किया जा सकता है।
    3. श्रम विनिमय मानव सहज एक आवश्यकता है।
    4. श्रम विनिमय को वस्तु विनिमय के रूप में किया जा सकता है।

  श्रम मूल्य का मूल्यांकन प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन के आधार पर होना पाया जाता है। श्रम नियोजन आज भी प्राकृतिक ऐश्वर्य पर ही होता है। उसे प्रतीक मूल्य के चक्कर में ले जाकर परस्पर विश्वासघात करने की हजारों मंजिल की एक बड़ी दुकान आदमी जाति ने सजा लिया है। इसी व्यापार में ही सर्वाधिक दिलचस्पी मानव में देखने को मिलती है। इसके मूल में संग्रह हैं, संग्रह के मूल में भोग हैं। सुविधा भोग की लिप्सा में व्यापारवाद को मानव मानस से सर्वाधिक संख्या में स्वीकार कर लिया है। व्यापार मूलत: उत्पादन नहीं हैं, जबकि उत्पादन और उपभोक्ता के बीच में सर्वाधिक पवित्र सेवा मानकर जनमानस ने स्वीकारा है। इसका प्रमाण है व्यापारी ने जो दाम लेकर जिस वस्तु को बेच लिया, उसका विश्वास प्रत्येक मानव करता आया है। अभी भी सर्वाधिक लोग विश्वास करते हैं। अभी की स्थिति में, कई देशों में, जिस वस्तु को जिस नाम से बेचा जाता हैं, उस नाम की वस्तु का जो सहज रूप गुण होता हैं, उससे भिन्न या विकृत वस्तुओं को बेचकर लाभोन्माद की तुष्टि देता हुआ आदमी देखने को मिलता हैं। जैसे चावल में पत्थर मिलाकर बेचना। इसी प्रकार औषधि द्रव्यों में भी मिलावट की बात देखी गई हैं। यह लाभोन्माद से ही आता हैं। लाभोन्माद संग्रह के रूप में विनियोजित रहता है। यह उदाहरण यहाँ इसलिए दिया गया है कि वस्तुओं को खरीदते समय ही मानव सहज रूप में ही विश्वास से खरीदता है। उस वस्तु के निष्प्रयोजन और **विकल्प** की स्थिति में पीड़ित होना स्वाभाविक हैं। इससे पता लगता हैं कि एक तो मूल्यों की मूल्यांकन विधि में, मूल्यांकन में जो ज्यादा कम वाली बात है, वह अपने प्रकार की दो स्थितियाँ निर्मित करता हैं। दूसरी यह भी बात समझ में आती हैं कि वस्तु की पवित्रता, गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लग गए हैं? इसलिए मानव की व्यवस्था प्रणाली में, प्रत्येक व्यक्ति व्यवस्था में भागीदार है, इस कारण व्यापार मानसिकताएँ ग्राम मूलक उत्पादन और समृद्धि सहज मानसिकता में विकसित होना स्वाभाविक है। (**अध्याय: 9– 11, पेज नंबर:350–352**)

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- व्यवहारात्मक जनवाद क्यों ?
    - मानव भय, प्रलोभन एवं संघर्ष से मुक्ति चाहता है तथा आस्था से विश्वास का प्रमाणीकरण चाहता है।
    - मानव लाभोन्माद, भोगोन्माद से मुक्ति एवं **विकल्प** का स्पष्टता चाहता है।
    - मानव शासन से मुक्ति एवं व्यवस्था का ध्रुवीकरण चाहता है।

सुदूर विगत से मानव परम्परा भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष से गुजरती हुई देखने को मिलती है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सर्वाधिक मानव संघर्ष को नकारते हैं। भय को नकारते हैं। कुछ लोग सोचते हैं, प्रलोभन और आस्था से छुटकारा पाना संभव नहीं है। कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि प्रलोभन और आस्था में ही राहत है। कुछ लोगों का सोचना है कि इससे छुटकारा पाना जरूरी तो है, परन्तु रास्ता कोई नहीं है। इन सब स्थितियों में निष्कर्ष यही निकलता है कि भय, प्रलोभन, आस्था और संघर्षो से गुजरते हुए मानव परम्परा का रास्ता; राज्य और राजनैतिक, धर्म और धर्मनैतिक, अर्थ और अर्थनैतिक, शिक्षा–संस्कार सहज वस्तु पद्धतियों का निर्धारण, निष्कर्ष, उसकी सार्वभौमता, सार्थकताओं के अर्थ में देखने को नहीं मिली। इस लम्बे समय की यात्रा में मानव परम्परा में संस्कति–सभ्यता का, विधि–व्यवस्था का, तथा आचार–संहिता का ध्रुवीकरण एवं निश्चयन नहीं हो पाया। यही जनचर्चा का मुद्दा है। इन सभी मुद्दों पर सार्थकतापूर्ण निश्चयन को जनचर्चा के सूत्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए इस ग्रन्थ का उद्घाटन हुआ है। इसमें सर्वशुभ का सारभूत अर्थ समाहित है। (**अध्याय: 1, पेज नंबर: 2**)

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- मूलत: इस अनुसंधान के मूल में रूढ़ियों के प्रति अविश्वास, कट्टरपंथ के प्रति अविश्वास रहा है। सार रूप में वेदान्त रूप में "मोक्ष और बंधन" पर जो कुछ भी वांग्मय उपलब्ध है इस पर हुई शंका। परिणामत: निदिध्यासन, समाधि, मनोनिरोध, दृष्टाविधि के लिये जो कुछ भी उपदेश है उसी के आधार पर प्रयत्न और अभ्यास किया गया। निर्विचार स्थिति को प्राप्त करने के बाद परंपरा जिसको समाधि, निदिध्यासन, पूर्णबोध निर्वाण कुछ भी नाम लिया है, इसी स्थली में मूल शंका का उत्तर नहीं मिल पाया। परिणामत: इसके **विकल्प** के लिये तत्पर हुए। पूर्वावर्ती इशारों के अनुसार 'संयम' का एक ध्वनि थी। उस ध्वनि को संयम में तत्परता को बनाया गया। आकाश (शून्य) में संयम किया। निर्विचार स्थिति में अस्तित्व स्वीकार/बोध सहित सभी ओर वस्तु सब आकाश में समायी हुई वस्तु दिखती रही इसलिये आकाश में संयम करने की तत्परता बनी। कुछ समय के उपरान्त ही अस्तित्व सह-अस्तित्व रूप में यथावत् देखने को मिला। अस्तित्व में ही 'जीवन' को देखा गया। अस्तित्व में अनुभूत होकर जागृत हुए। ऐसे अनुभव के पश्चात् अस्तित्व सहज विधि से ही हर व्यक्ति अनुभव योग्य होना देखा गया। अनुभव करने वाले वस्तु को 'जीवन' रूप में देखा गया। इसी आधार पर "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" को प्रस्तुत करने में सत्य सहज प्रवृत्ति उद्गमित हुई। यह मानव सम्मुख प्रस्तुत है। **(अध्याय: 3, पेज नंबर: 59)**

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- स्वार्थ, दुराव–छुपाव पाप के लिये कारण बताया। स्वार्थी के साथ संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग, द्वेष यही प्रमुख विकारों को स्वीकारा गया। धार्मिक राजनीति के मूल में संग्रह–सुविधा अर्हता को ईश्वर प्रतिनिधी, राजा राजगद्दी और ईश्वरीय मार्ग–दर्शक एवं ईश्वर प्रतिनिधि के रूप में गुरू को मानते हुए सर्वाधिक संग्रह–सुविधा के लिये हर मानव से अपर्ण–समपर्ण, भाग और कर के रूप में प्रभावित रहना देखा गया। कालक्रम विज्ञान युग के अनंतर अधिकांश लोगों में संग्रह, सुविधा, भोग की आवश्यकता जग गई। इसके लिये संघर्ष ही एक मात्र रास्ता दिखाई पड़ा। इसलिये हर व्यक्ति, परिवार, समुदाय परस्पर संघर्ष के लिये अपने को तैयार करता रहा। आज भी सर्वाधिक व्यक्ति, परिवार, समुदाय संघर्ष के लिए तैयारी करता हुआ देखने को मिलता है। इसे हर व्यक्ति देख सकता है। भक्ति विरक्ति के मार्ग–दर्शकों के रूप में पहचाने गये विविध प्रकार के धर्म गद्दी यती, सती, संत, तपस्वी, ज्ञानी, भक्त, विद्वान ये सब अपने तौर पर बहुत सारा प्रवचन उपदेश करने के उपरान्त भी आमूलत: कोई प्रमाण परंपरा के रूप में व्यवस्था और शिक्षा के अर्थ को सार्थक बनाने के लिये अभी तक पर्याप्त नहीं हुआ। दूसरी विधि से शिक्षा व्यवस्था, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में, से, के लिये आवश्यकीय सूत्र–व्याख्या प्रमाण विधियाँ किसी एक परंपरा से अथवा संपूर्ण परंपराएं मिलकर अध्ययन गम्य विधि से प्रस्तुत नहीं हो पायी। इन्हीं कारणवश पुनर्विचार की आवश्यकता समीचीन हुई। **विकल्प** प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत है। **(अध्याय:1, पेज नंबर: 22–23)**

- **प्राकृतिक संबंधों का प्रयोजन** – धरती का संतुलन, जल का संतुलन, वायु का संतुलन, वन–खनिज का संतुलन, इनके संतुलन के फलस्वरूप ऋतु संतुलित रहना पाया जाता है। धरती के संतुलित होने के उपरान्त ही अन्य सभी संतुलन साकार होना स्वाभाविक रहा है। उसके उपरान्त मानव प्रकृति का धरती पर अवतरित होना स्वाभाविक रहा है। मानव ने अभी तक इन चारों विधाओं में असंतुलन न्यूनातिरेक रूप में पैदा कर चुका है। इसका मूल कारण अनानुपाती वन खनिज का शोषण। जलवायु का प्रदूषण, धरती में ताप व प्रदूषण प्रधान रहा है। यह सर्वविदित हो चुकी है ऐसे प्रदूषणों के आधार पर मानव का इस धरती पर जीना दूभर होता जा रहा है। इससे छूटना अति आवश्यक मुद्दा है। इसीलिये कि धरती ही असंतुलित होने के उपरान्त मानव का इस धरती पर रहने का प्रश्न ही नहीं रहता। इसी कारणवश सर्वमानव को अपेक्षा सहज जागृति सम्पन्न होना आवश्यक है। ऐसी जागृति के लिए तीन महत्वपूर्ण अध्ययन कार्य सम्मुख है।

    1. जीवन ज्ञान,
    2. सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान,
    3. इन दोनों मुद्दे में पारंगत होने का फल–परिणाम मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान देखा गया है।

तीनों मुद्दे पर पारंगत होने के लिये सर्वमानव में जीवन सहज रूप में अर्हता है ही। अस्तु सर्वमानव जीवन ज्ञान रूपी परमज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन रूपी परम दर्शनज्ञान मानवीयता पूर्ण आचरण रूपी परम आचरण ज्ञान में सहज पारंगत हो सकता है। इसके मूल में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही प्रधान वस्तु है। अस्तित्व में दृष्टा केवल मानव होने के कारण ही बहुमुखी बहुआयामी प्रतिभा व्यक्तित्व, व्यवहार और व्यवसाय (उत्पादन) सम्पन्न होने का आधार सर्वमानव में प्रकारान्तर से रहता ही है। इन्हीं प्रवृत्तियों प्रमाणों के आधार पर मानव संतुलन और प्राकृतिक संतुलन को हर व्यक्ति के ध्यान में लाना, आवश्यकता के रूप में स्वीकारना, अनिवार्यता के रूप में मूल्यांकित करना फलस्वरूप कार्य–व्यवहार में प्रमाणित करना सहज है।

ऊपर कई निश्चयों के समर्थनों में अथवा **विकल्पात्मक** प्रस्ताव के समर्थन में सर्वमानव में वांछित सर्वशुभ का स्वरूप भी हमें समझ में आता है इससे समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व सर्वसुलभ होने की अपेक्षा भी धरती और मानव संतुलन के साथ–साथ निहित है। (**अध्याय:3, पेज नंबर: 45–47**)

- संपूर्ण मानव राहत पाने की अपेक्षा से ही यंत्र प्रमाण (प्रयोग प्रमाण) और सुविधा संग्रह को स्वीकारा है। मनुष्य तो स्वयं राहत पाया नहीं है, इसका साक्ष्य यही है – 1. बढ़ती हुई सामुदायिक कलह, परिवार कलह, 2. बढ़ती हुई प्रदूषण, 3. बिगड़ती हुई धरती। ये तीनों मुद्दे मानव के सम्मुख चिंता के रूप में प्रस्तुत हो चुके हैं। इसमें से धरती का शक्ल बिगड़ना अनेक उपद्रवों का कारण बन चुकी है जिन्हें कुछ लोग मानते हैं और कुछ लोग मानते नहीं है। यथा धरती के पेट से खनिज कोयला और तेल, धातुओं का निकालने की प्रक्रिया। इस कार्य में जितना तीव्र गति उत्पन्न किया है, उसको प्रगतिशील मानी जा रही है। इससे जो कुछ भी धरती का पेट खाली हो गया अथवा धरती को खोखला बना दिया गया, उसका भरपाई अभी इस धरती पर वर्तमान मानव परंपरा रहते तक हो पायेगा या नहीं एक विचारणीय बिन्दु है। भरपाई तो बाद की बात है इसके पहले हम मानव को क्या–क्या सोचने की जरूरत है, किस प्रणाली, पद्धति और नीतिपूर्वक परिवर्तन को अपनाने की आवश्यकता है, इसके लिए हमें समझ क्या चाहिए? यह गंभीरता से विचार करने और निर्णय लेने का बिन्दु है। इस निर्णय के पहले और एक बिन्दु है, धरती की शक्ल जैसी भी बिगड़ी है, उससे भावी परिणाम क्या–क्या घटित हो सकते हैं इस पर भी एक बार विधिवत् विचार करने की आवश्यकता है। इसलिए कि कम से कम अवधि में शीघ्रतीशीघ्र प्रदूषण कार्यकलापों को सर्वथा स्थगित कर सकें और **विकल्पों** को अपनाने में उत्साहित हो सकें। (**अध्याय:3, पेज नंबर: 52–53**)

- जहाँ तक जल प्रदूषण की बात है, उसका सुधार संभव है, क्योंकि हर दूषित मल, प्रौद्योगिकी विसर्जनों को विविध संयोग प्रक्रिया से खाद के रूप में अथवा आवासादि कार्यों में लेने योग्य वस्तुओं के रूप में परिणित कर सकते हैं, ऐसे परिणित के लिए सभी प्रकार से – मानव से, प्रौद्योगिकी विधि से, संपूर्ण विसर्जन को अपने–अपने स्थानों में ही कहीं, धरती के गहरे गड्ढों में संग्रहित करने की आवश्यकता बनती है, उसके बाद ही इसका विनियोजन संभव हो जायेगा। जहाँ तक वायु प्रदूषण है, इसका निराकरण तत्काल ही खनिज कोयला और तेल के प्रति चढ़े पागलपन को छोड़ना पड़ेगा। इसका सहज उपाय **विकल्पात्मक** ऊर्जा स्रोतों को पहचानना जिससे प्रदूषण न होता हो। ऐसा ऊर्जा स्रोत स्वाभाविक रूप में यही धरती प्रावधानित कर रखी है। जैसे वायु बल, प्रवाह बल, सूर्य ऊष्मा और गोबर–

कचड़ा गैस। यह सब आवर्तनशील विधि से उपकार कार्य के रूप में नियोजित होते हैं। जैसा सूर्य ऊष्मा से ईंटा पत्थर को पकाने की भट्टियों को बना लेने से वह पक भी जाता है और उससे प्रदूषण की कोई सम्भावना भी नहीं रहती। प्रवाह दबाव कई नदी–नालों में मानव को उपलब्ध है जैसा ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना नदियाँ जहाँ सर्वाधिक दबाव से बह पाती हैं, ऐसे स्थलों में प्रत्येक 20–25 मीटर की दूरी में बराबर उसके दबाव को निश्चित वर्तुल गतिगामी प्रक्रिया से विद्युत ऊर्जा को उपार्जित कर सकते हैं। इस विधि से सर्वाधिक देश में आवश्यकता से अधिक विद्युत शक्ति के रूप में संभावित है। अभी तक बनी हुई प्रदूषण का कारण केवल ईंधन संयोजन विधि में दूरदर्शिता प्रज्ञा का अभाव ही रहा है। अतएव, गलती एवं अपराधों का सुधार करना, कराना, करने के लिए सम्मति देना हर मनुष्य में समायी हुई सौजन्यता है। **(अध्याय: 3, पेज नंबर: 55–56)**

- अस्तु, संग्रह सुविधा भोग, अतिभोग, बहुभोग मानसिकता–उपक्रम, प्रौद्योगिकी, विज्ञान विधि से समाज रचना उसका निरंतरता और इस पृथ्वी का नैसर्गिक संतुलन अर्थात् पृथ्वी के चार अवस्थाओं के परस्परता में संतुलन और सम्पूर्ण मानव में संतुलन चिन्हित रूप में प्राप्त नहीं हो पाता है। यह सम्पूर्ण मेधावियों में स्पष्ट हो चुकी है। अतएव इसका **विकल्प** गतिशील होना ही एकमात्र उपाय है।

विकल्पों का प्रधान बिन्दुओं को,

1. चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार तकनीकी शिक्षण कार्य में **विकल्प**,
2. ज्ञान, दर्शन, विवेक, विज्ञान विधि विचारों में **विकल्प**,
3. न्याय सुरक्षा विधान में **विकल्प**,
4. स्वास्थ्य संयम कार्य में **विकल्प**,
5. विचार व आचरण विधि में **विकल्प**,
6. व्यवहार कार्य विधि में **विकल्प**,
7. उत्पादन विधि में **विकल्प**,
8. विनिमय विधि में **विकल्प**,
9. उपयोग विधि में **विकल्प**।

इन विकल्पों को हम भले प्रकार से पहचान चुके हैं। इस विश्वास से कि हम जिन विकल्पों को अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के सूत्र के रूप में समझ चुके हैं वह सर्वमानव में स्वीकृत है ही। जैसे प्रसंग के रूप में –

1. उत्पादन कार्य में स्वायत्त होने के उद्देश्य सहित प्रत्येक परिवार उत्पादन कार्य में भागीदारी का निर्वाह करना। समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि।
2. उत्पादन कार्य में नियोजित होने वाले श्रम मूल्य का पहचान उसका मूल्यांकनपूर्वक श्रम विनिमय प्रणाली को अपनाना। यह लाभ हानि मुक्त होना स्वीकार्य है।
3. आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उत्पादन से उपयोग, उपयोग से सदुपयोग, सदुपयोग से प्रयोजनशील विधियों को स्वीकारा गया है। उपयोग विधि से परिवार न्याय और व्यवस्था, सदुपयोग विधि से समाज न्याय

और व्यवस्था, प्रयोजनीयता विधि से प्रामाणिकता और जागृति मानव कुल में लोकव्यापीकारण होने का सहज सुलभता को देखा गया।

4. व्यवहार विधि में मूल्य मूलक मानसिकता कार्य–व्यवहारों को स्वीकारा गया है। यह कम से कम विश्वास के रूप में पहचाना गया है। विश्वास को वर्तमान में ही पहचानना, मूल्यांकन करना सहज है। वर्तमान में विश्वास अनिवार्यता के रूप में पहचाना गया है।
5. विचार विधि में **विकल्प** सह–अस्तित्ववादी विचार को स्वीकारा गया है। यह अस्तित्व सहज विधि से सम्पूर्ण विधाओं में सह–अस्तित्व प्रभावशाली होने, सर्वमानव जीवन सहज रूप में ही साथ–साथ जीने के अरमानों के रूप में पहचानी गई है। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके है। इसे सर्वमानव तक पहुँचाने के लिए 'समाधानात्मक भौतिकवाद', 'व्यवहारात्मक जनवाद' और 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' को प्रस्तुत किया जा चुका है। इसमें सम्पूर्ण इकाई अपने स्वभावगति में समाधान उसकी निरंतरता है। व्यवहारपूर्वक ही सर्वमानव आश्वस्त विश्वस्त होने की व्यवस्था है और चाहता है। इसे भले प्रकार से देखा गया। यही सर्वमानव में समाधान है। अस्तित्व में अनुभव होता है इसे प्रमाणित कर भी देखा है। हर मानव अनुभव (तृप्ति) मूलक विधि से जीना चाहता है। यही विचार में **विकल्प** है।
6. ज्ञान दर्शन विज्ञान में **विकल्प** क्यों, कैसा, क्या प्रयोजन को इस प्रकार समझा गया है। जीवन ज्ञान अध्ययनगम्य है इसीलिये यह सबको सुलभ हो सकता है। दूसरा सम्पूर्ण अस्तित्व ही मानव को देखने में आता है। अर्थात् समझने में आता है। इसलिये अस्तित्व दर्शन हमें समझ में आया है और सर्वमानव समझने योग्य है और चाहता है। विकास विधि सह–अस्तित्ववादी सूत्रों के आधार पर सम्पूर्ण विज्ञान विश्लेषित होना सहज है। इसीलिये सर्वमानव–मानस इसे समझने का माद्दा रखता है। इतना ही नहीं, इसे सर्वमानव चाहता है।
7. न्याय विधि मानव सहज आचरण रूप में हम पहचान चुके हैं। सर्वमानव जीवन सहज रूप में न्याय की अपेक्षा करता ही है।
8. स्वास्थ्य संयम – यह मानव कुल में बारम्बार विचार प्रयोग होते ही आया है। यह जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य रूप में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय सम्पन्न मनुष्य शरीर तैयार रहने से ही है। पुनश्च, जीवन सहज जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करना ही स्वस्थ शरीर का मूल्यांकन है। तीसरे प्रकार से, जीवन जागृति स्वस्थ शरीर द्वारा प्रमाणित होता है। जीवन जागृति का साक्ष्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूर्वक परिवार सभा से विश्व परिवार सभाओं में भागीदारी को निर्वाह करना, सुख; शांति; संतोष; आनन्द का अनुभव करना, समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके हैं।
9. शिक्षा–संस्कार में मानवीकृत शिक्षा को हम भले प्रकार से पहचानें है इसमें मानव का सम्पूर्ण आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्य और कोणों का अध्ययन है। देश और काल, क्रिया, फल, परिणाम सहज समाधानपूर्ण विधि को समझा गया है। यह सर्वमानव में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है ही। **(अध्याय: 4, पेज नंबर: 69–73)**

- ....यहाँ यह भी स्मरणीय बिन्दु है कि अस्तित्व में केवल मानव ही अपने ही प्रयासों से भ्रमित होता है क्योंकि मानव में ही कर्म करने में स्वतंत्रता, फल भोगने में परतंत्रता दिखाई पड़ती है। कोई भी कार्य करने के मूल में विचारों का होना पाया जाता है। विचार पूर्वक ही ज्यादा, कम या विपरीत कार्यों में ग्रसित हो जाता है। भयपूर्वक मानव भ्रमित कार्यों को करता ही है, प्रलोभनपूर्वक भी करता है। भयपूर्वक सभी भ्रमित कार्य अस्वीकृतिपूर्वक होता है, प्रलोभन से संबंधित सभी कार्य स्वीकृतिपूर्वक होता है। इन दोनों विधा में भ्रम ही कारण है। आस्था विधा में स्वर्गवादी, जितने भी कल्पना–परिकल्पना मानव ने कर रखा है वह सब प्रलोभन का ही विस्तार रूप में होना पाया जाता है। नर्क में भी भय का ही विस्तार वर्णन होना पाया जाता है। इसके अतिरिक्त और कोई चीज आस्था विधा से खोजा जा रहा है वह प्रमाणित नहीं हो पाया अर्थात् समाज परंपरा में शिक्षा, संस्कार, व्यवस्था, संविधान के रूप में प्रमाणित नहीं हुआ है। इसका **विकल्प** में ही जीवन ज्ञान परम ज्ञान के रूप में जागृति और उसकी प्रमाण सहित परम्परा बनना संभव हो गई है। यह अध्ययनगम्य है। ऐसा जागृत मानव का आचरण ही मानव कुल का वैभव और संविधान होना पाया जाता है। इसी के पुष्टि में सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान अध्ययनगम्य हुआ है। फलतः मानव में स्वायत्तता की सम्पूर्ण स्रोत नित्य समीचीन है। हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में होने के आधार पर जीवन ही जागृति पूर्वक दृष्टा पद में अपने ऐश्वर्य को प्रमाणित करने की सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और उसके वैभव को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की आवश्यकता, अवसर समीचीन है। इस प्रकार हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही स्वायत्तता का प्रमाण है। स्वायत्त मानव रूप प्रदान करने की शिक्षा–संस्कार ही मानव परंपरा सहज जागृति का प्रमाण है। **(अध्याय: 4, पेज नंबर: 83– 84)**

- 3. सर्वमानव में शुभाकांक्षा समान – मानव शुभ चाहता ही है, करता ही आया है। यह भी पहले स्पष्ट हो चुका है कि आस्था से इंगित स्वर्ग और नर्क; प्रलोभन और भय का ही प्रतीक है। इन दोनों से भिन्न और कोई चीज देने की चाहत वांगमयों में इंगित होता हो वह किसी भी परंपरा में प्रमाण के रूप में वर्तमानित नहीं हो पाये हैं। आज का मानव किसी न किसी परंपरा में ही अपने को अर्पित किया है। परस्पर परंपराओं में भय, प्रलोभन, आस्थाओं में जो अंतर्विरोध है, दीवालों के रूप में है। शुभ चाहते हुए विरोधों को पाल रखना विविध परंपराओं के अनुसार किंवा धर्म संविधान, राज्य संविधान, में भी इनकी पहचान, विविधता की पहचान, प्राथमिकता की चर्चा बनी हुई है। इसीलिये शुभ चाहते हुए शुभ घटित न होने में दूरी अभी भी बनी हुई है। इस वर्तमान समय में अधिकांश मानव इस दूरी को मिटाने के लिए इच्छुक है। ऐसे दूरियों को वरदान के स्थान पर अभिशाप के रूप में पहचान चुके हैं। यही अग्रिम परिवर्तन की चिन्हित पहचान है। अग्रिम परिवर्तन की पहचान स्वाभाविक रूप में अनुभव, व्यवहार और तर्क संगत होना एक आवश्यकता बन चुकी है। अधिक संख्यात्मक मानव इस धरती पर सर्वशुभ के पक्षधर हैं। उसके लिये समुचित मार्ग, विचार, ज्ञान, प्रमाणों को जाँच पूर्वक अर्थात् परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक अपनाना चाहते हैं, स्वीकारना चाहते हैं। यही सूत्र परिवर्तन के चाहत को सम्भावना के रूप में परिणित करता है। इसका आधार अनेक समाज सेवी संगठन जैसा मानवाधिकार संस्था अलग–अलग नामों से विभिन्न पक्षों में कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। यह अभी तक जिन संविधानों अर्थात् धर्म संविधानों, राज्य संविधानों में क्रूरता, विकरालता, अश्लीलताओं को कम अथवा दूर करने में अपने को बारम्बार दुहराता है। साथ ही युद्ध प्रभाव से जो वीभत्सता है, प्राकृतिक प्रकोपों से त्रस्त मानव, अकाल, दुष्काल, और विशेष रोगों से पीड़ित एड्स जैसे रोग पीड़ित व्यक्तियों के प्रति अपने संवदेनाओं को अर्पित करते हुए इन्हें सांत्वना देने का घोर प्रयास करते आया है। इन सब प्रयासों को देखते हुए

इनके मूल में अवश्य ही एक सार्वभौम व्यवस्था की अभिव्यक्ति की आवश्यकता बनी हुई है। इस ओर सार्वभौम व्यवस्था जैसा धरती में एक व्यवस्था की चर्चा, पहल, प्रयास भी लोगों ने किये हैं। जो ऐसे प्रयास किये हैं उनमें मानव, मानवत्व, सार्वभौम व्यवस्था का रूप रेखा, मानसिकता, विश्व दृष्टिकोण सहित प्रस्तावित होना प्रतिक्षित है।

ऐसे 'मानवाधिकार' धरती पर एक शासन, विचार या चर्चा, मेधावी मनुष्यों के साथ जुड़ा है। हमारा यह प्रस्ताव है कि इसे सफल बनाने के लिये विश्व दृष्टिकोण संबंधी **विकल्प** आवश्यक है। इस विधा में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान प्रस्तावित है। इसी क्रम में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज ही अध्ययन किये हैं। यह पूर्णतया दर्शन और ज्ञान के रूप में, पूर्ववर्ती दर्शन–ज्ञान के **विकल्प** के रूप में प्रस्तावित है। अस्तित्व ही स्वयं सह–अस्तित्व, नित्य विद्यमान होने के आधार पर सह–अस्तित्व स्वयं विचार का आधार, फलित होने का क्रम हमें अध्ययन गम्य हुआ है। इसलिए विचारधारा जो पूर्ववर्ती क्रम में प्राप्त है उसके स्थान पर सह–अस्तित्ववादी विचारधारा को प्रस्तावित किया है। अभी तक जो–जो शिक्षाएं इस धरती के मानव के साथ बीत चुकी है, इस समय में जो–जो शिक्षाएं दे रहे हैं उसके **विकल्प** में मानवीयतापूर्ण सह–अस्तित्ववादी शिक्षा कार्यक्रम प्रस्तावित है। सह–अस्तित्व सहज अध्ययन क्रम में हम यह पाये हैं अस्तित्व में व्यवस्था है, शासन नहीं है। इसीलिये सार्वभौम व्यवस्था शासन के **विकल्प** के रूप में प्रस्तावित है। इसी क्रम में शक्ति केन्द्रित शासन संविधान के स्थान पर समाधान केन्द्रित व्यवस्था रूपी संविधान मानवीय आचार संहिता के रूप में (सार्वभौम राष्ट्रीय आचार संहिता) प्रस्तावित किया है। इसके लिये कार्यक्रम का हम धारक–वाहक है। जीवन–ज्ञान, अस्तित्व दर्शन का अध्ययन शिविर कार्यक्रमों का आयोजन करते है और शिक्षा का मानवीयकरण कार्य में तत्पर है। मानवीयतापूर्ण आचरण विधि से हम जीते ही हैं। इन सभी कारणों से हम उक्त प्रस्तावों को प्रस्तावित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

उक्त प्रस्तावों के आधार पर मानवाधिकार सुस्पष्ट हो जाता है फलस्वरूप परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था पूर्वक सार्वभौम शुभ रूपी समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को सर्वसुलभ कर सकते हैं। इसकी अक्षुण्णता का होना समीचीन है। यही सर्वशुभ है। **(अध्याय: 4, पेज नंबर: 107– 110)**

- जागृत परंपरा में ही जनसंख्या नियंत्रण स्वाभाविक रूप में होता है अर्थात् जागृत मानव स्वयं स्फूर्त विधि से नियंत्रित होता है। समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व सहज प्रमाण परंपरा रूपी मानवीयतापूर्ण परिवार प्रयोजन और आवश्यकता का संतुलन बनाए रखने में सक्षम होता है। जनसंख्या, उसके लिये मानसिकता, आवश्यकता और प्रयोजन के साथ ही संतुलित होना संभव है। जागृति का यही देन है। सम्पूर्ण आवश्यकताएँ प्रयोजनों की कसौटी में परीक्षित प्रमाणित होना ही जागृति का साक्ष्य है। जीवन सहज रूप में जागृति नित्य वर है। वर का तात्पर्य जिसके बिना सुखी होने का कोई और **विकल्प** ही नहीं है। इसी क्रम में जीवन जागृतिपूर्ण विधि से ही सुख और उसका निरंतरता उत्सव से उत्सवित रहता है। इसके साक्ष्य में यह भी प्रतिपादित हो चुका है कि समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व हर परिवार मानव में प्रमाणित रहता ही है। क्योंकि हर परिवार मानव स्वायत्त और जागृत रहना, जागृति परंपरा सहज वैभव और उपलब्धि है। यही नित्य उत्सव का भी आधार है। **(अध्याय: 6, पेज नंबर: 180)**

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- लाभ पर आधारित व्यापार प्रणाली वस्तु और वस्तु मूल्य के साथ ही सीमित रहना पाया जाता है। इसी के साथ अर्थात् व्यापार संघ के साथ बैर विहिन परिवार, संघ या राष्ट्र या समुदाय ही नहीं बन पाया फलस्वरूप समुदाय चेतना और समाज चेतना के लिए प्रतिरोधक अथवा विरोधी मानस बन बैठा। उत्पादित वस्तुओं में गुणवत्ता और कला मूल्यों में (उत्पादित वस्तु का आकार–प्रकार, सजावट और सुरक्षा विधि) श्रेष्ठता जिससे मानव में जो अच्छा लगने की एक सहज क्रिया है उसके अनुसार स्वीकृत हो जाए। गुणवत्ता का तात्पर्य किसी भी वस्तु की कार्यशीलता, उपयोगिता के अर्थ में है। कार्यशीलता की निरंतरता मानव सहज रूप में अपेक्षित है। यह विशेषकर संपूर्ण प्रकार के यंत्रों आवास विधाओं में देखा जाता है। जहाँ तक अलंकार वस्तु होते है और आहार वस्तुएं आदि काल से अभी तक वैसे ही दिखाई पड़ती है। इस प्रकार आहार व्यवस्था, मानव इस धरती पर अवतरित रहने के पहले से ही समृद्ध रहा है, उसे पहचानने में मानव कुल को अवश्य समय लगा है। अलंकार और आवास संबंधी परिवर्तनों को अपनाता आया है। इसी के साथ सभी यंत्र निर्मित होने के उपरांत ही यह सभी व्यापार के फन्दे में फंसा ही है। व्यापार लाभ के फन्दे में लटका है। लाभ शोषण पूर्वक संग्रह, भोग, अतिभोग, बहुभोग की ओर धंसता ही जा रहा है। इसी के अनुरूप कला कलाकारियाँ और कलाविदों का एक खास पहचानने योग्य समुदाय भी तैयार हो चुकी है। जबकि ऐसे व्यापारविद समुदाय और कलाविद समुदाय कहीं भी उत्पादन के लिए चिन्हित रूप में सहायक नहीं हैं। इसी व्यापार के विस्तार के लिए ही अधिकांश अर्थशास्त्रों का प्रणयन हो चुकी है। इससे अनुप्राणित व्यापारी, कलाविद इन दोनों प्रकार के मानसिकता से राज्य संस्था और राजनीतिज्ञ प्रभावित होना पाया गया है। इतना ही नहीं धर्म, धर्मनीति और धर्मनीतिज्ञों–धर्मगद्दियों पर भी इन्हीं दो पक्ष का प्रभाव पड़ता हुआ अथवा इन्हीं दो पक्षों से यह प्रभावित होता हुआ दिखाई पड़ता है। इन सभी घटनाओं को ध्यान में लाने पर निष्कर्ष यही निकलता है:–
    1. व्यापार विधि से समाज नहीं बन सकता।
    2. व्यापार विधि से समुदायों में अन्तर्विरोध मिट नहीं सकता।
    3. व्यापार विधि से बैर विहिन परिवार हो नहीं सकते, समझौते में भले ही सांत्वना पाते रहे।
    4. व्यापार विधि से धर्म सफल नहीं हो सकता।
    5. व्यापार विधि से कोई राष्ट्र राज्य–व्यवस्था सार्वभौम, अखंड और अक्षुण्ण नहीं हो सकती।
    6. व्यापार विधि से कोई भी व्यक्ति समृद्ध नहीं हो सकता। क्योकि संग्रह सुविधा और लाभ का तृप्ति बिन्दु नहीं होता।
    7. व्यापार विधि से सार्वभौम शुभ (समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व) घटित नहीं हो सकता।

इन निष्कर्षों के साथ ही **विकल्प** की ओर दृष्टिपात करना एक आवश्यकता है। **(अध्याय:1, पेज नंबर:15–17)**

- अस्तित्व में मानव अविभाज्य वर्तमान परंपरा है। अस्तित्व में मानव ही सर्वाधिक रूप में विकसित होना दिखाई पड़ता है। यह :–

    1. मानवेत्तर प्रकृति से अपने को सार्वभौम शुभ के आधार पर ही भिन्न होना स्पष्ट हो जाता है।
    2. दूसरे विधि से मानव परंपरा चारों आयाम सम्पन्न है।
    3. मानव ही भूतकाल और घटनाओं का स्मरण, वर्तमान में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान योजना कार्य–व्यवहारों और व्यवस्था को निश्चयन करने योग्य है। विज्ञान–विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विश्लेषण ज्ञान सम्मत होने से है और विवेक का तात्पर्य प्रयोजन सम्मत होने से है। ज्ञान का तात्पर्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान एवं मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान से है। विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विवेचनाएं प्रयोजनों के अर्थ में स्वीकार योग्य रूप स्पष्ट होने से है। विवेचना का तात्पर्य विवेचना सहित विख्यात विधि (सबके लिए स्वीकार योग्य) से वस्तुओं, घटनाओं को जानने–मानने–पहचानने की क्रियाकलापों से है। इस प्रकार विज्ञान, ज्ञान और विवेक सहज सार्थकता और चरितार्थता स्पष्ट है। यह अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन और सह–अस्तित्ववादी विश्व दृष्टिकोणों के आधार पर स्पष्ट हो जाता है।

       स्पष्टता के लिए मानवकुल आदिकाल से तरसता ही रहा है। प्रयास भी स्पष्टता के क्रम में अभिप्रेत रहा है। मूल मान्यताएं समुदाय और वर्ग केन्द्रित होने के आधार पर तथा दूसरी ओर रहस्य और वस्तुओं के आधार पर जितने भी सोचा गया, प्रयत्न किया गया, प्रयोग किया गया, वर्ग और समुदाय सीमा में ही हितों को सोचना बना। इसलिए सर्वशुभ चाहते हुए वह घटित होना संभव नहीं हुआ। इन तथ्यों का अवलोकन करने पर **विकल्प** की आवश्यकता और अनिवार्यता स्वाभाविक रूप में स्वीकृत होता है अन्यथा भ्रमित रहना ही होगा।

       ऊपर वर्णित घटनाओं का वर्णन, आंकलन और विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुकी है कि वस्तु केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण और रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण से मानव का अध्ययन मानव के लिए तृप्तिदायक अथवा समाधानपूर्ण विधि से संपन्न नहीं हो पाया इसलिए मानव के लिए योजित शिक्षा संस्कार और शिक्षा संस्कार को समृद्ध बनाने के लिए प्रबंध–निबंध, पाठ–पाठ्यक्रम, साहित्य, कला सभी मिलकर भी अधूरा ही रह गया। इस मायने में कि सार्वभौम शुभ सर्व सुलभ होने में नहीं आया। साथ ही यह तथ्य अपने आप में अवश्य ही उपादेयी रहा है कि उक्त दोनों प्रकार के विश्व दृष्टिकोण, उससे सम्बन्धित सभी प्रयास **अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन** के पहले मानव परंपरा में परिलक्षित होना अवश्यंभावी रहा। अस्तु इस बात पर हम सर्वमानव सहमत हो सकते हैं कि बीता हुआ सभी परिवर्तनों का समीक्षा फलनों के साथ ही **विकल्प** की ओर ध्यानाकर्षण होना संभव, आवश्यक और अनिवार्य है। **(अध्याय:2, पेज नंबर:25–27)**

- **(अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन का मूल अवधारणाएं** निम्नलिखित हैं :–

  1. अस्तित्व नित्य वर्तमान है। वर्तमान का तात्पर्य होने–रहने से है।
  2. अस्तित्व में मानव अविभाज्य है। अविभाज्यता का तात्पर्य मानवत्व सहित होने–रहने के रूप में कार्यरत रहने से है।
  3. अस्तित्व सहित ही संपूर्ण पद, अवस्था, दिशा, देश, कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्य स्थिति–गति का होना पाया जाता है। इसी के साथ सह–अस्तित्व में ही विकास क्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति में ही संपूर्ण पद, अवस्था, स्थिति गति को देखा जाता है।

     उदाहरण के रूप में प्रत्येक नर–नारी सह–अस्तित्व में किसी पद और अवस्था में संपूर्ण जड़–चैतन्य प्रकृति का पहचान होना पाया जाता है इनके स्थिति गति को जागृति के आधार पर मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में देखा जाता है।
  4. मानव ही दृष्टापद में है एवं इसे वैभवित, प्रमाणित, व्यवहृत करने योग्य इकाई है। अस्तु मानव ही कर्ता–भोक्ता होना भी पाया जाता है।
  5. मानव ही प्रत्येक इकाई में अनन्त कोणों का दृष्टा, एक से अधिक इकाईयों के दिशा, काल और देश का दृष्टा, प्रत्येक एक में स्थिति गति का दृष्टा, प्रत्येक इकाई में अविभाज्य रूप में वर्तमानित रूप, गुण, स्वभाव, धर्म रूपी आयामों का दृष्टा, व्यक्ति, परिवार, ग्राम, देश, राष्ट्र और विश्व परिवार रूपी परिप्रेक्ष्यों का दृष्टा होना अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन सहित सह–अस्तित्व रूपी शाश्वत क्रियाकलाप क्रम में, परमाणु में विकास गठनपूर्णता, उसकी निरंतरता, चैतन्य पद में संक्रमण जीवनपद, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति, मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा और जीवन जागृति पूर्णता फलस्वरूप देव मानव, दिव्य मानव पदों का दृष्टा, कर्ता, भोक्ता होना पाया जाता है। इसी क्रम में स्पष्ट किए गये मानव पद में क्रियापूर्णता और दिव्य मानव पद में आचरण पूर्णता और उसकी निरंतरता का होना पाया जाता है। इस विधि से अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन की अवधारणाएं स्वयं स्पष्ट करता है कि पूर्ववर्ती दोनों विचारधारा से समाधान के अर्थ में भिन्न होना स्पष्ट है। अवधारणा का तात्पर्य ही अध्ययनपूर्वक धारणा के अनुकूल स्वीकृतियों से है। मानव की धारणा, प्रत्येक मानव में सुख, शांति, संतोष और आनन्द के अर्थ में नित्य वर्तमान होना पाया जाता है। किसी भी मानव का परीक्षण करने पर यह पाया जाता है कि सुख, शांति, संतोष, आनन्द के आशा अपेक्षा में ही संपूर्ण कार्यकलाप विन्यासों को करता है। परीक्षण क्रम में 5 ज्ञानेन्द्रियों से जो कुछ भी पहचानता है, पहचानने के मूल में प्रवृत्ति है वह सुखापेक्षा ही दिखाई पड़ती है। संपूर्ण मानव संपूर्ण प्रकार के अध्ययनों को सुखापेक्षा से ही किया रहता है। प्रत्येक मानव से सम्पादित होने वाली संपूर्ण अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशनों का परीक्षण से भी सुख–शांति, संतोष, आनन्द सहज आशा आकांक्षा से ही व्यक्त होना पाया जाता है। अस्तित्व में नित्य वर्तमान प्रकाशन को सुख की अपेक्षा आकांक्षा से ही स्वीकारना चाहता है। यही सुख, शांति, संतोष, आनंद परंपरा में प्रमाणित होने की स्थिति में समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व के रूप में मूल्यांकित हो जाता है। **(अध्याय:2, पेज नंबर: 27–30)**

- न्याय सुरक्षा के साथ–साथ ग्राम सुरक्षा कार्यक्रम, न्याय सुरक्षा समिति से संचालित रहेगा। इसी प्रकार हर स्तरीय सुरक्षा विधि बना रहेगा। यह क्रम से क्षेत्र सुरक्षा के अनन्तर ग्राम सुरक्षा की आवश्यकता, प्रधान राज्य के अनन्तर मुख्य राज्य सुरक्षा तक की गौणता और विश्व राज्य व्यवस्था के अनंतर प्रधान राज्य सुरक्षा की आवश्यकताएँ शून्य होना भावी है। भले ही आज बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में इसे कल्पना के रूप में ही स्वीकार लें। इस धरती की हालत वैज्ञानिक युग के अनन्तर जैसे बन पड़ी है और पर्यावरण संतुलन जैसा जर्जर छिन्न–भिन्न होता जा रहा है, उनके पहले भी किए गए, सोचे गए परिणामों के फलस्वरूप अनेकानेक नस्ल, रंग, जाति, धर्म, मत, संप्रदाय, देश, भाषा, वर्गों के रूप में बांटकर अनेक अहमता की दीवालें बन चुकी है। पूर्ववर्ती विधि से बनी हुई तमाम समुदायों में बंटी हुई मानव जाति सह–अस्तित्व, अभय, समृद्धि और समाधान सम्पन्न होना संभव नहीं है। **विकल्पात्मक** अखंड सार्वभौम और अक्षुण्ण समाज व्यवस्था और जागृति सहज विधि से सम्पन्न होने के लिए **विकल्पात्मक** समाज–रचना विधि–व्यवस्था कार्यविधि, व्यावहारिक योजना विधि। इसके लिए **विकल्पात्मक** जीने की कला विधि, **विकल्पात्मक** विचार विधि, **विकल्पात्मक** दर्शन विधियों को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना अनिवार्य है। **(अध्याय:3, पेज नंबर: 61–62)**

- पहले इस बात को इंगित कराया है जो ऊर्जा स्रोत विगत के बुद्धिमान पीढ़ी ने अपनाया उसके पक्ष में सम्पूर्ण प्रौद्योगिकी निर्भर हुई। उससे हुई प्रदूषण की पराकाष्ठा। अब मुख्य रूप में ऊर्जा सम्बन्धों में सभी आवर्तनशील **विकल्पों** को अपनाना अनिवार्य है। अभी तक अपनाया हुआ ऊर्जा स्रोतों में से गोबर, कचड़ा गैस, पवन ऊर्जा, और सौर ऊर्जा, प्रपात ऊर्जा (जल विद्युत) यह आवर्तनशील होना स्पष्ट हो चुकी है। जिसके संयोग से जितने भी कार्यकलाप करते हैं उससे कोई प्रदूषण नहीं होता। अभी तक जैसा नदी के प्रपात स्थलियों में बिजली प्रवाह प्राप्त करने का यंत्र संयोजनों को सजाया जा चुका है और समुद्र तरंग के बारे में भी प्रयोग शुरू किया गया है। इसी के साथ जल प्रवाह शक्तियों को विद्युत प्रवाह शक्तियों के रूप में पाने का प्रयास करना समीचीन है। यह सर्वाधिक, सभी देशों में समीचीन है। कोई न कोई महत्वपूर्ण नदी सभी समय बहती रहती है। बहाव का दबाव अनुस्यूत रहता है। उतने दबाव से संचालित होने वाली विद्युत संयंत्र को सर्वसुलभ करना आवश्यक है। ऐसी तकनीकी को प्राप्त कर शिक्षण पूर्वक लोक व्यापीकरण करना आवश्यक है। विद्युत संयंत्रों का विभिन्न स्तर मानव जाति पा चुकी है। इसलिए प्रवाह तंत्र के अंतर्गत इसे पाना, चित्रित कर लेना, व्यावहारीकरण कर लेना सहज है। **(अध्याय:3, पेज नंबर:66–67)**
- जागृति मूलत:, आमूलत: अथवा सम्पूर्णतया सहज होना, प्रमाणित होना तब संभव हुआ जब अथवा जिस क्षण में जीवन ज्ञान, अस्तित्व–दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत और प्रमाणित हुए। सम्पूर्ण अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होना तभी संभव हो पाया जब जीवन में जागृति संभव हुई। जीवन का स्वरूप रचना, शक्ति, बल, लक्ष्य के संबंध में विभिन्न स्थली में स्पष्ट किया जा चुका है। जीवन रचना, गठनपूर्ण परमाणु (चैतन्य इकाई) सभी मानव में समान है, इसी प्रकार जीवन शक्ति और बल अक्षय होने के कारण समान और जीवन का लक्ष्य केवल जागृति होने के कारण सभी नस्ल, रंग, जाति, वर्ग, मत, संप्रदाय, भाषा, देश में रहने वाले सभी मानव में समान होना पाया जाता है। यही जीवन ज्ञान पर आधारित विचार है और शास्त्रों को प्रणयन और अवलोकन करने का आधार है। जीवन ज्ञान हर व्यक्ति में, से, के लिए; हर देश काल में संभव है। इसी आधार पर आवर्तशील अर्थशास्त्र का प्रणयन भी संभव हुआ। अस्तु, जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन का सहज प्रमाण में ही

आवर्तनशीलता को अर्थशास्त्र विधा में पहचानना सहज है। इस तारतम्य में यह भी ध्यान में रहना आवश्यक है कि आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था को साक्षात्कार करने के लिए, दूसरे भाषा में देखने के लिए जीवन ज्ञान अथवा जीवन विद्या, अस्तित्व दर्शन में पारंगत होना, मानवीयता पूर्ण आचरण में प्रमाणित रहना आवश्यक है। इसी आधार पर जागृति प्रमाणित हो पाती है और जागृतिपूर्वक मानव आवर्तनशील अर्थशास्त्र में जीना हो पाता है। इसके लिए यह भी बल मिलता है इस प्रकार आवश्यकता भी समीचीन हो गया कि अभी तक किये गये ईंधन स्रोत, उत्पादन कार्य विधि और विपुल उत्पादन और लाभ और संग्रह का लक्ष्य आधार अब पुनर्विचार के योग्य हो चुके हैं। इसके मूल में लक्ष्य विहीन संग्रह ही राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के आधार पर आधारित मूल्यांकन विधियों को पुनर्परिशीलन करने का कार्य इस अर्थशास्त्र के इस अध्याय में एक प्रधान बिन्दु है। इसके परिशीलन क्रम में स्वाभाविक ही सह–अस्तितव विधिपूर्वक ईंधन योजना स्रोत, संप्राप्ति विधाओं में भी परिशीलन और **विकल्पों** को पहचानने की आवश्यकता बलवती होगी।

इस धरती के मानव जहाँ तक उत्पादन कार्यों में पारंगत हो पाये हैं इसके लिए जो यंत्र संपादन विधि हस्तगत किये हैं यह कोई अर्थशास्त्र में व्यतिरेक पद्धति नहीं हैं। सह–अस्तित्ववादी अर्थव्यवस्था विरोधी उत्पादन केवल युद्ध सामग्री का निर्माण है। युद्ध मानसिकता सह–अस्तित्व विरोधी, मानवीयतापूर्ण मानसिकता के विरोधी होने के कारण, युद्ध सामग्री संबंधी सभी प्रकार के साधन अमानवीय होना स्पष्ट है। दूसरे विधि से युद्ध मानसिकता–युद्धाभ्यास किसी संस्कृति–सभ्यता का आधार नहीं हो पाया। जबकि भक्ति और विरक्ति सम्बन्धी मानसिकता से श्रेष्ठ संस्कृति की कल्पना करते हुये भी संभव नहीं हो पाया। संग्रह विधि से श्रेष्ठ संस्कृति की संभावना बनती ही नहीं है। मानव जाति अभी तक इतना ही कर पाया है। अर्थशास्त्र का सूझ–बूझ संग्रह और युद्ध को बरकरार रखने के आधार पर ही विकसित हुई है। इन तथ्यों के आधार पर भी विचार करने पर पता लगता है लाभोन्मादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर **विकल्प** की आवश्यकता है। अस्तु आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को समझना एक स्वाभाविक एवं आवश्यकीय अध्ययन है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:98–100)**

- प्रौद्योगिकी विधा से गुजरता हुआ आज का मानव भय–प्रलोभन के स्थान पर न्याय की आवश्यकता पर ध्यान देने योग्य हुआ। क्योंकि प्रौद्योगिकीय कार्यवाही क्रम में समृद्ध, संतुलित धरती का शक्ल बिगड़ गयी। युद्ध सम्बन्धी आतंक परस्पर समुदायों में पहले से ही रहा। उसी के साथ–साथ धरती और धरती के वातावरण सम्बन्धी असंतुलन का भय और धीरे–धीरे गहराता जा रहा है। इसी के साथ–साथ जनसंख्या बहुलता, मानव चरित्र और प्रौद्योगिकी के योगफल में अनेकानेक रोग और विपदाओं का सामना करता हुआ वर्तमान में मानव कुछ प्रतिशत विद्वान, मनीषी **विकल्प** के पक्षधर हैं या आवश्यकता को अनुभव करते हैं। इसी बेला में **विकल्प** की सम्भावना समीचीन हो गया। ये तो सर्वविदित है कोई भी अनुसंधान–अध्ययन विधि पूर्वक प्रस्तुत होने पर शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से लोकव्यापीकरण की आशा की जाती है। अध्ययनकारी विधि को इस प्रकार सोचा गया है कि तर्क संगत प्रणाली सत्य समझ में आने के विधि, संगीतीकरण की अपेक्षा अभी तक की अध्यवसायिक मन:पटल में आ चुकी है। यह भी मान्यता है सत्य है। सत्य क्या है? इसका उत्तर अभी तक शोध के गर्भ में ही निहित है। अतएव **विकल्प** के रूप में अस्तित्वमूलक, मानव केंद्रित चिंतन प्रस्ताव के रूप में मानव सम्मुख प्रस्तुत हुआ है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:128–129)**

- मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार परम्परा का मूल वस्तु अथवा सम्पूर्ण वस्तु जीवन–ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। आज की स्थिति में भय और आस्था दोनों प्रलोभन के चक्कर में आकर अस्वीकृत होते जा रहे हैं। प्रलोभन की आपूर्ति का स्रोत और संभावना दोनों न होने के कारण, दूसरा उसकी तृप्ति बिन्दु न होने के कारण पागलपन छा जाना आवश्यंभावी रही है। अतएव इससे मुक्ति पाने के लिए कुछ लोग इच्छा रखते हैं। अधिकांश लोग निराशा, कुण्ठा ग्रसित हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में हर मोड़–मुद्दे में **विकल्प** की आवश्यकता है ही। यहाँ की प्रासंगिकता आवर्तनशील अर्थशास्त्र और कार्यक्रम से यह सारी परेशानियाँ दूर होकर स्वस्थ अर्थात् समाधानित, समृद्ध, अभय, सह–अस्तित्वशील परिवार को साकार कर लेना संभव हो गया है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:138)**

- मानव में ही श्रम पूँजी का विस्तार बहुआयामी प्रयोजन रूप में नियोजित होता हुआ आंकलित होता है। मानव निर्मित वस्तुएँ, इसी धरती में निहित द्रव्यों का ही वैभव को उजागर करने के क्रम में स्पष्ट है। एक सुई से लेकर महल तक, एक चक्के की गाड़ी से लेकर कई चक्के से चलने वाली यांत्रिकता को हाथ–पैर के दबावों से लुढ़कती हुई, चलती हुई क्रिया को, पानी, तेल, उष्मा के दबावों के सहारे चलने योग्य दूसरे नाम से गतिशील होने के योग्य तंत्रणाओं और बारूद से चलकर परमाणु तत्वों के दबाव से चलने वाले यान–वाहनों को मानव ने उपलब्ध किया। इसी यंत्र–तंत्रणा विधियों से चुम्बकीय विद्युत गति सूर्य–ऊर्जा से परावर्तित उष्मा का संग्रहण और निश्चित धातु पदार्थ द्वारा यही सूर्य उष्मा का विद्युतीकरण के साथ–साथ हवा के दबाव प्रपात शक्ति का उपयोग विधि से विद्युतीकरण अथवा यंत्रीकरण विधियों से हम प्राप्त कर चुके हैं। इसी क्रम में दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूरगमन यंत्रों जैसी उपलब्धियाँ मानव को उपलब्ध हो गया है। इन सबका उपयोग, सदुपयोग क्रम, भोग और बहुभोग क्रम मानव सम्मुख प्रस्तुत हो गया है। जिसमें से भोग और बहुभोग क्रम व्यापार और संग्रहण क्रम, शोषण और युद्धक्रम के लिए मानव जाति सर्वाधिक रूप में दुरुपयोग करता हुआ देखा गया है। आंशिक रूप में सम्पर्क सूत्र समाचार गति के लिए भी ये सब उपयोगी सिद्ध हुए। इन सभी का सार्थकता व्यवस्था के अर्थ में उपयोग–सदुपयोग करना ही एकमात्र उपाए है। शासन गति के स्थान पर व्यवस्था गति, अ–सह–अस्तित्ववादी शोषण गति से पोषण गतिके लिए प्रयुक्त होना सदुपयोग है। एक ग्राम, ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक और विश्व परिवार सभा से एक ग्राम परिवार सभा तक आवश्कतानुसार आदान–प्रदान गति को बनाए रखने के लिए यह सभी साधन उपयोगी, सदुपयोगी होना दिखाई पड़ती है। इसी नजरिया से ही यह निर्णय होता है संग्रहवाद और युद्धवाद के लिए सभी उपयोग मानव के अर्थ में, नैसर्गिकता के अर्थ में, पर्यावरण के अर्थ में निरर्थक होना समीक्षित होती है। यह निरर्थकता कई बार मनीषियों के मन में उद्गारों के रूप में आ चुकी है। इसका **विकल्प** न होने की स्थिति में यथास्थिति बनते ही आया। **(अध्याय:5, पेज नंबर:155–156)**

- तीनों प्रकार के वर्णित महत्वाकांक्षा संबंधी यंत्रों से व्यवस्था गति के रूप में ही नियतिक्रम स्वीकृति स्पष्ट होता है। नियति सह–अस्तित्व सहज रूप में बनी हुई अथवा प्रकाशित स्वरूप है। ऐसे अनंत स्वरूप में से यह धरती भी एक स्वरूप है। इसी धरती में मानव भी एक स्वरूप है। यह तो मानव को भले प्रकार से पता लग चुकी है या स्पष्ट हो चुकी है कि मानव ही भ्रमित होकर धरती, जलवायु के प्रति अत्याचार करता है। इसका प्रमाण में यह देखने को मिला है कि पर्यावरण संतुलन के लिए उद्गार आवाज योजनाओं के रूप में भी कुछ नौकरी करने वाले आदमी या नौकरी नहीं करने वाले मनीषी विशेषकर योजना के स्थल पर चर्चा करते हैं। उन सभी चर्चा का सार तत्व प्रदूषण को रोकने की न होकर कितना ज्यादा प्रदूषण में आदमी जी सकता है, इसका खोज किया जा रहा है। ऐसी नौकरशाही प्रदूषण नियंत्रण कार्य के मूल में भी व्यापार और शोषण ही निहित है। इस विधि से गम्य स्थली अनिश्चित है। अतएव ऊर्जा स्रोतों में से जो सर्वाधिक प्रदूषण कार्य है, उसका शोषण और उपयोग विधियों से मुक्ति पाना आवश्यक है। इसके लिए **विकल्पात्मक** ऊर्जा स्रोतों से ही सम्पन्न होना आवश्यक है। इस मुद्दे पर आगे सुस्पष्ट विधि से देख पाएंगे। (**अध्याय:5, पेज नंबर:156–157**)

- द्रोह का मूल रूप को इस प्रकार पहचाना जाता है पहला– सत्ता संघर्ष इसके स्थान पर सार्वभौम व्यवस्था और ऐसी व्यवस्था में भागीदारी को अपनाना **विकल्प** है और आवश्यकता है। मानव मानस में व्यवस्था का स्थान आज की स्थिति में भी बनी हुई है। सत्ता शक्ति और केन्द्रित शासन असह–अस्तित्व दिशावाही है। जबकि सार्वभौम व्यवस्था समाधान, समृद्धि वर्तमान में विश्वास सह–अस्तित्व दिशावाही है। सह–अस्तित्व, अस्तित्व सहज रूप में नित्य प्रभावी है। इसलिए सार्वभौम व्यवस्था जीवन सहज रूप में मानव में स्वीकृत है। (**अध्याय:5, पेज नंबर:172**)

- द्रोह का विद्रोह सदा ही मानव मानस में बना रहता है। यही अन्तर्विरोध का तात्पर्य है। यही अन्तर्विरोध किसी स्तरीय शासन के विपरीत कार्यकलापों को प्रवृत्तियों को प्रकाशित कर पाता है। उसी क्षण से विद्रोह रूप में परिणत होता है। ऐसे सभी विद्रोह पुनः शासन प्रतिष्ठा दिशा–वाही होना देखा गया है। इसी विधि से शासन परिवर्तन की घटनाएँ इस धरती के छाती पर गुजर चुकी है। इससे यह स्पष्ट हो चुकी है कि शक्ति केन्द्रित शासन और शासन संघर्ष परिवर्तन के लिए विद्रोह यह सभी प्रक्रियाएँ मानसिकताएँ शक्ति केन्द्रित शासन के धारा से ही दिशा से ही विवश है। अतएव विद्रोह का **विकल्प** भी सार्वभौम व्यवस्था ऐसी व्यवस्था में भागीदारी की मानसिकता विचार प्रक्रिया ही है। ऐसी मानसिकता जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण में प्रतिबद्धता–पूर्वक प्रमाणित होती है। (**अध्याय:5, पेज नंबर:172–173**)

- शक्ति केंद्रित आधारों पर पंचायती राज्यों, ग्राम पंचायतों, ग्राम समितियों के नाम से, रूप से सोचा गया है। यह सूझबूझ भी यथावत् शक्ति केंद्रित होने के कारण शासन संघर्ष, द्रोह–विद्रोह प्रकट होना देखा गया। अतएव इन सब का **विकल्प** सार्वभौम व्यवस्था मानसिकता ज्ञान विवेक विज्ञान पूर्वक सम्पन्न होना ही एक मात्र शरण है। ऐसी शरणस्थली को पाना, सम्पन्न होना, समृद्धि होना, इसका धारक वाहकता में हर व्यक्ति का भागीदार होना ही इसका गति है। ऐसी गति सम्पन्नता ही मानवाधिकार कहलाता है। यही चेतना विकास मूल्य शिक्षा पूर्वक सफल होने का प्रस्ताव है। (**अध्याय:5, पेज नंबर:174–175**)

- सम्पूर्ण भ्रम का **विकल्प** अनुसंधान–शोध क्रम में ही समीचीन रहा है। प्रत्येक मानव अस्तित्व में होते हुए अस्तित्व ज्ञान ही न हो पाना, अर्थात् अस्तित्व समझ में न आना, न आने का प्रमाण परंपरा में ख्यात, प्रख्यात प्रमाणित न हो पाना। हर मानव वर्तमान में होते हुए नित्य वर्तमानता को स्वीकार नहीं पाना, जीवन हर मानव में कार्यरत रहते हुए जीवन ज्ञान सम्पन्न नहीं हो पाना प्रधानत: यह तीन बिन्दुएँ स्पष्ट नहीं हो पाना ही सम्पूर्ण प्रकार के परम्परा में भ्रम का कारण रहा। मानव का ही अपेक्षा के अनुरूप अब हम जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूर्वक जागृति का प्रमाणित कर सकेंगे। जागृति का प्रमाण मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। मानवत्व का प्रमाण भी यही है। मानव परंपरा का सूत्र भी यही है। मानव में मानवीयतापूर्ण सूत्र ही परिवारमूलक स्वराज्य में वैभवित होना अति समीचीन हो गई है। इसके लिए भी यही ज्ञान, दर्शन और आचरण यह सभी उपलब्धियाँ अस्तित्वमूलक मानव केंद्रित विधि से सहज–सुलभ हुआ है। (**अध्याय:5, पेज नंबर:181–182**)

- परिवार और व्यवस्था अविभाज्य है। परिवार हो, व्यवस्था नहीं हो और व्यवस्था हो परिवार नहीं हो, ये दोनों स्थितियाँ भ्रम का द्योतक है। पूर्ववर्ती आदर्शवादी और भौतिकवादी विचारों के आधार पर सभी शक्ति–केन्द्रित शासन अवधारणाएँ परिवार के साथ सूत्रित होना संभव नहीं हो पाई। हर परिवार में कुछ संख्यात्मक व्यक्तियों को और उनके परस्परता में सेवा, आज्ञा पालन, वचनबद्धता को पालन करता हुआ, निर्वाह किया हुआ भी उल्लेखित है, दृष्टव्य है। इनमें श्रेष्ठता की ऊचाइयाँ भी उल्लेखों में दिखाई पड़ती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से किसी आदर्श का गति अनेक नहीं हो पायी। यही बिन्दु में हम और एक तथ्य पर नजर डाल सकते हैं। बहुतायत रूप में अच्छे आदमी हुए हैं और अच्छी परम्परा नहीं हो पायी। क्योंकि जबसे मानव समुदायों में राज्य और धर्म की दावा समायी है तब से अभी तक शक्ति केंद्रित शासन ही रहा है। इसकी गवाहियाँ धर्म–संविधान और राज्य संविधान ही है। ऐसे धर्म और राज्य संविधान की मंशा के बारे में हम पहले से स्पष्ट हो चुके हैं। इन दोनों प्रकार संविधानों के प्रभावित रहते भय और प्रलोभन का ही प्रचार होना समीचीन प्रवर्तन रहा है। कला, साहित्य, शास्त्र, विचार, दर्शन सभी भय और प्रलोभन से भरे पड़े हैं अथवा इसी के परस्त होकर बैठ गए हैं। इन स्मरणों के साथ साथ उल्लेखनीय तथ्य इतना ही है कि इस धरती पर स्थित मानव परंपरा में भय और प्रलोभन के रहते, इस धरती का संतुलन–ज्ञान सम्पन्न होना, मानव द्वेष विहीन अथवा राग द्वेष विहीन परिवार का होना, अखण्ड समाज होना, सार्वभौम व्यवस्था होना सर्वथा संभव नहीं है। इसके स्थान पर इसी के पीछे विद्वता का परिकल्पना ज्ञान–रसायन, कर्मों का दुहाई, पाप–पुण्य का नारा ही हाथ लगा रहेगा अथवा सभी मानव मन में घर किया रहेगा। फलस्वरूप शुभ के स्थान पर अशुभ घटनाएँ दुहराते ही रहेगा। इस ढंग से परम्परा भ्रमित रहने के आधार पर मानव अपने में से जागृत होने का रास्ता समाप्त प्राय होता है। यह सब स्थितियाँ रहते हुए भी कोई न कोई मानव चिंतन को आगे बढ़ाने, **विकल्प** को प्रस्तुत करने का यत्न–प्रयत्न करता है। इसका प्रमाण यही है आदर्शवाद का **विकल्प** भौतिकवाद के रूप में आयी। आदर्शवाद और भौतिकवाद का मूल तत्व व्यवस्था के रूप में शक्ति केंद्रित शासन ही रहा है। अतएव इन दोनों के **विकल्प** के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केंद्रित चिंतन ही सह–अस्तित्ववादी, सर्वतोमुखी समाधानपूर्ण व्यवस्था को अध्ययनगम्य होने के लिए प्रस्तुत है और मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान को समाधान केंद्रित व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतएव कर्मों के आधार पर मानव का विविधताएँ पाप–पुण्य–स्वर्ग–नर्क शक्ति केंद्रित शासन में भागीदारी, रहस्यमूलक, लक्षणात्मक धर्म संविधान वह भी शक्ति केंद्रित विधि से कल्पित ढांचा–खांचा में भागीदारी, व्यापार जैसा शोषण में भागीदारी, भ्रमात्मक साहित्य–कला में भागीदारी, भ्रमात्मक आस्थाओं

में भागीदारी, लाभोन्मादी उत्पादन कार्यों में भागीदारियों के आधार पर पाप–पुण्य का व्याख्या करते रहे हैं। इसी के साथ–साथ रहस्य में छुपी हुई सत्य, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, देवी–देवता जैसी कल्पनाओं में प्रमाणित होने के लिए प्रकल्पित भांति–भांति साधना–अभ्यास, योग, यज्ञ, जप, तप, पूजा, पाठ, प्रार्थना, गायन क्रियाकलापों को भक्ति और विरक्ति के परिकल्पित रेखा सहित किए जाने वाले जितने भी कार्यकलाप हैं, ये सबको पुण्यशील कर्म मान लिया गया है। जानने की क्रिया अभी तक शेष है। इसी के साथ यह भी निर्देशन अथवा इंगित तथ्य यही है ऐसी पुण्यशीलों के सेवा–सुश्रुषा, अपर्ण–समपर्ण से भी पुण्य मिलेगा और पुण्यशीलों से पुण्य बंटती है, ऐसे उल्लेख और आश्वासनों को पूर्वावर्ती शास्त्र, धर्मशास्त्र परिकथाओं में उल्लेख किया है। यहाँ ध्यानाकर्षण का तथ्य यह है कि सह–अस्तित्व ही परम सत्य है। अस्तित्व स्वयं में सत्ता में संपृक्त प्रकृति है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में नित्य वैभव है। सह–अस्तित्व में ही नित्य समाधान है। यह सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन इन बिन्दुओं पर देखा गया है सह–अस्तित्व में जीवन ज्ञान, और सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान। इसी के फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण सर्वसुलभ होना होना, दूसरे भाषा में चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कारपूर्वक लोकव्यापीकरण होना सहज है। जीवन–ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक मानव जीवन का अमरता को, नित्यता को पहचान पाता है। फलस्वरूप जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव परंपरा को होना प्रमाणित हो जाता है। इसी क्रम में शरीर रचना भौतिक–रासायनिक द्रव्यों से सम्पन्न होना देखा जाता है। इसी आधार पर शरीर की भंगुरता अथवा विरचना स्वीकृत हो जाता है। और जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता होने का तथ्य हर मानव में सुदृढ़ होता है। फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान स्रोत और कारण जागृत जीवन ही होना स्पष्ट होता है अथवा सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक जीवन ही होना स्पष्ट हो जाता है। यह सर्वसुलभ होना ही जागृत परंपरा का द्योतक है। इस प्रकार जीवन की नित्यता समझ में आने के फलस्वरूप शरीर को छोड़कर जीवन ही अपने स्वरूप में देवी–देवता, भूत–प्रेत आदि नामों से जाने जायेंगे। यह देवी–देवता सम्बन्धी रहस्य उन्मूलन होने का सहज विधि फलस्वरूप तत्सम्बन्धी भ्रम से मुक्त होने का सुख स्वाभाविक रूप में समीचीन है। मानव सहज रूप में रहस्य से मुक्त होने की अभिलाषाएँ होना पाया जाता है। (**अध्याय:5, पेज नंबर:183–187**)

- हर परंपराएँ शिक्षा विधा में, संस्कार विधा में, संविधान विधा में और व्यवस्था विधा में अपने को निर्भय अथवा श्रेष्ठ मानते हुए चलते हैं जबकि ऐसा हुआ नहीं रहता है। इसका साक्ष्य अंतर्विरोध और बाह्य विरोध है, मतभेद और वाद–विवाद ही है। इससे मुक्त होने की अपेक्षा सब में है। अर्थात् वाद–विवाद आदि विसंगतियों से किंवा युद्ध से भी, शोषण से भी मुक्ति चाहते हैं। खूबी यही है कि ऐसा शुभ चाहने वाले हर समुदाय अपने को शुभ का आधार मान लेते हैं, उन्हीं–उन्हीं के अनुसार शुभ घटित हो ऐसा सोचते हैं। जैसे युद्ध तंत्र में बुलंदी पर पहुँचा हुआ देश युद्ध न करने का उपदेश देता है। बाकी सब यह सोचते हैं यह हम पर शासन करना चाहता है या हमको धर दबोचना चाहता है। संग्रह में पारंगत और संग्रह में लिप्त, भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति क्रम से संग्रह भ्रष्टाचार विरोधी भाषण करते हैं और संग्रह के पक्ष में मन, वचन, कार्यों को बुलंद किए रहते हैं। इसी प्रकार भ्रष्टाचार में सराबोर धर्माध्यक्ष, राज्याध्यक्ष, राष्ट्राध्यक्ष, शिक्षाध्यक्ष, ज्ञानाध्यक्ष जैसे लोग सदा संग्रह में लिप्त रहते ही हैं। और संसार को कड़ी मेहनत, ईमानदारी का पाठ सुनाते हैं और त्याग और वैराग्य का उपदेश देते फिरते हैं। जबकि गहराई से सोचने पर कितनी विडम्बना की बात है कि व्यापार तंत्र में अमोघ सफलता प्राप्त चोटी की संग्रह समर्थ व्यापारी विद्वान संग्रह की निरर्थकता को बयान करते रहते हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में संग्रह को दिन में दूनी रात में चौगुनी बनाने की सार्थक तिकड़म, तिकड़म का तात्पर्य अपने दूषित मानसिकता को सफल बनाने के तरीकों जिसको वह स्वयं विरोध

करता है, में लगे रहते हैं। शिक्षाविद भी संग्रह तंत्र से जकड़ चुके हैं। यह अपने समय को बेचकर आजीविका चलाने के लिए तत्पर हो गए हैं। इस प्रकार शिक्षा–व्यापार, धर्म–व्यापार, राज्य–व्यापार, वस्तु–व्यापार और व्यापार में अधिकार प्राप्त पारंगत सभी व्यक्ति संग्रह के चंगुल में ही जकड़े हुए दिखाई देते हैं। अपवाद रूप में कोई–कोई संग्रह समर्थ न हो पाए हो। ऐसे लोगों का खास आदर्श कम से कम लोगों में अंकित हुआ हो सकता है। सर्वाधिक लोगों का मन में सर्वाधिक संग्रह समर्थ लोगों का ही कार्य चित्र बसता ही जा रहा है। कलाकारों को कहना ही क्या है ? भिखारी से भिखारी का अभिनय करने को तैयार है और ज्यादा से ज्यादा पैसा–धन चाहिए। इन कलाकारों से मार–कूट, दहाड़–विध्वंस व्यापार–प्यार में पागल होने वाले गाने, जितने भी द्रोह–विद्रोह का अभिनय, त्याग, तपस्या का अभिनय एक ही व्यक्ति से करा ली जाए, उनको सिर्फ पैसा चाहिए। इनके संग्रह जब तक धर्म, राज्य, वस्तु, व्यापारियों, बिचौलियों से संग्रह शिखर उपर नहीं गया तब तक ये चैन से कोई अभिनय नहीं कर पाते हैं और आगे की बेचैनी बनी ही रहती है। अतएव सभी आयामों में कार्यरत व्यक्ति का आदर्श उन्नीसवीं शताब्दी से संग्रह युग सर्वाधिक प्रचुर होता आया और बीसवीं शताब्दी से प्रखर होता हुआ देखा गया। उसके पहले राजगद्दी और धर्मगद्दी में कोष संग्रह की बात रही। इन दोनों में से सर्वाधिक संग्रह राजकोष में होना पाया जाता रहा। बीसवीं शताब्दी में वस्तु व्यापार, बिचौलियों का संग्रह बुलंद हुआ। बीसवीं शताब्दी के मध्य से ही बिचौलियों और कलाविदों का तेवर ज्यादा संग्रह की ओर तीव्रता से बढ़ा। इसी के साथ–साथ विश्व सुन्दरियों की मानसिकताएँ संग्रह समर्थता की ओर प्रवृत्तशील होना देखा गया। ये सब कहानी कहने के मूल में एक ही बात है जो–जो स्मरणीय तबके ख्यात होने वाले पद में आसीन व्यक्ति कुल मिलाकर संग्रह के चक्कर में ही चक्कर काटता हुआ दिखाई पड़ते हैं। अन्य सामान्य सभी व्यक्ति इन्हीं का लक्ष्यों, रहन–सहन, भोग–बहुभोग आदि क्रियाकलापों से प्रभावित प्रवृत्त होना पाया गया। इसी विधि से सर्वाधिक जन मानस में संग्रह और भोगेच्छाएँ तीव्रता से प्रभावित हुई। इससे यह तथ्य को स्मरण कराना रहा कि प्रकारान्तर से कोई भी संग्रह करे इसी धरती का वस्तु या वस्तु का प्रतीक पत्र मुद्रा को ही होना देखा गया। संग्रह के साथ–साथ द्रोह–विद्रोह–शोषण–युद्ध मानसिकता बना ही रहता है। यह मानसिकता कितने भी ऊँचाई तक पहुँच गई हो पर अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र व्याख्या नहीं बन पाई। जबकि सार्वभौम शुभेच्छा और अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था की प्यास बना ही है।इसलिए लाभोन्मादी अर्थशास्त्र के **विकल्प** को अवगाहन करना आवश्यक होगा। **(अध्याय: 5, पेज नंबर:187–190)**

- उत्पादन कार्यों के गति में जो ईंधनों को संयोजित किया जाता है इसमें आवर्तनशीलता को पहचानना अनिवार्य है। इन्हीं में जो कुछ भी अभी समीचीन प्रदूषण का संकट है इसमें मुख्य तत्व कोयला और खनिज तेल से मुक्त ईंधन विधि और प्रकाश विधियों को संजो लेना ही ईंधन सम्बन्धी आवर्तनशीलता का तात्पर्य है। इसके मुख्य स्रोत का अधिकांश भाग मानव मानस में आ ही चुका है जैसा सूर्य ऊर्जा, प्रपात बल, हवा का दबाव, प्रवाह शक्ति पर, गोबर कचरा से उत्पन्न ईंधन। इन सभी ओर ध्यान जा ही रहा है कि खनिज कोयला और तेल के बाद क्या करेंगे? इसके उत्तर में सोचा गया है। खनिज कोयला और तेल से ही सर्वाधिक प्रदूषण है। इस आधार पर इसकी आवश्यकता धरती को है, इसी आधार पर **विकल्प** को पहचानने की आवश्यकता है। तब **विकल्पात्मक** स्रोतों के प्रति निष्ठा स्थापित होना सहज है। खनिज तेल और कोयला के अतिरिक्त और खतरनाक रूप में जो प्रदूषण आक्रमण कर रहा है वह विकिरणात्मक ईंधन प्रणाली है। ये तीनों धरती पर स्थित अन्न, वनस्पति, जीव और मानव प्रकृति के लिए सर्वाधिक हानिप्रद होना हम समझ चुके हैं। इसके बाद भी इन्हीं तीनों प्रकार के ईंधन की ओर सभी देशों का ध्यान

आकर्षित रहना अभी तक देखा जा रहा है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है **विकल्प** की ओर हमारी निष्ठा पूरा स्थापित नहीं हो पा रही है। इसके मूल कारण दो स्वरूप में दिखाई पड़ती है

(1) हर उत्पादन को स्वचालित बनाने का चक्कर और

(2) उद्योगों का केन्द्रीयकरण प्रणाली का प्रयास। ये दोनों कारण पूँजी निवेश पर आधारित हैं। इसका आधार विशेषज्ञता है। इसी के साथ–साथ जनशक्ति को अर्थात् श्रम शक्ति को खरीदने के क्रम में आ चुकी है। इन्हीं दो उपक्रमों ईंधन **विकल्प** के प्रति निष्ठा स्थापित करने में, होने में अड़चन बन बैठी है। स्वचालित उत्पादन कार्य तंत्र विधि से जितना मानव उत्पादन कार्य में लग रहा था वह कम होता गया। कुछ लोगों को जिन्हें नौकरी मिल जाती है, वे अपने को धन्य मान लेते हैं। बड़े उद्योगों के चलते यह संकट गहराता जाता है। जैसा एक ही प्रकार से शिक्षा ग्रहण किया हुआ एक आदमी को नौकरी मिल जाता है और एक आदमी को नौकरी नहीं मिलता है। नौकरी मिला हुआ अपने को धन्य मानता है, नहीं मिला हुआ अपने को बेकार मानता है, निरर्थक मानता है। ये सभी बातें सभी विद्वानों को पता है। यहाँ उल्लेख करने का यही तात्पर्य है कि इसकी **विकल्प** विधि को पहचानने की आवश्यकता पर बल देना ही रहा। **(अध्याय:6, पेज नंबर:223–225)**

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- मूलतः मन से ही शरीर का संचालन होना देखा जाता है। तन और मन के वियोग की स्थिति में कोई, कार्य शरीर से सम्पन्न नही हो पाता है और मानव की संज्ञा, सार्थक नहीं हो पाती है। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में वर्तमान रहना, मानव व्यवहार का आधार है। ऐसे व्यवहार कार्य के क्रम में, उत्पादन कार्य भी एक आवश्यकीय कृत्य है। उत्पादन का तात्पर्य, तन–मन सहित प्राकृतिक ऐश्वर्य अर्थात पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य स्थापित करना है। इसी क्रम में सम्पूर्ण महत्वाकांक्षा और सामान्य आकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं का उत्पादन हुआ है। इसमें निपुणता, कुशलता प्राप्त करने के क्रियाकलापों को प्रशिक्षण नाम दिया जाता है। यह पूर्णतया चित्रण सहज, तकनीकी सम्पन्न मानसिकता है। इसमें शरीर के अंग अवयव के संयोजन पूर्वक, हस्त लाघव सहित, श्रम नियोजन संपन्न होता है। इस विधि से मनुष्य को हमने उत्पादन कार्य में सफल होते हुए देखा है। अभी तक के उत्पादन, क्रिया कलापों में विकृति का स्वरूप, लाभोन्मादिता ही है। यह भय और प्रलोभन पर आधारित है। इसके **विकल्प** के रूप में "मूल्य और मूल्यांकन" रूपी प्रौद्योगिकी एवं "समाज व्यवस्था सूत्र" को व्याख्यायित और स्थापित करना इस मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान की अभीप्सा है। उक्त प्रकार से उत्पादन कार्य और उसकी मानसिकता स्पष्ट हो चुकी है। **(अध्याय:3, पेज नंबर:28–29)**

- पर्यावरण समस्या का मूल तत्व खनिज तेल व कोयला ही है। इसके **विकल्प** के रूप में सूर्य–उष्मा, प्रवाह–बल की उपयोगिता विधि व उसके लोकव्यापीकरण की आवश्यकता है। इसी से जल, थल व वायु प्रदूषण निवारण होना सुस्पष्ट है। बढ़ती हुई जनसंख्या का कारण केवल असुरक्षा, वह भी मानव में निहित अमानवीयता का भय ही है। प्राकृतिक भय के रूप में भूकम्प, बाढ़, ये सब आता ही है। इसी के साथ बीमारी भी भय का स्रोत है। जहां तक रोग की बात है औषधि, उपचार, उपाय के सहारे निराकरण कर लेना सहज है। **(अध्याय:5–5.1, पेज नंबर:81)**

- भाषा के रूप में भाषा अपने गति में व्यापार भाषा, यांत्रिक भाषा, व्यवसाय भाषा, व्यवस्थात्मक भाषा, राजनैतिक भाषा, दार्शनिक भाषा, शास्त्रीय भाषा, साहित्य भाषा, सांकेतिक भाषाओं के वर्गीकृत रूप को भी प्रस्तुत करने का प्रयास देखने को मिला है। इन सब प्रयासों के प्रति वर्तमान पीढ़ी कृतज्ञ है ही। पीढ़ी से पीढ़ी श्रुति की सार्थकता को पहचानने की कोशिश किया गया। अभी भी शोध प्रयास जारी है। इन्हीं शोध प्रयास के चिन्ह रूप में अनेकानेक धर्म, समुदाय, मत, जाति, वेश, पंथों को पहचानना बना ही है। अभी भी सम्पूर्ण धरती पर उचित संप्रेषित जितने भी प्रकार की श्रुतियाँ है उन सबके साथ विविधि प्रकार से किये गये शोध के उपरान्त भी सार्वभौम प्रयोजन लोक व्यापीकरण होना संभव नहीं हो पाया। यह **विकल्प** के लिए प्रेरक रहा है।

  उक्त विधि से निरूपण यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता की जिज्ञासा वश ही अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन, मानव के लिए समीचीन हुई। इसमें परम्परागत भाषा अथवा शब्दों को कारण गुण गणित के अर्थ में प्रयोग किया है। जहाँ जहाँ परम्परागत विधि से मान्य अर्थ है या अर्थ सूचक है उसे परिभाषा विधि से सह–अस्तित्व तथ्यों और प्रयोजन सहज तथ्यों को इंगित कराने की प्रणाली अपनाया हुआ है। इसी के साथ तथ्यों की धारक वाहकता के रूप

में मानव को निश्चित ध्रुव के रूप में पहचान चुके हैं। इस प्रकार से धारक वाहकता एक ध्रुव, सह–अस्तित्व एक ध्रुव, मानव प्रयोजन, जीवन प्रयोजन एक–एक ध्रुव, के रूप में पहचान चुके हैं। संदर्भानुसार इन्हीं किन्हीं दो ध्रुवों के साथ संयोजित रूप हर अध्ययनशील मेधावियों को सहज सुलभ होने की कामना से मध्यस्थ दर्शन सह–अस्तित्ववाद को प्रस्तुत किया है। इसी के अंगभूत मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र प्रस्तुत है। (**अध्याय:5–5.31, पेज नंबर:191–192**)

- अस्तित्व मूलक, मानव–केन्द्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व में, विकास क्रम में, रासायनिक भौतिक रचनाएं–विरचनाएं स्पष्ट होती है। परमाणु विकास पूर्ण (गठनपूर्ण) होने के उपरान्त, चैतन्य पद में संक्रमित होता है यह समझ में आता है। ऐसी चैतन्य इकाई का जीवन पद में होना, समृद्ध मेधस युक्त शरीर को संचालित करना तथा मानव शरीर व जीवन के संयोग से जागृति को प्रमाणित करना ही, उद्देश्य है। इसी क्रम में मानव **विकल्पात्मक** विश्व–दृष्टि को विकसित करना, आवश्यक रहा। इसी तथ्यवश, अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित विश्व दृष्टि का, लोक व्यापीकरण विधि से विवेक और विज्ञान का मानव व्यवहार में प्रमाणित होना ही **विकल्प** का प्रयोजन है। (**अध्याय:5–5.31, पेज नंबर:209**)

सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2007)

- **विकल्पात्मक अवधारणा**
  1. सत्ता में संपृक्त प्रकृति, अस्तित्व सर्वस्व नित्य वर्तमान है।
  2. अस्तित्व ही सह अस्तित्व के रूप में नित्य वर्तमान है इसका मूल रूप सत्ता में संपृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति ही है यह न तो घटता है और न बढ़ता है।
  3. सहअस्तित्व में प्रत्येक एक अपने त्व सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करते हुए पूरकता उपयोगिता विधि से होना देखने को मिलता है (देखने का मतलब समझने से है)। यह भ्रमित मानव के अतिरिक्त संपूर्ण प्रकृति यथा जीव वनस्पति तथा पदार्थ रूपों में स्पष्ट है प्रत्येक मानव भी व्यवस्था में होना रहना चाहता है एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित करने के लिए उत्सुक है। यह जागृत परंपरा में ही सफल होता है नाकी जीव चेतना में।
  4. प्रत्येक मानव जीवन और शरीर के संयुक्त साकार रूप में वैभव परंपरा में है ही।
  5. जानना–मानना ही समझदारी, पहचानना निर्वाह करना ही ईमानदारी है। ईमानदारी पूर्वक जिम्मेदारी भागीदारी संपन्न होता है। यह जीवन सहज वैभव है। जीने की कला के रूप में अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना ही मानव चेतना मूलक विधि है आचरण है।
  6. मानव जाति एक कर्म (उत्पादन रूप में)अनेक।
  7. मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान सार्वभौम व्यवस्था व सुख रूप में) एक, व्यक्तिवाद समुदायवाद के रूप में अनेक।
  8. ईश्वर सत्ता सहज रूप में (व्यापक, पारगामी, पारदर्शी, रूप में) एक, देवी देवता अनेक।
  9. अखंड राष्ट्र रूप में धरती एक राज्य अनेक। **(अध्याय:2, पेज नंबर:7–8)**

- राज (राज्य) युग से गणतंत्र विधि से जनप्रतिनिधियों का सहमति से शासन, सभी देश, राज (राज्य), राष्ट्र के संविधान, व्यक्ति समुदाय चेतना से ग्रसित एवं शक्ति केन्द्रित शासन के रूप में है, जिसका **विकल्प** अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन, ज्ञान, विवेक, विज्ञान रूप में मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद), शास्त्र अखण्डता, सार्वभौमता के अर्थ में प्रस्तुत है। **(अध्याय:6, पेज नंबर: 81)**

- 7.1 (3) मानवीय–शिक्षा संस्कार पाठ्यक्रम में गुणात्मक परिवर्तन सूत्र

सम्पूर्ण आयाम

1. सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व स्थिर, विकास एवं जागृति निश्चित है सिद्धान्त का अध्ययन विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति सहज बोध सुलभ होने का अध्ययन है।
2. सहअस्तित्व में भौतिक–रासायनिक और जीवन पद, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति व निरन्तरता सहज अध्ययन उपयोगिता–पूरकता सिद्धान्त जैसे तथ्यों के सभी आयामों के प्रधान मुद्दों को निम्नानुसार **विकल्प** रूप में सकारात्मक विधि से जागृति सहज सूत्रों को पहचाना गया है।

प्रचलित (विषय) :– जागृति के लिए वस्तु

1) विज्ञान के साथ – चैतन्य पक्ष का अध्ययन
2) मनोविज्ञान शास्त्र के साथ – संस्कार (अनुभव मूलक–प्रमाण) पक्ष का अध्ययन
3) दर्शन शास्त्र के साथ – क्रिया पक्ष (प्रमाण) का अध्ययन
4) अर्थशास्त्र के साथ – प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का (ग्राम स्वराज्य विधि से) सदुपयोग व सुरक्षात्मक पक्ष का अध्ययन
5) राजनीति शास्त्र के साथ – मानवीयता का संरक्षण एवं संवर्धनात्मक विधि व्यवस्था नीति पक्ष का अध्ययन
6) समाजशास्त्र के साथ – मानवीय संस्कृति अखंड समाज तथा सभ्यता पक्ष का अध्ययन
7) भूगोल, इतिहास के साथ – मानव तथा मानवीयता पक्ष का अध्ययन
8) साहित्य के साथ – तात्विकता का अर्थात् सहअस्तित्व रूपी परम सत्य का अध्ययन

उक्त सभी आयामों के विस्तृत अध्ययन हेतु 'मध्यस्थ दर्शन–सहअस्तित्व वाद' शास्त्र के रूप में प्रस्तावित है। यही जागृत चेतन परंपरा के लिए स्रोत है क्योंकि सहअस्तित्व नित्य वर्तमान और प्रभावी है। **(अध्याय:7, पेज नंबर: 104–106)**

- उत्पादन –कार्य व्यवस्था

(4) परिवार में – हस्त कला, ग्राम–शिल्प कला

परिवार समूह में – कुटीर उद्योग

ग्राम परिवार में – ग्रामोद्योग

ग्राम समूह परिवार में – लघु उद्योग, **विकल्प**

क्षेत्र परिवार में – लघु उद्योग, मध्यम कोटि का उद्योग, **विकल्प**

मण्डल परिवार में – मध्यम कोटि का उद्योग व बड़े उद्योग, **विकल्प**

मण्डल समूह परिवार में – मध्यम व बड़े उद्योग, **विकल्प**

मुख्य राज्य परिवार में – बड़े उद्योग, **विकल्प**

प्रधान राज्य परिवार में – वृहत्तर उद्योग, **विकल्प**

विश्व राज्य परिवार में – परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि से श्रेष्ठता व उपयोगिता का मूल्यांकन विधि रहेगा। विश्व परिवार सभा न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य, विनिमय सुलभता में शोधपूर्वक मार्गदर्शन, उत्पादन में

गुणवत्ता का शोध, साथ में चारों अवस्था में संतुलन सूत्र व्याख्या में पारंगत प्रमाण, मार्गदर्शन कार्य करेगा। **(अध्याय:7, पेज नंबर: 138–139)**

- 9.28 सुदूर विगत से मानव परंपरा की गतिविधि, घटनाओं के आंकलन से पता चलता है कि अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था को पहचाना नहीं गया इसलिए **विकल्प** रूप में सह– अस्तित्ववादी प्रस्तुति है। **(अध्याय:12, पेज नंबर: 281)**
- 13.22 मानव ही अपनी कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता के आधार पर शीला युग, धातु युग, ग्राम कबीला युग तक, ग्राम कबीला युग से राजा राज्य युग तक, राजा राज्य संप्रदाय (धर्म) युग से लोकतंत्र गणतंत्र शासन आधुनिक युग तक पहुंचे हैं और मानव चरित्र मूल्य और नैतिकता से संपन्न नहीं हो पाया इसलिए **विकल्प** सहज प्रमाण रूप में अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन मध्यस्थ दर्शन अस्तित्ववाद प्रस्तुत हो चुका है। **(अध्याय: 12, पेज नंबर:290–291)**

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- समाधि पर्यन्त तक साधना है। साधना काल में, मानव में वैचारिक समाधानित होना बना ही नहीं रहता, मन उद्वेलित रहता ही है, क्योंकि मानव समस्या से पीड़ित होकर ही तो समाधि की ओर दौड़ता है। समाधि तक प्रयत्न करते हुए ही आदमी की ऊँचाई दिखाई पड़ती है। साधनाकाल में मानव को तमाम प्रकार की ऊटपटांग बात आती है समाधि के बाद उनका शमन होता है। **विकल्प** विधि से अध्ययन, पारंगत, प्रमाण विधि है। **(अध्याय:1, पेज नंबर:12)**
- "जीवन' अपने से, सदा से, शिशु काल से मन की दो क्रियाओं चयन, आस्वादन को शुरू करता है। विश्लेषण और तुलन में विश्लेषण तो करता ही है तुलन में केवल प्रिय, हित, लाभ के आधार पर ही करता है। चित्त की एक क्रिया चित्रण को हम ही करते ही हैं। चित्रण क्रिया के कारण मानव अपना सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा की समस्त वस्तुओं को चित्रित कर लिया है और उसको प्राप्त कर लिया है। प्राप्त करने के बाद भी में व्यवस्था तक नहीं पहूँचे। आदर्शवाद, शुभकल्पना अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया। भौतिक और उन्मादत्रय पूर्वक सुविधा–संग्रह प्रवृत्तियों का शिक्षण–प्रशिक्षण कार्य क्रम के लोकव्यापीकरण में सफल होते हुए भी सबको सुविधा–संग्रह सुलभ नहीं हुआ। इन्हीं उपलब्धियों को हम सोचते रहे श्रेष्ठता की उपलब्धि है, मानवीयता की उपलब्धि है। मानव के अधिकारों की उपलब्धि है, शोषण, संघर्ष की उपलब्धि है। इन बातों को सुनकर हँसी भी आती है। अफसोस भी होता है। हम कैसे मान लिए कि हम मानव के लिए सब कुछ पा लिए, मानव का अध्ययन कर लिए। यह सोचने का पुनर्विचार करने का मुद्दा है। शरीर शास्त्र के नाम से जो कहा जाता है उसमें केवल शरीर रचना व प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है और कहते हैं कि मानव का अध्ययन कराया जाता है। आप सोचिए शरीर को काटकर, मांसपेशियों को, हड्डियों को गिनकर मानव का अध्ययन किया जा सकता है ? जीवंत मानव शरीर में आँख, कान आदि का अध्ययन करने पर मानव का अध्ययन कैसे होगा। इस तरह परंपरा में मानव को झूठ का पुलिंदा लादा जाता है जबकि हम मानव का अध्ययन किये नहीं और डींग हांकते हैं कि हम मानव का अध्ययन कर लिये हैं। अस्तित्व का अध्ययन किये नहीं और कहते हैं कि हम इस पर शासन करेंगे। इस ढंग से मानव परंपरा बोझ तले दब गई है। अब दो ही **विकल्प** है या तो इससे निकला जाये या दबकर मरा जाये। नियति ही अपने को संतुलित करती है यह भी हमें पढ़ाया जाता है। मानव जाति जितना अति कर सकता है करने के बाद प्रकृति ऐसी परिस्थिति पैदा करेगी कि मानव इस धरती पर रहेगा ही नहीं। पर्यावरण की बात पर में हल्ला–गुल्ला सुनते ही है कितना आदमी बचेगा कितना मरेगा सके लिये उपाय सोचा जा रहा है। कुछ देश वाले सोचते हैं हमारा देश बच जाये, कुछ धर्म वाले सोचते हैं कि हमारे धर्म वाले बच जायें। बचाने वाला वही है जिसे रहस्यमयईश्वर, परमात्मा, देवी–देवता, अवतार, देवदूत आदि से काल्पनिक आश्वासन उनको मिलता है ऐसा किसी एक का नाम लेते हैं। उसमें कुछ मजहब की बात रहती है। बाकी का अंत होने वाला है। यह सब कहकर कहाँ जाना चाहते हैं? क्या होगा ऐसा सोचने से ? इस मुद्दे पर हमारा सोचना यह है कि धर्म और राज्य, शिक्षा के नाम पर सभी भटक चुके हैं। अच्छी तरह से। धर्म गद्दी में धर्म की कोई सार्वभौमता नहीं है। धर्मगद्दी के नाम पर जितने भी धर्म हैं उनमें कोई सार्वभौम धर्म का आकार नहीं है। कोई शिक्षा नहीं, कोई

प्रमाण नहीं। कहाँ से धर्म को लायें ? राज्य गद्दी में राज्य की कोई अवधारणा सार्वभौम तो नहीं है।... **(अध्याय:3, पेज नंबर:65–67)**

- **विकल्प** रूप में यहाँ मानव के उद्धार का मूल स्रोत है समझदारी। सबसे बड़ी गद्दी है शिक्षण संस्था। उसमें विज्ञान के साथ चैतन्य का अध्ययन होना चाहिए। चैतन्य के अध्ययन के बिना सह–अस्तित्व का अध्ययन कैसे होगा? ये दोनों भाग शिक्षा संस्थानों में शिक्षा वांगमय में, शिक्षा प्रक्रिया में अछूता है। दूसरा, मनोविज्ञान में मानव के अध्ययन के लिए मानव संचेतना समझ में आता है, प्रमाणित हो जाता है, आवश्यकता भी समझ में आती है इसलिए संस्कार पक्ष का अध्ययन मनोविज्ञान में होना चाहिए। तीसरा, दर्शन शास्त्र के साथ प्रामाणिकता होनी चाहिए। अभी तक हम मानते रहे हैं कि मानव पढ़ा और पढ़कर सुनाया तो विद्वान हो गया। जबकि ये विद्वान हुआ नहीं रहता। विद्वान, समझदारी का स्वरूप है और विद्या अपने आप में अस्तित्व सहज है। सह–अस्तित्व को समझे बिना, जीवन को समझे बिना मानवीयतापूर्ण आचरण के बिना विद्वान होता नहीं। ये समझ में आता है विचार शैली भी बनता है, योजना भी बनता है, कार्ययोजना भी बनता है फलस्वरूप प्रमाणित भी होता है।... **(अध्याय:3, पेज नंबर:73)**

- शिक्षा के मानवीकरण में हम विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन कराएंगे। चैतन्य पक्ष का अध्ययन का मतलब है जीवन। जीवन का, जीवन जागृति का अध्ययन कराएंगे। रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना का अध्ययन कराएंगे। मानव के लिए रचना–विरचना में पूरकता तथा मानव इस संसार के लिए कैसे पूरक, कैसे उपयोगी होगा, यह सब अध्ययन कराएंगे। इसके साथ ही **विकल्पात्मक** दर्शन शास्त्र में क्रिया पक्ष का अध्ययन कराएंगे। क्रिया पक्ष का अर्थ है मानव की समझदारी के लिए दर्शन है।.. **(अध्याय:3, पेज नंबर: 78–79)**

- ....इस ढंग से नैतिक मानव, मूल्य मानव, चरित्र मानव यह तीनों मिलकर मानवीय आचरण बनता है। व्यवस्था में जीने के लिए यही तीनों आधार है। यही सूत्र है, परिवार में, समाज में, व्यवस्था में, व्यवसाय में, प्रकृति में सब जगह इस आचरण को व्याख्यायित करने पर, लागू करने पर मानवीय संविधान हमें करतलगत हुई। मानवीय आचरण ही है जो राष्ट्रीय चरित्र के रूप में वैभवित हो सकता है। विगत में धार्मिक राजनीति, आर्थिक राजनीति के बारे में में सोच चुके हैं वह भी पराभवित हो चुकी। अपने को कहीं न कहीं **विकल्प** को खोजना ही पड़ेगा। इसका प्रस्ताव यही है कि राष्ट्रीय चरित्र का आधार बिन्दु मानवीयता पूर्ण आचरण ही होगा। इसको समझने में मनुष्य को किसी भी देश काल में कोई परेशानी नहीं होगी। मानवीयता पूर्ण आचरण सुख एक बार आस्वादन करने की जरूरत है। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण आचरण, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान की में व्याख्या देते हैं, वही समाजशात्र के रूप में हमें प्राप्त हो जाता है। शिक्षा में मानवीयता पूर्ण समाज शात्र को लाने की जरूरत है। मानव कैसे समझदार होगा, मानवीयतापूर्ण मानव क्या वैभव है। मानवीयता पूर्ण मानव परिवार में, समाज में, व्यवस्था में कैसे जीता है यह पूरा समाजशात्र है इसको अलग से अध्ययन करने की जरूरत है। मनुष्य बहुत अच्छे ढंग से वर्तमान में विश्वास रखते हुए जी पाता है। अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है इस रूप में परम सत्य के रूप में अस्तित्व को पहचान सकते हैं। सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही अस्तित्व है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:89–90)**

- मैं इस विधि से शिक्षा संस्कार सम्पन्न करता हूँ। प्रतिफल (भौतिक वस्तु) मिलने का कभी मन में खाका आया ही नहीं। समझदारी को समझाने के लिए भौतिक द्रव्य की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा कार्यक्रम में जो अध्यापक है वह अपने में स्वायत्त रहने, स्वालम्बी रहने की आवश्यकता है।समझदारी से यह आता है कि जो मानव स्वायत्त रहेगा उसका स्वावलंबी रहना स्वाभाविक है तो आवश्यकीय वस्तुओं को निर्मित करेगा, समर्थ रहेगा, उपकार करेगा ही। हर मनुष्य में सहयोग, उपकार प्रवृत्ति रहती है। इसका सर्वेक्षण कर सकते हैं यही उपकारवादी विधि की उपज स्थली है।स्वाभाविक रूप में बचपन की सहयोगी प्रवृत्ति को सुदृढ़ करते जाएँ तो प्रौढ़ावस्था में वह उपकारी हो ही जाता है। इतना ही हमको करना है शिक्षा में ये स्त्रोत को सार्थक बनाने की आवश्यकता एवं प्रावधान चाहिए जिसे मानवीय शिक्षा ही सार्थक बनाएगा। यांत्रिक शिक्षा एवं व्यवसायी शिक्षा इसे सार्थक बनाएगा नहीं।इस ओर ध्यानकर्षण होने पर संभव है व्यवहार और व्यवस्था शिक्षा की ओर, प्रमाण शिक्षा की ओर आपकी प्रवृत्ति हो जाए। प्रमाण का आधार मनुष्य को होना है। यांत्रिक शिक्षा से, व्यवसायी शिक्षा से मानव सामाजिक होना तो बनेगा नहीं। इससे मानव के साथ अनाचार अत्याचार हो न हो किन्तु धरती के साथ अनाचार अत्याचार अवश्यंभावी है। यांत्रिक और व्यवसायक शिक्षा से यह धरती बर्बाद हुई है अत: इसके **विकल्प** में मानवीय शिक्षा, व्यवहार शिक्षा, समाधान सम्पन्न शिक्षा, प्रमाण शिक्षा चाहिए ऐसी शिक्षा के लिए मानवीयता पूर्ण आचरण को मध्य में रखा जाए। मानवीयता पूर्ण आचरण को संरक्षित करने केलिए मानव को समझदार बनाने के लिए सम्पूर्ण वांगमय तैयार किया जाए। **(अध्याय:4, पेज नंबर:93)**

- कोई न कोई गद्दीपर बैठा रहा है उसे भी सुख, स्वराज्य और स्वतन्त्रता नहीं मिला। गद्दीकी ओर ताकने वालों को, देखने वालों को भी सुख स्वराज्य नहीं मिला। इस विधि से पता लगता है कि अभी तक में सभी खाली हाथ हैं। इस रिक्तता को पाटने के लिए हर मानव में चेतना विकास पूर्वक मानवत्व सहित जीना ही **विकल्प** है। मानव जागृत होने के लिए मानवीय शिक्षा ही **विकल्प** है। इसका प्रयास मेंने किया है, खुशहाली के लिए किया है। किसी का उपकार करने के लिए, एहसान लादने के लिए नहीं किया। मैं बोधपूर्वक यानि अनुभव का बोध होने के आधार पर (अनुभव प्रमाणिकता है – प्रमाणिकता का बोध बुद्धि में होता है) बुद्धि का प्रवर्तन होता है। उसी का नाम संकल्प है। संकल्प के आधार पर हम अभिव्यक्त, संप्रेषित होने की इच्छा होती है। प्रमाणित करने की प्रवृत्ति होती है। हम प्रमाणित कर देखा यह सबके लिए जरूरी है। ऐसा जानते हुए आगे का कार्यक्रम प्रस्तुत करना शुरू किया। **(अध्याय:4, पेज नंबर:96–97)**

- प्रश्न :– आज दुनिया व्यापार में रोजगार में यहाँ तक की शिक्षा में भी लाभ कमाने की तरफ दौड़ रही है जिसको आपने लाभोंमाद कहा है। इससे विश्व में जो सामाजिक, आर्थिक, नैसर्गिक समस्यायें उत्पन्न हुई हैं इनका निदान कहां मिलेगा ? यदि लाभ कमाने के चक्कर को दुनिया छोड़ेना चाहे तो उसका **विकल्प** क्या होगेगा ?

  उत्तर :– कोई चीज निष्फल होता है तो सफलता के लिए प्रयास किया जा सकता है। लक्ष्य विहीनता, दिशा विहीनता की स्थिति में जो मानव फंस गया है वह दिशा और लक्ष्य से वंचित तो हो ही गया और उसके कारण उसके योजना और कार्यक्रम में भी निश्चतता नहीं बन पाती। कार्यक्रम की निश्चयता तभी बन पाती है जब लक्ष्य स्थिर हो, दिशा निश्चत हो। इसमें तात्विक रूप में विवेक सम्मत विज्ञान, विज्ञान सम्मत विवेक दोनों का तालमेल

एक संगीत के रूप में, एक गति के रूप में हमको मिल जाता है। यही मुख्य बात है। अभी जो लाभोन्माद रूपी अर्थ व्यवस्था का लक्ष्य खोजने जायेंगे तो लक्ष्य केवल संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग ही है जिसका निश्चयन कभी भी होना ही नहीं है। संग्रह– सुविधा का कोई तृप्ति बिन्दु नहीं है। इस धरती पर रहने वाले 700 करोड़ मनुष्य या कोई भी एक आदमी को संग्रह–सुविधा का तृप्ति बिन्दु मिलता नहीं पाये हैं और न पा सकते हैं, न प्रमाणित कर सकते है। यही दिशा विहीनता व लक्ष्य विहीनता का गवाही है। यदि लक्ष्य और दिशा निश्चित होती है तो हमारा कार्यक्रम भी निश्चत ही होता है। लाभोन्माद इसलिए कहा कि इसमें कभी भी तृप्ति नहीं होना है किन्तु, सदा–सदा के लिए हाय–हाय के साथ जुटे रहना है इसका नाम उन्माद बताया। हाय–हाय के स्वरूप को मैंने देखा है आप भी देख पाते होंगे। हाय–हाय का विस्तार ज्यादा बढ़ता जाता है, कम होता नहीं। तो हाय–हाय के विस्तार को बढ़ाकर में कौन सा लक्ष्य पा जायेंगे, कहाँ पहूँचकर तृप्ति पायेंगे ? उसके बाद संग्रह–सुविधा में पा भी जायें तो उसका नियोजन, भोग, बहुभोग, अतिभोग की सीमा में ही हो पाता है और उसका कोई गम्य स्थली है भी नहीं। आज तक भोग से तृप्ति पाना किसी को हुआ नहीं। इन दोनों गवाहियों से में निष्कर्ष पाये हैं कि ये उन्माद नहीं तो और क्या चीज है। इस प्रकार के उन्माद से 700 करोड़ आदमी उन्मादित होगा इससे छूटाने वाला कौन ? इस प्रश्न को दूर करने के क्रम में ही अनुसंधानपूर्वक प्रत्येक मानव सर्वशुभ सुख चाहते हैं, निश्चय चाहते हैं, निरंतरता चाहते हैं। यही सब मिला करके अनुसंधान की वस्तु है। उसके पक्ष में अर्थव्यवस्था भी एक अंश है। तन, मन, धन रूपी अर्थ होता है। तन भी होगा, मन भी होगा, धन भी होगा न तीनों में से किसी एक को अलग करके अर्थशास्त्र होता नहीं। जबकि अभी तक पढ़ाये हुए अर्थशास्त्र के अनुसार मुद्रा को अर्थ बताया है। मुद्रा दो प्रकार का बताया (1) धातु मुद्रा (2) पत्र मुद्रा। पत्र मुद्रा किसी छापेखाने में छपता ही है। अब छापने का तकनीकी लोकव्यापीकरण हो चुकी है जिसके कारण नकली नोट छपता ही है। तो वर्तमान अर्थशास्त्र जिसकी कीर्ति गायी जाती है वह पत्र मुद्रा, और धातुमुद्रा का विज्ञान है। धातु मुद्रा, पत्र मुद्रा जितनी भी हमारे पास हो उससे जब वांक्षित वस्तु नहीं मिलती तो उस मुद्रा से न तो प्यास बुझती है न पेट भरता है। इसलिए इसको क्या माना जाए। वस्तु का प्रतीक प्राप्त होने से वस्तु की प्राप्ति होती नहीं। इस तरह से मुद्रा की प्राप्ति को हम वस्तु की प्राप्ति मान बैठे हैं इसी का नाम है पागलपन। इसके निराकरण के लिए मैंने जो प्रस्तुत किया है वह तन, मन, धन रूपी अर्थ है। यहां धन का तात्पर्य सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं से है। जिसमें आहार, आवास, अलंकार, दूरदर्शन, दूरगमन, दूरश्रवण संबधी आवश्यक वस्तुएं है। इस तरह से हमारे आवश्यकीय वस्तुओं की उपयोगिता होगी संग्रहण नहीं होगा। जैसे अनाज पैदा करते हैं एक वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष रखेंगे बाद में रखने पर तो सड़ ही जायेगा। उसी प्रकार कोई यंत्र उपकरण उपयोग न करने से अपने आप जंग पकड़ कर समाप्त हो जायेगा। इस तरह में जो भी यंत्रों को तैयार करते हैं वे सब उपयोग के लिए रहता है इनको संग्रह किया भी नहीं जा सकता। संग्रह किया जा सकता है तो भी एक सीमा तक। जितना ज्यादा में संग्रह करने जायेंगे उतना ही ज्यादा कष्टदायक हो जाता है। इसलिए इनकी उपयोगिता अवश्यसंभावी हो जाता है। उपयोगिता के अनंतर सद्उपयोगिता और प्रयोजनशीलता के लिए सारे वस्तुओं को नियोजित किया जा सकता है। एक बहुत खूबी की बात मैंने देखा है किसी भी वस्तु के उत्पादन करते समय मन का होना जरूरी है, मन के बाद तन का होना जरूरी है। मन और तन के संयोग से ही सारे वस्तुओं का उत्पादन होता है। इस ढ़ंग से में शायद साफ – साफ एक अवधारणा को स्वीकार सकते हैं कि वस्तु का मतलब है धन और इनका अर्थ है सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तु। इस निर्णय से फायदा क्या होगा मानव जाति का मन उत्पादन की ओर लगने की शुरूआत होती है। अभी तक अर्थशास्त्र का डंका बजा–बजाकर में मानव जाति (पढ़ा हुआ) के उत्पादन प्रकृति को

निरर्थक या बिल्कुल उन्मूलन किये ही रहे हैं। बरबाद किए ही रहते हैं। उसके बाद और कोई स्पेशलाइजेशन की बात करते हैं उसमें उत्पादन कार्य प्रवृत्ति और भी बर्बाद होती ही है। बर्बाद होने के बाद वो एक अच्छा आदमी माना जाता है। ऐसा अच्छा आदमी बनने के पश्चात् बिना उत्पादन किये उनको सब कुछ चाहिए, सबसे ज्यादा उन्हीं को चाहिए। इस ढ़ंग से उत्पादन नहीं करने की प्रवृति और सम्पूर्ण वस्तुओं को ज्यादा से ज्यादा पाने की इच्छा ये दोनों मिलकरके संसार के साथ द्रोह, विद्रोह, शोषण होना भावी हो जाता है। इस ढंग से आदमी फंसा है। इससे मुक्ति चाहिए। मैं मुक्ति पाया हूं हमको किसी का शोषण करने की जरूरत नहीं है, न द्रोह, विद्रोह करने की जरूरत है। परिश्रम से में स्वयं अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं। आप भी कर सकते हैं। आवश्यकता परिवार में ही निश्वत होती है, न कहीं व्यक्ति में न संसार में होती है। परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर लिया तो हम समृद्धि का अनुभव करते हैं। इस ढंग से आर्वतनशील अर्थ व्यवस्था के अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई। उसको निश्वत रूप में उसकी रचना करके हिन्दी भाषा में संसार को दिया है। वह लोक गम्य हो जाए तो इससे उपकार होगा। इससे कभी भी संसार के किसी भी आदमी, किसी भी परिवार का कहीं भी क्षति होने वाला नहीं है। होगा तो उपकार ही होगा। तो हमें भी शोषण विधि से मुक्त होना है। द्रोह, विद्रोह से मुक्त होना है। जो राजनीति अपने मन से कूटनीति को अपना लिया है उससे कहीं भी अभय, अमन, चैन होने वाला नहीं है। अमन चैन के लिए आर्वतनशील अर्थ व्यवस्था चाहिए। जैसे तन, मन, धन रूपी अर्थ को हम प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजित किया तो नियोजन से उत्पादित वस्तु हमारा तन के लिए पोषण, संरक्षण, समाज गति का आधार बनता है। पुनः हमारे इसी समाज गति, पोषण, संरक्षण के आधार पर में पुनः वस्तु को निर्मित करने योग्य होते हैं, इस तरह से यह आवर्तनशील है। मनुष्य अपनी शक्तियों को विचार शक्ति के साथ शरीर के द्वारा प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन करता है फलस्वरूप वस्तु निर्मित होती है। वस्तु जितना हमको चाहिए उससे ज्यादा में निर्मित कर ही सकते हैं, हाय–हाय से मुक्त होने की बात यहाँ आती है। हम पहले से ही तृप्त होना चाह रहे हैं, सुखी होना चाह रहे हैं, इसलिए तृप्ति का उपाय खोजते हैं, उपाय खोजते–खोजते तृप्ति का उपाय आता है तो अपनाते ही हैं। इसमें छोड़ने वाली कोई बात नहीं है। गलती को सही में बदलने की बात है, अपराध को न्याय में बदलने की बात है, युद्ध को सहअस्तित्व में बदलने की बात है, द्रोह को सौजन्यता में बदलने की बात है, विद्रोह को मैत्री में बदलने की बात आती है हम ये सब को स्वीकारते ही हैं। 700 करोड़ लोगों से पूछ लीजिए द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध करना चाहिए की नहीं। सभी कहेंगे नहीं करना चाहिए। मेरे अनुसार कोई भी आदमी इसके लिए तैयार नहीं होता है कि वह हाय–हाय करता रहे। इस आवर्तनशील अर्थ क्रम से मानव जाति हाय–हाय, द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध से मुक्त हो सकता है जैसे पागल, स्वस्थ होने की इच्छा रखता है, वैसे ही आदमी में भी लाभोन्मादी अर्थ व्यवस्था में आर्वतनशील अर्थव्यवस्था की आकांक्षा समायी ही है, समायी हुई बात को जागृत करने की बात है। शुभाकांक्षा हर मनुष्य में समायी ही रहती है उसको जगाने की बात है। जगाने के क्रम में आवर्तनशील अर्थ एक परिचय व्यवस्था एक अविभाज्य स्वरूप है, इसका मूल सिद्धांत श्रम नियोजन, श्रम विनिमय सिद्धांत है। इसी में हमारा महत्वाकांक्षा, सामान्यकांक्षा से संबंधित वस्तुओं को निर्मित करना है। आवर्तनशील अर्थव्यवस्था होना ही वर्तमान है, प्रकृति सहज है, नियति सहज, सह–अस्तित्व सहज है। इसलिए इसको हमें पूरा अध्ययन करना चाहिए। जीवन में चरितार्थ करना चाहिए और स्वयं संतुष्ट होकर संतुष्टि के स्रोत बनना चाहिए। **(अध्याय:4, पेज नंबर:107 –111)**

सन्दर्भः विकल्प एवं अध्ययन बिन्दु

(संस्करण: 2011, मुद्रण:2016)

मानव बंधुओं

अभी तक विगत से चली आयी ईश्वरवाद और भौतिकवाद की नजरिया से मानव का अध्ययन सम्पन्न नहीं हुआ। यह सूचना देते हुए प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ कि **विकल्प** अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन है। मध्यस्थ दर्शन–सह–अस्तित्व में, से, के लिए मानव का अध्ययन संभव हो गया है।

इस विकल्प में आपको अवगत कराने का प्रयत्न है कि मानव का अध्ययन मानव चेतना सम्मत मूल्य शिक्षा विधि से सर्वसुलभ होने का सभी निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण सम्पन्न हो चुका है। ऐसे केन्द्र में से एक अभ्युदय संस्थान छत्तीसगढ़ की सीमा में कार्यरत है।

इस सूचना में यह भी प्रस्तुत कर रहे हैं कि सर्व मानव समझदार न्याय पूर्वक जी सकता है, हर समझदार परिवार समाधान–समृद्धि पूर्वक जी सकता है। यह चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से सर्व सुलभ होने की व्यवस्था है। आप अपने सद्विवेक से प्रस्तुत सूचनाओं से अवगत होंगे। यही विश्वास है।

आपका

ए. नागराज, प्रणेता

मध्यस्थ दर्शन सह अस्तित्ववाद

दिव्य पथ संस्थान

भजनाश्रम, अमरकंटक,

जिला–शहडोल (म.प्र.)

विकल्प (जीवन विद्या)

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में प्राप्त अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता, (जानने वाला), सह–अस्तित्वरूपी अस्तित्व जानने मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही ज्ञेय दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान व मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सहअस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययनगम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सह–अस्तित्ववाद–शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए.नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।
3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान "ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या" जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

   उपासना :–देवी देवताओं के संदर्भ में

   कर्म :–स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)

   मनुधर्म शास्त्र में :–चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।

   कर्म काण्डों में :–गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्म काण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि –

4. सत्यम ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है? तत्कालीन वेदज्ञों एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :–

   समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभवपूर्ण विधि से समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद वांगमय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों के अनुसार– रहस्य मूलक ईश्वर केद्रित चिंतन ज्ञान तथा परम्परा के अनुसार– ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय

विकल्प के अनुसार – ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोध गम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रुप में स्पष्ट हुआ.

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केंद्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित सम्पूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।
7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुयें व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही "मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद" शास्त्र सूत्र है।

सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर–गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि–धुन के रुप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना–आराधना–अर्चना–स्तवन कार्य सम्पन्न होता रहा।
9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवा भावी तथा श्रम शील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्नचिन्ह रहे।
10. **प्रथम प्रश्न** उभरा कि –

ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे ?

दूसरा प्रश्न –

ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे ?

तीसरा प्रश्न –

शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण ?

आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्गाता प्रमाण?

शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण ?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न –

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय–चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट–नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जनप्रतिनिधि कैसा ?

संविधान में धर्म निरपेक्षता – एक वाक्य, एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता – एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसका प्रक्रिया होना।

जनतंत्र – शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है ? समानता व धर्म निरपेक्षता ?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्मानीय ऋषि महर्षियों के सुझाव से–
    1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।
    2) साधना के अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।
    3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।

       सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आई।

    4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा विचार इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह से अट्ठारह घंटे तक होती रही।

       समाधि, ध्यान, धारणा क्रम में संयम स्वयं स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारी। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 घण्टे से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरुप संपूर्ण अस्तित्व सह–अस्तित्व सहज रूप में होना–रहना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वाङ्ग्मय "मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद" शास्त्र के रुप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :– व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़ चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :– परमाणु में विकासक्रम के रुप में भूखे अजीर्ण व परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त गठनपूर्ण परमाणुओं के रूप में जीवन होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :– गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई–जीवन रुप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :– भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण भौतिक–रासायनिक रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन–वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मनुष्य शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :– शरीर व जीवन के संयुक्त रुप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में से के लिए :– सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :– सहअस्तित्व सहज विधि से ही :–

(1) अस्तित्व में चार अवस्थाएँ

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था और

(2) अस्तित्व में चार पद

- प्राणपद
- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद

(3) और

- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति है।

जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैं सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या, मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मनुष्य देवता हो

धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

– ए. नागराज

विकल्प का स्वरुप कार्य–व्यवहार रुप में

16. विकास क्रम में पदार्थ अवस्था एवं प्राण अवस्था है।

पदार्थावस्था :– धरती में संपूर्ण प्रकार के खनिजों से सम्पन्न होने के उपरांत।

प्राणावस्था :– सभी प्रकार के वन बड़े छोटे जंगल अनेक प्रकार के वनस्पतियों से सम्पन्न होना पाया जाता है। वन खनिजों के संतुलन में मौसम संतुलित रहना, यह भी समझ में आया।

साथ में यह भी समझ में आया कि मानव जागृति क्रम में जीव चेतनावश जीता हुआ समुदाय परंपराओं में मानव ही पशु मानव, राक्षस मानव के रुप में छल, कपट, दंभ, पाखण्ड, द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध, साम, दाम, दण्ड, भेद रुपी कुचक्रवश सम्पूर्ण प्रकार के अपराध करना वैध मानकर जीना होता रहा जिससे धरती बीमार हो गई। खनिज कोयला, खनिज तेल और विकिरणीय धातुओं को धरती में से अपहरण करना धरती के साथ अपराध स्पष्ट है। इस क्रम में धरती बीमार हो गयी और मानव के रहने लायक बचेगी कि नहीं यह प्रश्नचिन्ह लग गयाहै। इसके विकल्प में प्रवाह बल से ऊर्जा प्राप्त करने का सुझाव है। सौर ऊर्जा संबंधी उपकरणों को सस्ता बनाने के लिए, हवा तरंग को ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करने के लिए सुझाव है। यह राष्ट्रीय योजना के अंतर्गत सोचने के लिए मुद्दा सुझाया गया।

17. जीव चेतना का प्रमाण धरती पर सभी संविधानों में गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना, युद्ध को युद्ध से रोकना के स्वरुप में देखने को मिला। इसे वैध माना।

– शिक्षा में लाभोन्माद, कामोन्माद, भोगोन्मादी कार्य व्यवहार के लिए प्रोत्साहन देना।

– सभी प्रकार के प्रचार माध्यम भय और प्रलोभन के अर्थ में कार्यरत है यही मानव जाति की हैसियत है ऐसा मुझे समझ में आया।

18. उक्त कारणों से उनमें विकल्प प्रस्तुत करने की स्वीकृति हुई जो:–

सहअस्तित्ववादी विधि से आवर्तनशील अर्थशास्त्र, व्यवहारवादी समाजशास्त्र, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र प्रस्तुत है।

जिसमें जीवनमूल्य – सुख–शांति–संतोष–आनन्द, मानव लक्ष्य रुपी समाधान–समृद्धि–अभय–सहअस्तित्व सहज परंपरा में दस सोपानीय व्यवस्था विधि से सफल होने का संभावना प्रमाण वर्तमान होना प्रस्तावित है।

19. मानवीय मूल्य = धीरता, वीरता, उदारता, दया कृपा करुणा एवं मानव लक्ष्य – समाधान समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास चारों अवस्थाओं के साथ) वर्तमान होना प्रस्तावित है।

मानव संस्कृति, सभ्यता विधि, व्यवस्था सहज प्रमाण वर्तमान होना प्रस्तावित है यही सहअस्तित्व है।

स्थापित मूल्य – परस्पर संबंधों की पहचान, संबंधों में मूल्यों का निर्वाह होना ही संस्कृति नित्य उत्सव सहज वैभव अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या सहज प्रमाण वर्तमान होना प्रस्तावित है।

शिष्ट मूल्यों के साथ वस्तुओं का आदान, प्रदान, अर्पण, समर्पण क्रिया कलाप रुप में नित्य उत्सव होना ही मानव चेतना सहज वैभव है। यह भी प्रस्तावित है।

मानव चेतना ही व्यवहार में मानवत्व है। आचरण में नियम है।

20. मानवत्व समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व रुप में प्रमाण वर्तमान उत्सव है।

मानव चेतना सहज ज्ञान, विवेक, विज्ञान सम्मत सोच विचार योजना कार्ययोजना व्यवहार फल परिणाम विज्ञान विवेक ज्ञान सम्मत होना ही नित्य 'समाधान' उत्सव यही मानव चेतना सहज वैभव है। मानव चेतना सहज वैभव ही मानवत्व है।

ज्ञान – सहअस्तित्व रूपी

- अस्तित्व दर्शन ज्ञान
- जीवन ज्ञान
- मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान

विवेक –

- जीवन सहज अमरत्व
- शरीर सहज नश्वरत्व
- व्यवहार सहज नियम

मानवीयतापूर्ण आचरण–

- स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष दयापूर्ण कार्य व्यवहार
- संबंध मूल्य मूल्यांकन उभय तृप्ति
- तन मन धन रुपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा

विज्ञान–

- काल क्रिया निर्णयवादी ज्ञान
- क्रिया की अवधि = काल
- क्रिया नित्य वर्तमान

सहअस्तित्व में सम्पूर्ण प्रकृति क्रिया स्वरुप में वर्तमान क्रिया

– श्रम गति परिणाम

परिणाम का अमरत्व – गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई जीवन

श्रम का विश्राम – मानव चेतना सम्पन्न परंपरा अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या और सार्वभौम

व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या = अभ्युदय

ऐषणा प्रवृत्ति = पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा।

गति का गंतव्य – देव चेतना, दिव्य चेतना सहज वैभव रुप में उपकार प्रवृत्ति सर्वशुभ रुप में।

यह सब अध्ययनगम्य एवं जीना मानव में, से, के लिए।

प्रयोजन संभावना

21. धरती पर 700 करोड़ मानव अपराध कार्य प्रवृत्तियों से मुक्ति पाने के लिए हर नरनारी का समझदार होना।

समझदारी से समाधान–सहज प्रमाण वर्तमान होना।

समाधान सम्पन्न हर परिवार में श्रम नियोजन पूर्वक समृद्धि प्रमाणित होना, समाधान समृद्धि सम्पन्न हर परिवार में उपकार कार्य प्रवृत्तियों का प्रमाणित होना समीचीन है।

22. चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कार सहित तकनीकी शिक्षण विधि से ही हर परिवार अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या तथा सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या रुप में जीना ही समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व सहज परंपरा वैभवित होना यही अपराध मुक्त परम्परा होना समीचीन है।

हर नर नारी स्वयं में नियम नियंत्रण संतुलन न्याय धर्म सत्यसहज प्रमाणरुप में वर्तमान वैभव होना आवश्यक है।

23. चेतना विकास मूल्य शिक्षा रुप में अध्ययन के लिए अस्तित्वमूलक मानव केंद्रित चिंतन ही मध्यस्थ दर्शन चार भागों में –

1. मानव व्यवहार दर्शन
2. मानव कर्म दर्शन
3. मानव अभ्यास दर्शन
4. मानव अनुभव दर्शन

24. दर्शनों पर आधारित विचार–वाद तीन भागों में –

   1. समाधानात्मक भौतिकवाद
   2. व्यवहारात्मक जनवाद
   3. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

25. दर्शन–वाद के आधार पर शास्त्र तीन भागों में –

   1. आवर्तनशील अर्थशास्त्र
   2. व्यवहारवादी समाजशास्त्र
   3. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र

26. चिंतन – दर्शन–वाद–शास्त्र के आधार पर जीवन विद्या प्रबोधन प्रणाली स्पष्ट है।

    मानवीय आचार संहिता रुपी 'संविधान व्यवस्था' (प्रकाशन प्रक्रिया में) अध्ययन के लिए प्रावधानित है, प्रस्तुत है।

27. इसी के साथ 'परिभाषा संहिता' प्रस्तुत है।

<u>व्यक्तव्य</u>

विकल्प के नाम से 27 मुद्दे के रुप में जो सूचना प्रस्तुत किया गया है इसके मूल अभिप्राय में अपना–पराया की दीवार से मुक्त, द्वेष मुक्त, अपराध मुक्त विधि से मानव चेतना पूर्वक समाधान समृद्धि सहित अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या रुप में जीना यह मानव परंपरा के लिए आवश्यकता बन चुकी है यदि मानव को इस धरती पर परंपरा रुप में रहना है। अस्तु, सकारात्मक भाग में निर्णय लेने की स्थिति में इन सूचनाओं के आधार पर कितने भी सकारात्मक उद्देश्य से प्रश्न हो सकते हैं। उन सबका उत्तर मेरे पास सुरक्षित है जो चाहे वे इसे परख सकते हैं।

ए. नागराज

प्रणेता

मध्यस्थ दर्शन सह अस्तित्ववाद

भजनाश्रम, अमरकंटक,

जिला– अनूपपुर (म.प्र.)

विकल्प में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा

अ – आ

1. अस्तित्व :–होना, निरंतर होना, सहज रूप में रहना।

2. अविभाज्य :– व्यापक वस्तु में एक–एक वस्तुओं का निरंतर क्रियाशीलता, निरंतर वर्तमान रहना।

3. आश्रम :– श्रमपूर्वक मानव चेतना अनुसार प्रमाण प्रस्तुत करना। प्रयत्नपूर्वक मानव चेतना अनुसार प्रमाण प्रस्तुत करना।

4. अनन्त :– जो गणितीय विधि से गणना समझ में नहीं आया – होने की संभावना रहे। कल्पना में हो समझ में नहीं आया हो – ज्ञात होने की संभावना हो।

5. अध्ययन :– अनुभव सहज प्रकाश में स्मरण पूर्वक किया गया क्रियाकलाप एवं समझने का प्रयास

6. अखण्ड समाज :–मानव जाति, धर्म, राज्य व्यवस्था में एकरुपता संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में एकरुपता सहज वर्तमान परंपरा।

7. अध्ययनगम्य :– अध्ययनपूर्वक अस्तित्व सहज वस्तु समझ में आना।

8. अजीर्ण परमाणु :–परमाणु के तृप्त होने में जितने अंशों की आवश्यकता सुनिश्चित रहती है उससे अधिक अंशों का गठन होना विकिरणीयता प्रभाव को प्रसारित करते रहने और अपने से कुछ अंशों को विसर्जित करने के लिए प्रयत्नशील रहना।

9. अणु :–जड परमाणुओं का संगठित रुप, एक से अधिक परमाणु अंशों का संयुक्त क्रियाकलाप।

10. अपराध :–पर–धन, पर–नारी, पर–पुरुष, पर–पीड़ाकारी कार्य व्यवहार एवं संग्रह सुविधा को आजीविका मान लिया हुआ पशु मानव, राक्षस मानव।

11. आवर्तनशीलता :–जागृत मानव परंपरा में ही हर उत्पादन के लिए स्त्रोत बनाये रखते हुए उत्पादनपूर्वक समृद्ध होना।

12. अभय :– वर्तमान में विश्वास सम्पन्न मानव ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या सहज प्रमाण।

13. अर्पण :–कुछ देकर लेने की विधि से अर्पण। लेने की अपेक्षा सहित श्रम,सेवा, नियोजन क्रिया।

14. अमरत्व :–परिणाम का अमरत्व (गठनपूर्णता)= जीवन

15. अभ्युदय :–सर्वतोमुखी समाधान प्रमाण वर्तमान।

16. आशा :–मानव परंपरा में ही सुख पूर्वक जीने की आशा समाया है।

इ–ई

17. इच्छा :–दर्शन एवं उसके प्रगटन की संयुक्त चिंतन क्रिया का चित्रण।

18. ईमानदारी :–सर्वशुभ समाधानकारी समझदारी को प्रमाणित करने के लिए निश्चित योजना तैयार करना।

उ ऊ ए

19. उभय तृप्ति :–कम से कम दो या दो से अधिक संबंधों में मूल्यों का निर्वाह मूल्यांकन उभयतृप्ति।

20. उपकार :– समझदार समृद्धि संपन्न होना, समझदार समृद्धिपूर्वक जीने देना और जीना।

21. उपासना :–उपायपूर्वक वांछित वस्तु का अध्ययन स्वीकृति प्राप्ति प्रमाण।

22. ऐषणा :–ऐषणाओं (पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा) का प्रगटन।

क

23. कर्म :–उत्पादन कर्म (आहार–आवास–अलंकार) = सामान्याकांक्षा (दूरदर्शन – दूरश्रवण – दूरगमन) = महत्वाकांक्षा सम्बन्धी यन्त्र, वस्तु, उपकरण का निर्माण।

24. कार्ययोजना :– योजना को क्रियान्वयन करना।

कार्य व्यवहार :–मानव के साथ व्यवहार, जड प्रकृति के साथ उत्पादन नियंत्रण के लिए कार्य

25. कर्माभ्यास :–प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य – कलामूल्य को स्थापित करने का क्रिया कलाप में पारंगत होना।

26. कामोन्माद :–यौन विचार में लिप्त विवश मानव।

ख

27. खनिज :– उत्खनन पूर्वक धरती में से प्राप्त होने वाले भौतिक– रसायनिक द्रव्य।

ग

28. गति :– स्थानांतरण परिवर्तन। त्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी।

च

29. चेतना विकास :–जीव चेतना से मानव चेतना श्रेष्ठ, मानव चेतना से देव चेतना श्रेष्ठतर, देव चेतना से दिव्य चेतना श्रेष्ठतम।

30. चैतन्य :–गठनपूर्ण परमाणु, चैतन्य इकाई, जीवन।

31. चिंतन :– इच्छाशक्ति में से के लिए परिमार्जन अनुभव प्रमाण मूलक सोच विधि सहज प्रगटन क्रिया।

32. जीवन ज्ञान :– गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता को समझना समझाना।

33. जीवन वस्तु :– जीने की आशा विचार इच्छा ऋतंभरा अनुभव प्रमाण प्रस्तुत होना।

34. जड़ :–पदार्थ और प्राणावस्था सहज क्रिया कलाप जो जितना लंबा–चौड़ा–ऊँचा रहता है वह उतने ही विस्तार में क्रियाशील रहना।

35. जगत :–भौतिक रासायनिक संसार।

36. जीवावस्था :–जीने की आशा सहित अनेक वंश के रुप में वर्तमान।

37. जागृति सहज मानव परंपरा :– समझदारी सहज सर्वतोमुखी समाधान के रुप में प्रमाणित करने का परंपरा। शिक्षा – संस्कार, न्याय सुरक्षा, उत्पादन कार्र्य, विनिमय कोष, स्वास्थ्य संयम विधि से प्रमाण।

38. जीवन मूल्य :– सुख, शांति, संतोष, आनंद।

39. जिम्मेदारी :– व्यवहार कार्य व्यवहार योजना में अनुभव सहज वैभव को परिणित करना।

द

40. देव पद चक्र :–मानव चेतना सहज प्रवृत्ति में गुणात्मक विकास रुप में देव चेतना और देव चेतना ह्रास होकर मानव चेतना में परिवर्तित होना।

41. दिव्य पद :–दिव्य चेतना उपकार प्रधान विधि नित्य वर्तमान, आचरण पूर्णता, उपकार प्रवृत्ति सहज प्रमाण।

42. दर्शन :–स्थिति गति (रुप गुण स्वभाव धर्म सहित स्वीकृति) मूल्यांकन वर्तमान प्रमाण।

43. दृश्य :– व्यापक वस्तु में, से, के लिए अविभाज्य रुप में होना।

44. दृष्टा :– दृश्य स्थिति, वस्तु स्थिति, वस्तुगत सत्य को समझना समझाना।

45. दर्शन ज्ञान :– स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य सहज समझ स्वीकृति प्रमाण।

46. दीक्षा :– समझने समझाने एवं जीने के लिए निश्चित विधि स्वीकृति और निष्ठा।

ध

47. धरती :–पदार्थावस्था के अणुओं से रचित वृहत् रचना जिस पर प्राण, जीव व ज्ञानावस्था प्रकट हो।

न

48. नश्वरत्व :– परिणाम परिवर्तनशीलता सहज परंपरा।

49. नित्य वैभव :– हर अवस्था और पद अपने यथास्थिति सहज परंपरा में वैभव एवं नित्य वर्तमान।

50. नियति क्रम :–पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था, जीवावस्था से ज्ञानावस्था सहज प्रगटन परंपरा विधि से तत्व सहित व्यवस्था है।

51. नियति विधि :– पदार्थ, प्राण, जीव, ज्ञानावस्था का निश्चित आचरण।

52. नित्य :– निरन्तर सदा–सदा।

53. नियन्त्रण :–त्व सहित व्यवस्था – समग्र व्यवस्था में भागीदारी।

54. नियम :– आचरण सहज निश्चयन।

55. न्याय :–संबंध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति व निरन्तरता।

प

56. परिणाम :–परमाणु में परिणाम परमाणु में अंश संख्या घटना–बढ़ना।

57. प्रमाण :–परंपरा रूप में प्रकट होते रहना। प्रकटन की निरन्तरता।

58. प्रकृत्ति :– पहले से ही होने में प्रमाण और होने का सूत्र व्याख्या सम्पन्नता।

59. परमाणु :– ज्यादा कम से मुक्त त्व सहित व्यवस्था।

समग्र व्यवस्था में भागीदारी – उपयोगिता–पूरकता सहज मूल ईकाई – जड़ प्रकृति के रुप में।

60. प्राणकोश :– प्राण सूत्र – रचना तत्व – पुष्टि तत्व का संयुक्त रुप में रचित रचना और श्वसन–प्रश्वसन सहित रचना विधि सहज रचना प्रवृत्ति सम्पन्न इकाई।

61. पदार्थावस्था :–पद भेद से अर्थ भेद प्रगट करने वाला।

62. प्राणपद चक्र :– पदार्थावस्था से प्राणावस्था। प्राणावस्था से पदार्थावस्था में परिणितियाँ।

63. प्रलोभन :– शब्द–स्पर्श–रुप–रस–गंध इंद्रियों के अनुकूल के प्रति विवश होना।

फ

64. फल :–योजना के क्रियान्वयन से जो उपलब्धियाँ स्पष्ट हुई।

65. प्रणेता :– प्रेरणा पाने का स्रोत। परिपूर्ण रुप में स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रुप में स्पष्ट करना।

ब

66. ब्रह्म :–व्यापक वस्तु का नाम।

67. बंधन :– भ्रम, अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, अव्याप्ति दोष।

भ

68. भागीदारी :–फल–परिणाम को स्वीकारने के लिए किया गया क्रियाकलाप।

69. भय :– जीव चेतना वश संबंधों में विश्वास नहीं हो पाना और प्रमाणित नहीं हो पाना। अपेक्षा बना रहना।

70. भोगोन्माद :– शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध इंद्रियों में अनुकूलता करने में प्रवृत्ति और विवशता।

71. भ्रांतिपद :– जीवों के समान जीते हुए मानव का भ्रमित मानव पद में होना एवं भ्रमित मानव पद से पुन: जीव चेतना पद में होने का चक्र जीवावस्था से भ्रांत मानव रुप में होना और भ्रांत मानव जीव रुप में होने की आवर्तन क्रिया।

72. भूखा परमाणु :– तृप्त परमाणु में जितने संख्यात्मक अंशों का रहना है उससे कम रहना।

73. भौतिक वस्तु :– परमाणु अणु रचित स्वरुप में वर्तमान।

म

74. मानव :– मनाकार को साकार करने वाला मन: स्वस्थता को प्रमाणित करने वाला।

75. मानवीयतापूर्ण आचरण :– मूल्य, चरित्र, नैतिकता सहज प्रमाण परंपरा।

76. मध्यस्थ दर्शन :– होने में, से, के लिए निरंतरता सहज सूत्र व्याख्या।

77. मोक्ष :– भ्रम मुक्ति, जागृति।

78. मानव मूल्य :– धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा।

79. मूल्य शिक्षा :–जीवन मूल्य, मानवमूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य, कला मूल्यों का कर्माभ्यास व्यवहाराभ्यास कराने वाला शिक्षा कार्यक्रम।

य, र

80. योजना :– योग संयोग से वांछित उपलब्धि के लिए निर्णय करना।

81. रहस्य :– समझ ना हो पाना, स्पष्ट ना हो पाना। क्रिया मात्र को जानने में जो अपूर्णता है वह रहस्य है।

82. रासायनिक वस्तु :– यौगिक क्रियापूर्वक भौतिक आचरण से भिन्न आचरण में वर्तमान होना।

(जैसा पानी :– एक जलाने वाला एक जलने वाला योग होने से प्यास बुझाने वाली वस्तु का बनना)

83. राष्ट्र :–धरती सहज अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या।

84. राष्ट्रीयता :– अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या।

85. राष्ट्रीय चरित्र :– धरती पर अखण्ड समाज रुप में समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व प्रमाण परंपरा रुप में वैभवित होना।

86. रचना :– धरती जैसा बड़े रचना में ही संपूर्ण प्रकार से हरियाली जंगल झाड़ी पौधे वनस्पतियाँ, औषधियाँ बीजवृक्ष विधि से परंपरा रुप में सम्पन्न क्रियाकलाप और जीव व मानव शरीर रचनाएँ।

87. रसायन तंत्र :– धरती पर पानी संयोग होने से पानी में क्षार और अम्ल का संयोग से पुष्टि तत्व, रचना तत्व प्रगट। इसी से उपजा हुआ अनेक रसायन तत्व का संयुक्त कार्यकलाप।

88. राक्षस मानव :– जीव चेतना क्रम में क्रूरता पूर्वक जीने वाला।

ल

89. लाभोन्माद :– कम देकर ज्यादा लेने का दुष्ट प्रवृत्ति और कार्य।

व

90. विचार :– क्रियान्वयन में तर्क संगत निश्चयनों की स्वीकृति।

91. वाद :– विश्लेषण कारण गुण सम्मत युक्त गणितात्मक विधि से प्रमाण और वर्तमान।

92. वर्ण :–जो जिस अवस्था की चेतना विधि से सम्पन्न है वही उसका वर्ण (जीव चेतना – मानव चेतना–देव चेतना–दिव्य चेतना)।

93. विकल्प :– परंपरा सहज गति में प्राप्त समस्याओं का समाधान।

94. व्यापक :– सर्वत्र विद्यमान – जड़ चैतन्य प्रकृत्ति में, से, के लिए प्राप्त सत्ता। जड़ प्रकृति में साम्य ऊर्जा संपन्नता, चैतन्य प्रकृति में संवेदना एवं संज्ञानीयता।

95. वर्तमान :– वर्तते रहना। स्थिति गति रुप में होते रहना।

96. व्यवहाराभ्यास :–संबंधों के साथ समाधान, समृद्धि पूर्वक मूल्यों चरित्र नैतिकता सहित जीने का अभ्यास।

97. विद्वता :– स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य सहज अनुभव प्रमाण। ज्ञान, विवेक, विज्ञान सम्पन्नता वर्तमान प्रमाण।

98. वस्तु :– वास्तविकता प्रगट रहना।

(होना–रहना, होने–रहने की महिमा उपयोगिता–पूरकता सहज प्रमाण)

99. व्यवहारवाद :– संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति, स्वधन स्वनारी–स्वपुरूष दयापूर्ण कार्य व्यवहार तन–मन–धन रुपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा संबंधी तर्क प्रयोजन सहित क्रियान्वयन के लिए आवश्यक अध्ययन और वार्तालाप।

100. वस्तु स्थिति सत्य :– देश काल दिशा स्पष्ट।

वस्तुगत सत्य :– रुप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज वर्तमान।

स

101. संबंध :–

(i) शरीर संबंध
(ii) मानव संबंध
(iii) शिक्षा संबंध
(iv) व्यवस्था संबंध
(v) उत्पादन संबंध
(vi) विनिमय संबंध
(vii) नैसर्गिक संबंध

102. स्थिति सत्य :– सत्ता में संपृक्त प्रकृति।

103. समझदारी :–ज्ञान विवेक विज्ञान।

104. समर्पण :– लेने की इच्छा से मुक्त प्रदान क्रिया।

105. सभ्यता :–विधि व्यवस्था में भागीदारी, व्यवस्था के अर्थ में सूत्र व्याख्या। समझ के रूप में सूत्र एवम् जीने के रूप में व्याख्या।

106. संस्कृति :– पूर्णता के अर्थ में किया गया क्रिया कलाप, कार्य व्यवहार अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन।

107. समृद्धि :–परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन।

108. समाधान :– समझदारी–ईमानदारी–जिम्मेदारी–भागीदारी समझदारी के अनुरूप फल परिणाम समझदारी सम्मत होना।

109. स्थापित मूल्य :– विश्वास, सम्मान, स्नेह, कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, ममता, वात्सल्य, प्रेम।

110. संपृक्त :– व्यापक पारगामी पारदर्शी सत्ता में जड़ चैतन्य प्रकृति डूबा–भीगा–घिरा। पूर्णता के अर्थ में, संपूर्णता के अर्थ में होना।

पूर्णता – गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता आचरण पूर्णता, सम्पूर्णता = इकाई + वातावरण।

111. सार्वभौम व्याख्या :– दस सोपानीय परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था जिसमें बिना धन व्यय के जनप्रतिनिधि सुलभ होना। सभी प्रतिनिधि समझदारी समृद्धि से सम्पन्न होना। समझदारी सम्पन्न समृद्धि सहित परिवार का प्रतिनिधि होना एवं मानवीय शिक्षा संस्कार, न्याय सुरक्षा संस्कार, उत्पादन कार्य संस्कार, विनिमय कार्य संस्कार, स्वास्थ्य संयम संस्कार, कार्य में भागीदारी सहज परिवार प्रतिनिधि निर्वाचित परंपरा रुप में वर्तमान होना।

112. सहअस्तित्ववाद :– सत्ता में सम्पृक्त जड़– चैतन्य प्रकृति सहज नित्य प्रभाव गतिविधि वर्तमान

113. सत्यापन :– स्वयं में से के लिए यथास्थिति सहज वर्णन

114. संयम :– समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी का प्रमाण परंपरा

115. समाधि :– "स्व" होने की स्वीकृति एवं आशा, विचार, इच्छाएं चुप होने का दृष्टा होने के रूप में स्वीकृति।

116. साधना :–साध्य के लिए प्रयास सहज क्रियाकलाप।

117. सत्य :– सत्ता में संपृक्त प्रकृति – व्यापक वस्तु रूपी सत्ता में संपृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति; स्थिति सत्य, वस्तुस्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य बोध सम्पन्नता।

118. संतुलन :– पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था में परस्पर पूरकता–उपयोगिता।

119. सह–अस्तित्व :–सत्ता में संपृक्त जड़ –चैतन्य प्रकृति।

120. सह–अस्तित्व में विकास क्रम :– परमाणु में अनेक अंशों का प्रस्थापन विस्थापन होना।

121. सह अस्तित्व में विकास :– परमाणु में गठनपूर्णता।

122. सहअस्तित्व में जागृतिक्रम :– शरीर व जीवन सहित शरीर को मानते हुए जीता हुआ मानव।

123. सहअस्तित्व में जागृति :– सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज ज्ञानावस्था में गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता,आचरणपूर्णता सहज प्रमाण परंपरा है।

124. सहअस्तित्व में जागृति सहज निरंतरता :–

- जागृत मानव परंपरा क्रियापूर्णता – आचरणपूर्णता सहज निरंतरता।
- समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व में अनुभव प्रमाण सहज निरंतरता।
- अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या सहज निरंतरता।

125. शास्त्र :–कायिक, मानसिक, वाचिक, कृत, कारित, अनुमोदित भेदों में एक सूत्रात्मकता (एक से अधिक कड़ियाँ)।

126. शिक्षा–संस्कार :– ज्ञान, विवेक विज्ञान सम्पन्नता।

127. शिक्षण :– तकनीक, उत्पादन कार्य के लिए आवश्यकीय कारीगरी का कर्माभ्यास।

128. श्रम :– शरीर और जीवन के संयुक्त रुप में जीता हुआ मानव, कुशलता, निपुणता, पाण्डित्य पूर्वक उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य को प्राकृतिक ऐश्वर्य पर स्थापित करना।

ज्ञ

129. ज्ञान :– सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व ज्ञान, जीवन ज्ञान व मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान।

130. ज्ञाता :–समझ में आना, प्रमाणित होना।

131. ज्ञानावस्था :– जीव चेतना से श्रेष्ठ मानव चेतना,

मानव चेतना से श्रेष्ठतर देव चेतना,

देव चेतना से श्रेष्ठतम दिव्य चेतना सहज मानव परंपरा है।

त

- तृप्त परमाणु :– (गठनपूर्ण परमाणु) :– परिणाम का अमरत्व सम्पन्न जीवन क्रियापूर्णता–आचरणपूर्णता के लिए तत्पर होने वाला गठनपूर्ण परमाणु – चैतन्य इकाई।

सन्दर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- आदि काल से 20वीं शताब्दी के 10वें दशक तक मानव का अध्ययन जागृति के अर्थ में विकसित नहीं हो पाया। 21वीं शताब्दी के पहले दशक तक अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही 'मध्यस्थ दर्शन' सह–अस्तित्ववाद **विकल्प** के रूप में मानव में, से, के लिए स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुआ जिसकी सूत्र व्याख्या से जागृति सर्व सुलभ होने की व्यवस्था है। **(अध्याय:1 , पेज नंबर: 2)**

सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- **भ्रम से जागृति की ओर / भ्रमित–मानव की परिभाषा**

भ्रमित मानव की परिभाषा है –
न्याय का याचक बने रहना, और गलती करने के अधिकार का प्रयोग करते रहना।
भ्रमित मनुष्य को गलती करने का अधिकार है। इसकी गवाही है – भ्रमित मनुष्य गलती करता है। यह जो धरती बीमार हुई है, इसके मूल में भ्रमित मनुष्य ही है। भ्रमित मनुष्य की गलतियों से ही यह धरती बीमार हुई है।

भ्रमित मनुष्य को न्याय करने का अधिकार नहीं रहता है। इसकी गवाही है – भ्रमित–मनुष्य अपने संबंधों में मूल्यों (जैसे विश्वास, सम्मान, स्नेह आदि) को प्रमाणित नहीं कर पाता है। भ्रमित मनुष्य को भी मूल्यों की आवश्यकता है – इसी लिए भ्रमित–मनुष्य न्याय का याचक बना रहता है।

पूरी मानव परम्परा ही भ्रमित होने के कारण गलतियाँ बढ़ती गईं। अपराध बढ़ता गया। अब जब धरती ही बीमार हो गयी – तो उसकी दवाई खोजने के लिए भ्रमित–मनुष्य का ध्यान गया है। यह दवाई आदर्श–वाद और भौतिकवाद दोनों विचारधाराओं से नहीं निकल के आ सकती। इन दोनों विचार–धाराओं पर चले हुए लोगों ने मिल कर इस धरती को बीमार किया है। इन दोनों विचार–धाराओं का **विकल्प** चाहिए। वह **विकल्प** मध्यस्थ–दर्शन है। मध्यस्थ–दर्शन सह–अस्तित्व–वादी विचारधारा को लेकर आया है। इस विचार में प्रसक्त होने पर, इसको अपना स्वत्व बनाने का निश्चयन होता है। ऐसा निश्चयन होने पर उसके लिए अध्ययन करने पर यह अपना स्वत्व बन जाता है। समझदारी स्वत्व बनने पर जागृति ही प्रमाणित होती है, न्याय ही प्रमाणित होता है, धर्म ही प्रमाणित होता है, सत्य ही प्रमाणित होता है।

श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित। **(अध्याय:, पेज नंबर 14–15)**
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/07/blog-post_05.html

- **जीने का डिजाईन**

अभी तक मनुष्य जैसे भी जिया – चाहे आर्थिक विधा में, चाहे धार्मिक विधा में, चाहे राजनीति विधा में – उससे जो जीने के मॉडल निकले – वे मध्यस्थ–दर्शन के प्रमाणित होने के लिए अनुकूल नहीं हैं। इसीलिए इसको "**विकल्प**" नाम दिया है। इसको जीने का मॉडल समाधान–समृद्धि है।
यह प्रस्ताव अपने में पूरा है। इसको समझने का अधिकार सबका समान है। समझदारी से समाधान होता है।
– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित, (जून २००८, बंगलोर) **(अध्याय: , पेज नंबर:25)**
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/07/blog-post_9362.html

- **मनुष्य और प्रकृति**

प्रश्न: मनुष्य और बाकी सारी प्रकृति में क्या फर्क है?

उत्तर: मनुष्य अनंत और असीम अस्तित्व के साथ सोचने, समझने, और जीने योग्य वस्तु है। बाकी सब वस्तुएं प्रगटन क्रम में "होने" के रूप में हैं। इस तरह मानव ही अस्तित्व में दृष्टा है। मानव ही अस्तित्व को समझेगा, व्यापक को समझेगा, और स्वयं को भी समझेगा। फलस्वरूप मानव का अस्तित्व में "रहने" का बात बनेगा। अभी हम न स्वयं को समझे हैं, न अस्तित्व को समझे हैं – इसलिए जीने का रास्ता ही बंद हो गया। आदि–काल से अभी तक मनुष्य अपने "रहने" के स्वरुप को पहचान नहीं पाया।

प्रश्न: अभी तक मनुष्य क्या जीता नहीं रहा क्या?

उत्तर: मनुष्य अभी तक जीव चेतना में जिया है। जीव–चेतना में जीते हुए भी जीवों से अच्छा जीने के लिए सोचा। क्योंकि मनुष्य को कल्पनाशीलता कर्म–स्वतंत्रता विरासत में मिला ही था। उसी के रहते मनुष्य ने सामान्य–आकांक्षा (आहार, आवास, अलंकार) और महत्त्वाकांक्षा (दूर–श्रवण, दूर–दर्शन, दूर–गमन) संबन्धी सभी वस्तुओं को प्राप्त कर लिया। इस तरह मनुष्य अपनी परिभाषा के अनुरूप मनाकार को साकार करने के चौखट में आ गया। मनः स्वस्थता का चौखट टटोला तो देखा खाली पड़ा है! मनः स्वस्थता को लेकर हम bankrupt हैं। मनाकार को साकार करने के पक्ष में हम समृद्ध हैं। यह आज तक की समीक्षा है। बिना मनः स्वस्थता के मनाकार को साकार करने के क्रम में ही यह धरती बीमार हो चुकी है। आगे की पीढ़ी कहाँ रहेगा? मनः स्वस्थता का चौखट कैसे भरेगा? – इन्ही प्रश्नों के उत्तर में यह **विकल्प** है।

प्रश्न: मानव के "होने" और "रहने" से क्या आशय है?

उत्तर: मानव अपने "होने" को कल्पनाशीलता पूर्वक पहचान चुका है। कैसे रहना है? – यह तय नहीं कर पाया है। मानव में संस्कार परम्परा के अनुरूप ही "रहना" बनता है। मानव का रहना इस तरह जीवों से भिन्न है। जीवों में वंश परम्परा के अनुरूप रहना बन जाता है। "मानव–परम्परा" जैसी कोई चीज होती है, यह जागृति से पहले भी स्वीकृति रहती है। पर मानव–परम्परा को कैसे रहना है? – यह जागृति के बाद ही होता है।

– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी 2007, अमरकंटक) **(अध्याय:, पेज नंबर: 59–60)**

- **नियम**

मध्यस्थ–दर्शन के अनुसार: नियति–विधि ही नियम है। सम्पूर्ण नियम अस्तित्व में हैं ही।
नियम से ही अस्तित्व में पदार्थ–अवस्था से प्राण–अवस्था, प्राण–अवस्था से जीव–अवस्था, और जीव–अवस्था से ज्ञान–अवस्था प्रकट हुई।

भौतिकवाद या विज्ञान ने अपनी हवस के अनुसार नियम प्रतिपादित किए या बना दिए। जबकि नियम होते हैं, बनते नहीं हैं। ये जो नियम बनाए – वे नियति–विरोधी थे, उन पर चलने से धरती बीमार हो गयी। इन नियमो के रहते मानव का धरती पर बने रहना खतरे में है।
उसके पहले आदर्शवाद ने "ईश्वरीय नियम" बताये। सभी ईश्वरीय नियम ऐसे ही हैं – ईश्वर के अधीन में रहो, ईश्वर को रिझाओ, तुम्हारा कल्याण होगा! ईश्वर क्या है? – यह पूछा तो बताया "तुम समझोगे नहीं!" अब करो! परम्परा में सामान्य आदमी का फंसावट यहीं रहा।
अब मध्यस्थ–दर्शन से जो उपरोक्त दोनों विचारधाराओं का **विकल्प** जो आया – उससे यह स्पष्ट होता है:

प्राकृतिक रूप में गवाहित रहना ही नियम है।
प्राकृतिक रूप में प्रमाणित रहना ही नियम है।
प्राकृतिक रूप में वर्तमान रहना ही नियम है।
अध्ययन के लिए इन तीनो बातों को reference में रखना आवश्यक है। पदार्थावस्था, प्राणावस्था, और जीवावस्था नियम को गवाहित, प्रमाणित, और वर्तमानित करती रहती हैं। ज्ञान–अवस्था के मानव को भी अपने नियमो को पहचानने की आवश्यकता है। मानव ज्ञान–अवस्था में होने के कारण मानव में ज्ञान ही गवाहित, प्रमाणित, और वर्तमानित होगा। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, और भागीदारी – ये चारों जगह पर जब मानव पूरा हुआ, तभी मानव ने अपनी गवाही को प्रस्तुत किया। इस विधि से मनुष्य का ज्ञान–अवस्था में होने का qualification पूरा हो जाता है।

– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७, अमरकंटक) **(अध्याय:, पेज नंबर:98–99)**
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/08/blog-post_19.html

- सत्ता में संपृक्त प्रकृति

व्यापक, शून्य, Space जो इकाइयों के बीच खाली स्थली के रूप में दिखता है – यह क्या है? यह कुछ भी नहीं है! – यह कहना नहीं बनता! यहाँ यह बता रहे हैं – यह व्यापक साम्य ऊर्जा है। प्रकृति की सभी इकाइयां इसमें संपृक्त (डूबी, भीगी, और घिरी) हैं। व्यापक स्वयं में क्रिया न होते हुए भी, सभी क्रियाओं का आधार है। यह सह–अस्तित्व का मूल स्वरूप है। यह मूल बात समझ में आने पर ही सह–अस्तित्व का पूरा वैभव समझ में आता है।

इकाइयों का वैभव ही मध्यस्थता है। वैभव की ही परम्परा बनती है। जैसे – दो अंश का परमाणु का एक निश्चित आचरण है। सभी दो अंश के परमाणुओं का वैसा ही निश्चित आचरण है। यही दो अंश के परमाणु का वैभव है। वैसे ही नीम के, आम के झाड़ का आचरण निश्चित है। भालू, बाघ, और गाय का आचरण निश्चित है। मनुष्य का आचरण निश्चित होना अभी बाकी है। यही मुख्य मुद्दा है। मनुष्य का निश्चित आचरण समझदारी के बिना आएगा नहीं।

इकाईयाँ क्रियाशील हैं – यह समझ में आता ही है। साम्य ऊर्जा अपने में कोई क्रिया करता नहीं है। जैसे ज्ञान, विवेक, विज्ञान हैं – ये अपने आप में कोई क्रिया नहीं हैं। ज्ञान को क्रियान्वित करना क्रिया है। ज्ञान को पूरा क्रियान्वित ज्ञान–अवस्था का मानव ही कर सकता है। ज्ञान जो है – वह तेरह बिन्दुओं में समाया है। चार विषयों (आहार, निद्रा, भय, मैथुन) का ज्ञान, पाँच संवेदनाओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का ज्ञान, तीन एषणाओं का ज्ञान (पुत्तेष्णा, वित्तेष्णा, लोकेश्ना) और उपकार का ज्ञान।

इसमें से चार विषयों का ज्ञान जीव–जानवर भी प्रकाशित करते हैं। उनमें विषयों का ज्ञान है – तभी तो उसको प्रकाशित करते हैं। जीव जानवर पाँच संवेदनाओं का उपयोग करते हैं, इन चार विषयों में जीने के लिए। मनुष्य जब धरती पर प्रकट हुआ – तो उसमें सुख की चाहत जन्म–जात रही। संवेदनाओं में मनुष्य को सुख भासा। मनुष्य ने कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता वश पाँच संवेदनाओं को राजी रखने के लिए सारा करतूत शुरू किया। इसी क्रम में आहार, आवास, अलंकार को लेकर जीव जानवरों से बिल्कुल भिन्न जीना शुरू कर दिया। साथ में दूर–श्रवण, दूर–दर्शन, और दूर–गमन के तमाम साधनों को प्राप्त कर लिया। इसी क्रम में मनुष्य ने अपने को जीव–जानवरों से ज्यादा अच्छा मान लिया! पर ऐसा मानने से मनुष्य का अच्छा–पन कोई प्रमाणित नही हुआ। ज्ञान के बाकी चार भाग अज्ञात रहने के कारण मनुष्य ने धरती के साथ अपराध किया, बाकी तीनो अवस्थाओं के साथ असंतुलन किया, और मनुष्य जाति के साथ भी अन्याय किया। यह सब के चलते ऐसी स्थिति में पहुँच गए की आज धरती ही बीमार हो गयी।

इसलिए मनुष्य को ज्ञान के बाकी चार पक्षों को पहचानने की आवश्यकता है। यदि धरती पर बने रहना है तो! इसी के लिए मध्यस्थ–दर्शन का **विकल्प** प्रस्तुत है। जरूरत है, तो अपनाएगा आदमी जात!

– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अगस्त २००६, अमरकंटक) (**अध्याय:, पेज नंबर:** 106–107)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/11/blog-post_559.html

- **विरक्ति–वाद और आसक्तिवाद का विकल्प**

  जागृति के पहले मन शरीर के तद्रूप होकर शरीर का दृष्टा बना रहता है। शरीर को ही जीवन माना रहता है। उसी के अनुरूप प्रिय–हित–लाभ दृष्टियों से तुलन करता है। न्याय–धर्म–सत्य छुटा रहता है। प्रिय–हित–लाभ दृष्टियों से तुलन के आधार पर ही विश्लेषण और चित्रण हो जाता है। यही भौतिकवाद है – जो जीव–चेतना में जीना है। ऐसे में भी जीवों से अधिक अच्छा जीने की कल्पनाएँ बनती हैं। इन्ही कल्पनाओं के चलते निकले – विरक्तिवाद और आसक्तिवाद।

  विरक्ति से क्या मिल गया? – यह मानव परम्परा को आज तक पता नहीं चला।

  आसक्तिवाद से भोग–अतिभोग में गए, और धरती बीमार हो गयी।

  मध्यस्थ–दर्शन विरक्ति–वाद और आसक्तिवाद दोनों का **विकल्प** है।

  – श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अगस्त २००६, अमरकंटक) (**अध्याय:, पेज नंबर: 112–113**)

  http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/11/blog-post_2884.html

- **विकल्प को समझना**

  पहले से हम कुछ खाका बनाए रहते हैं, उसके साथ इस प्रस्ताव को जोड़–तोड़ करने का प्रयास करते हैं। जितना जुड़ पाता है, उसको हम स्वीकार करते हैं। जो जुड़ नहीं पाता है, उस पर शंका करते हैं। वहीं अटक जाते हैं। जबकि जीव चेतना और मानव चेतना के बीच जोड़–तोड़ करने का कोई स्थान ही नहीं है। जीव चेतना के स्थान पर मानव चेतना को अपनाने की बात है। यही **विकल्प** का मतलब है।

  एक बात को तो हमको निर्मम रूप हैं। स्वीकार करना पड़ेगा कि हमको जागृति पूर्वक ही जीना है।

  समझदारी होने तक सभी स्वतन्त्र हैं अपने मन की करने के लिए। समझदारी के लिए व्यक्ति का चाहत जब प्रबल होता है तभी अध्ययन की तरफ़ आते हैं। समझदार होने पर, समझदारी के साथ जीने के लिए ईमानदारी स्वयं स्फूर्त होती है। जिम्मेदारी स्वीकार होती है। भागीदारी के रूप में प्रमाणित होती है। ऐसा होना सभी की अपेक्षा है। (**अध्याय:, पेज नंबर: 118–119**)

  श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा जी के साथ संवाद पर आधारित (अगस्त 2006, अमरकंटक)

- **सह–अस्तित्व में प्रकटनशीलता स्वाभाविक है.**

सह–अस्तित्व चार अवस्थाओं के रूप में प्रकट होने के लिए तीन प्रकार की क्रियायें हैं – भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया, और जीवन क्रिया। प्राकृतिक रूप में प्रकटन के बाद परम्परा है। मतलब – कोई अवस्था जब प्रकट होती है, तब उसके बने रहने का स्वरूप परम्परा के रूप में स्थापित प्राकृतिक रूप में हो जाता है। इनमें "घटना–बढ़ना" भ्रमित मनुष्य की प्रवृत्ति और कार्य–व्यवहार से होता है।

पदार्थ–अवस्था ही प्राण–अवस्था को यौगिक विधि से प्रकट करता है। यह स्वयं–स्फूर्त विधि से होता है। इसको कोई बाहरी ताकत नहीं करता। विगत (आदर्श–वाद) में बताया था – "यह परमात्मा की करनी है।" मध्यस्थ–दर्शन ने परमात्मा को व्यापक स्वरूप में पहचाना। परमात्मा (व्यापक) का प्रकटन में "करने वाले" के रूप में कोई रोल नहीं है। परमात्मा (व्यापक) जड़–चैतन्य प्रकृति में प्रेरणा के स्वरूप में है ही! जड़ प्रकृति परमात्मा (व्यापक) में भीगे होने से प्रेरित है, जिससे क्रियाशील है। यह प्रेरणा नित्य है। यह प्रेरणा घटता बढ़ता नहीं है। वस्तु की क्रिया से व्यापक में कोई क्षति होता ही नहीं है। व्यापक में प्रेरणा अभी मिला, बाद में नहीं मिला, अभी ज्यादा मिला, बाद में कम मिला – ऐसा कुछ नहीं होता।

परमाणु अंश भी इस तरह ऊर्जा–संपन्न है, और घूर्णन गति के रूप में क्रियाशील है। सभी परमाणु–अंश एक जैसे हैं। परमाणु की प्रजातियों में भेद उनके गठन में समाहित होने वाले परमाणु–अंशों के अनुसार है। सभी तरह के परमाणु–प्रजातियों के प्रकट होने के बाद भौतिक–संसार तृप्त हो जाता है। उसके बाद ही वह यौगिक–क्रिया में प्रवृत्त होता है। भौतिक–क्रिया में तृप्ति के बाद ही यौगिक क्रिया में प्रवृत्ति बन जाती है। फ़िर स्वयं स्फूर्त विधि से यौगिक प्रकटन होता है। यौगिक प्रकटन के लिए समस्त प्रकार के भौतिक–परमाणु सहायक (पूरक) हो जाते हैं। यौगिक प्रकटन के लिए "भूखे" परमाणु भी सहायक हैं, "अजीर्ण" परमाणु भी सहायक हैं। यौगिक विधि से सर्वप्रथम जल ही प्रकट हुआ।

सह–अस्तित्व में प्रकटनशीलता स्वाभाविक है। इसी प्रकटनशीलता के आधार पर प्राण–अवस्था स्थापित हो गयी। प्राण–कोष में निहित प्राण–सूत्रों में उत्तरोत्तर गुणात्मक विकास से नयी रचना विधि का प्रकटन होता है। इसी क्रम में प्राण–अवस्था के सभी झाड़, वनस्पति, औषधि प्रकट होने के बाद प्राणावस्था तृप्त हो गयी। प्राण–अवस्था तृप्त होने के बाद जीव–अवस्था की रचनाएँ शुरू हुई। जीव–अवस्था भुनगी–कीडे (स्वेदज संसार) से शुरू हो कर अंडज और पिंडज दो प्रकार की प्रजातियाँ स्थापित हुई। उनमें से जलचर, भूचर, और नभ–चर तीनो प्रकार के जीव हुए। शाकाहारी जीवों में प्रजनन क्रिया द्वारा multiplication ज्यादा होता है। मांसाहारी जीवों में अपेक्षाकृत कम multiplication होता है। शाकाहारी संसार की संख्या में संतुलन करने के लिए मांसाहारी संसार का प्रकटन हुआ – यह मुझको समझ में आया। जीवावस्था के सभी वंश–परम्पराएं स्थापित होने के बाद मानव–शरीर रचना का प्रकटन हुआ।

मानव–शरीर रचना सर्व–प्रथम किसी जीव से ही प्रारंभ हुआ, उसके बाद मानव–परम्परा शुरू हुई। जल, सघन–वन, सभी प्रकार के जीव–जानवर प्रकट होने के बाद ही मनुष्य का प्रकटन हुआ। इन्ही के बीच मनुष्य पला। मनुष्य–शरीर के प्रकटन के साथ ही जीवन अपनी कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता प्रकट करने की जगह में आ गया। सह–अस्तित्व सहज प्रकटन विधि से इतने सब श्रम के बाद मनुष्य का प्रकटन इस धरती पर हुआ।

मनुष्य ने अपनी कल्पनाशीलता के चलते पहले वनों का संहार करना शुरू किया। विज्ञान युग आने के बाद खनिज–संसार का संहार करना शुरू कर दिया। जबकि – वन और खनिज के संतुलन से ही ऋतु–संतुलन होता है। बिना ऋतु–संतुलन के मनुष्य–जाति का धरती पर बने रहना सम्भव नहीं है। इस बात को आज के संसार के सामने highlite करने की ज़रूरत है। यह जो मैं समझा रहा हूँ – यह waste नहीं जाना चाहिए।

मनुष्य ने अपनी कल्पनाशीलता के प्रयोग से अपनी परिभाषा के अनुरूप मनाकार को साकार करने का काम बहुत अच्छे से कर लिया। मनः–स्वस्थता का खाका वीरान पड़ा रहा। मनुष्य के प्रकट होने से पहले जीव–चेतना जीव–अवस्था द्वारा प्रकट हो चुकी थी। मनुष्य ने पहले जीवों जैसे ही जीने का प्रयत्न किया, फ़िर जीवों से अच्छा जीने का प्रयत्न किया। जीवों से अच्छा जीने के लिए मनुष्य ने जीव–चेतना का ही प्रयोग किया। इससे "अच्छा लगने" तक हम पहुँच गए। "अच्छा होना" इससे बना नहीं। "अच्छा लगने" की दौड़ में सुविधा–संग्रह लक्ष्य बना कर धरती का शोषण किया, और मनुष्य–परस्परता में अपराध किया। इसके चलते चलते धरती ही बीमार हो गयी। अब **विकल्प** की आवश्यकता आ गयी। उसी अर्थ में मध्यस्थ–दर्शन अध्ययन के लिए प्रस्तुत है। मध्यस्थ–दर्शन (जीवन विद्या) मनुष्य–जाति के लिए जीव–चेतना से मानव–चेतना में संक्रमित होने लिए प्रस्ताव है। मानव चेतना पूर्वक ही मानव–परम्परा धरती पर बनी रह सकती है। और किसी विधि से नहीं।

– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७, अमरकंटक) (**अध्याय:, पेज नंबर:134–136**)
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/11/blog-post_29.html

- **वैचारिक फंसावट का विकल्प**

मनुष्य जाति की वैचारिक–फंसावट दो जगह है।

(१) शरीर को जीवन मान लेना

(२) रहस्यमय आस्था

शरीर को जीवन मान लेने से शरीर से होने वाली संवेदनाओं को राजी रखने के लिए भौतिक साधनों की होड़ शुरू हो जाती है। जीवन की अक्षय अपेक्षाएं सामयिक शरीर–संवेदनाओं से पूरी हो नहीं सकती – चाहे कितने भी भौतिक साधन इकट्ठा कर लें। शरीर को जीवन मान लेने से सुविधा–संग्रह ही जीवन का लक्ष्य बन जाता है। सुविधा–संग्रह का तृप्ति–बिन्दु मिलता नहीं है। किसी एक व्यक्ति को भी नहीं मिला, न आगे किसी को मिलने की सम्भावना है। यही भौतिकवाद की वैचारिक फंसावट है। इसका निदान यही है – शरीर को शरीर जाना–माना जाए, जीवन को जीवन जाना–माना जाए। शरीर जीवन का साधन है।

रहस्यमय आस्था का मतलब है – बिना जानते हुए मान लेना। रहस्य का पूजा करो! आस्था करो! शास्त्र में जो लिखा है – वह मान लो! आज्ञापालन, उपदेश, भाषण को मान लो! आस्था के आधार पर जीना आज भी जन–सामान्य को सुविधा–संग्रह के बनिस्पत ज्यादा अच्छा लगता है। लेकिन अच्छा लगने मात्र से अच्छा हुआ नहीं। आस्था का प्रमाणीकरण नहीं हुआ। हम आस्था ही करते रह गए। यही आदर्श–वाद की वैचारिक फंसावट है। इसका निदान है – माने हुए को जान लो, जाने हुए को मान लो। बिना जाने हुए मान लेना रूढ़ी है। जान कर मानते हुए जीना प्रमाण है।

मध्यस्थ–दर्शन भौतिकवाद और आदर्शवाद दोनों के **विकल्प** के स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है। इसमें प्रस्तावित है: समझदारी से समाधान ,श्रम से समृद्धि। (**अध्याय:, पेज नंबर: 138–139**)

– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००८, अमरकंटक)

- **मानव इतिहास – मध्यस्थ–दर्शन के दृष्टिकोण से**

मनुष्य जब धरती पर सबसे पहले प्रकट हुआ तो जीव जानवरों की तरह ही जिया। जीव–चेतना में मनुष्य जिया – पर जीवों से अच्छा जीना चाहा। मनुष्य में कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता है – इसीलिए वह जीवों से अच्छा जीना चाहा। यह "अच्छा चाहना" मनुष्य में गुणात्मक परिवर्तन की सहज–अपेक्षा का ही प्रदर्शन है।

मनुष्य ने अपनी कल्पनाशीलता कर्म–स्वतंत्रता के चलते आहार, आवास, अलंकार, दूर–श्रवण, दूर–दर्शन, दूर–गमन की सभी वस्तुओं का इन्तेज़ाम कर लिया। "अच्छा चाहने" के अर्थ में वस्तुओं का तो इन्तेजाम कर लिया पर अपनी आवश्यकता का निर्णय नहीं होने से वस्तुओं के पीछे पागलपन बढ़ता गया। भौतिकवाद व्यवहारिक नहीं हुआ।

कल्पनाशीलता को दूसरे ओर मनुष्य ने "रहस्य" के लिए भी invest किया। "अच्छा चाहने" के लिए ही यह किया, इसमें दो राय नहीं है। रहस्यवाद व्यवहारिक नहीं हुआ।

इस तरह दोनों तरह से मनुष्य को स्थिरता –निश्चयता की जगह नहीं मिली। इसलिए मनुष्य आवारा हो गया। आवारा हुआ तो मनमानी करता ही है। मनमानी करने के परिणाम हमारे सामने आ ही गए हैं। धरती बीमार होने से मनुष्य की गलती उजागर हो गयी। अब **विकल्प** की आवश्यकता बन गयी।

मानव इतिहास को मैं ऐसे पहचानता हूँ। अभी मानव–इतिहास को ऐसे कोई पहचानता नहीं है। घटना–क्रम को इतिहास बताते हैं। यह घटना हुई, फ़िर दूसरी घटना हुई – इसको अभी इतिहास बताते हैं। मानव में गुणात्मक–परिवर्तन की सहज–अपेक्षा यदि नहीं होती तो मानव–चेतना के इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की जगह ही नहीं होती। धरती का बीमार होना भी मानव–चेतना में संक्रमित होने की आवश्यकता को ही इंगित करता है। अपेक्षा और

आवश्यकता के साथ अब सम्भावना का भी उदय हो गया है। मध्यस्थ–दर्शन के अनुसंधान पूर्वक मानव जाति की जागृति की सम्भावना उदय हो चुकी है। यह एक ऐतिहासिक घटना है।

– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००८, अमरकंटक) **(अध्याय:, पेज नंबर: 140–141)**
https://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/12/blog-post_07.html?m=0

- प्रश्न: साक्षात्कार होने के बाद बोध होने पर "और क्या" समझ में आता है – जो साक्षात्कार में नहीं आया था, उसके बाद अनुभव होने पर "और क्या" समझ में आता है – जो बोध में नहीं आया था?

उत्तर: साक्षात्कार में जो समझ आता है वही बोध और अनुभव में "पक्का" हो जाता है। उसके अलावा कुछ नहीं। साक्षात्कार में "रूप, गुण, स्व–भाव, धर्म" चारों पहुँचता है। रूप में भौतिक–रूप और चैतन्य–रूप (जीवन) दोनों शामिल हैं। "रूप, गुण, स्वभाव, धर्म" – समग्र अस्तित्व में जो नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, और सत्य है – उसको इंगित करने के लिए है। उसका साक्षात्कार होता है। बुद्धि में धर्म और सत्य पहुँचता है। बाकी सब साक्षात्कार तक रह जाता है। और फिर अनुभव में सह–अस्तित्व स्वरूपी सत्य ही पहुँचता है।
चारों अवस्थाओं का रूप–गुण–स्वभाव–धर्म जो साक्षात्कार हुआ, उसको अनुभव–मूलक विधि से प्रमाणित करने की आवश्यकता है। संसार को इसकी "सूचना" देने की आवश्यकता है। संसार को इसे "समझाने" की आवश्यकता है। सूचना किताब से होता है – मनुष्य के समझाने से समझ आता है।
हमारे कहने, करने, और जीने में कितना अंतर है – उस पर ध्यान जाने से ही समझने के लिए जिज्ञासा स्वयं में उदय होती है। स्व–निरीक्षण से ही जिज्ञासा उदय होती है। जिज्ञासा के आधार पर ही अध्ययन होता है। जिज्ञासा की तीव्रता के साथ अध्ययन करने पर साक्षात्कार होता है।
"रहस्य" से हम कुछ पा नहीं सकते।
संग्रह–सुविधा से हम तृप्त हो नहीं सकते॥
लोहार का चोट इतना ही है। इसके आगे कहा –
प्रतीक प्राप्ति नहीं है, उपमा उपलब्धि नहीं है।
इस पर आप सभी सोच सकते हैं, अपना मंतव्य व्यक्त कर सकते हैं।
प्रत्येक एक अपने रूप, गुण, स्व–भाव, और धर्म के साथ "सम्पूर्ण" है। इस "सम्पूर्णता" की गवाही है इकाई का स्वयं में व्यवस्था होना, समग्र–व्यवस्था में भागीदारी करना। इसके साथ यह भी है – मानव का अभी स्वयं में व्यवस्था होना, और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना प्रतीक्षित है। अभी तक मानव केवल "व्यक्तिवादी" और "समुदायवादी" विधि से ही जिया है। व्यक्तिवादी विधि से या समुदायवादी विधि से "अखंड समाज" नहीं बन सकता।
"गुण" को मध्यस्थ–दर्शन में सम, विषम, और मध्यस्थ स्वरूप में होना समझाया गया है। प्रकृति की इकाइयां साम्य–ऊर्जा (सत्ता) में संपृक्त हैं, और कार्य–ऊर्जा को प्रकाशित करती हैं। साम्य–ऊर्जा घटता–बढ़ता नहीं है, कार्य–ऊर्जा घटता–बढ़ता है। सम–विषम गुण "कार्य–ऊर्जा" से सम्बंधित हैं। मानव अपनी कार्य–ऊर्जा को जब

"उत्पादन कार्य" (मनाकार को साकार करना) में लगाता है और "समझाने" में लगाता है – उसे "सम" गुण कहा। मानव अपनी कार्य–ऊर्जा को विनाश करने में या भ्रमित करने में लगाता है – उसे "विषम" गुण कहा। भ्रमित करने और विनाश करने में स्व–शक्तियों का प्रयोग ही "अपराध" है।
प्रश्न: "मूल्यों का साक्षात्कार" से क्या आशय है?

उत्तर: मूल्य जीवन का स्वाभाविक रूप से "प्रकटन" है। अभी भी जब एक माँ संतान को अपने शरीर का प्रतिरूप "मान" लेती है, तो उसमें ममता का अपने–आप से प्रकटन होता है। अपनी संतान के प्रति ऐसी ममता का प्रगटन जीवों में भी होता है। मानव में ममता जब "व्यवस्था" के अर्थ में समझ आती है, तो ही सार्थक हो पाती है। यदि संतान को शरीर के प्रतिरूप ही मानते हैं तो ममता थोड़े समय तक रहती है, फिर समाप्त हो जाती है।

मूल्यों का कोई साक्षात्कार नहीं होता, मूल्यों का "प्रकटन" होता है। अनुभव–मूलक विधि से जीवन में निहित मूल्य प्रकट होते हैं, प्रमाणित होते हैं। जीवन में जब धर्म अनुभव में आता है, उसके बाद मूल्यों की प्रगटन–शीलता शुरू हो जाती है। मानव–धर्म सुख है।

एक तरफ "स्वयं में अनुभव" है, दूसरी तरफ "समग्र व्यवस्था" है। इन दोनों के बीच में "मूल्यों का प्रकटन" है।

इसीलिये मैं बारम्बार कहता हूँ – "चेतना विकास" के साथ ही "मूल्य शिक्षा" है।

प्रश्न: तो क्या "मूल्यों का प्रकटन" अनुभव के बाद है?

उत्तर: अनुभव के बाद ही मूल्यों का प्रकटन है। अनुभव से पहले मूल्यों का प्रकटन कहाँ होने वाला है?

ईर्ष्या–द्वेष से पचा हुआ मानव क्या "मूल्यों का प्रकटन" करेगा? अपने–पराये की दीवारें बनाते हुए क्या "मूल्यों का प्रकटन" होता है? अपराध को वैध मानते हुए क्या "मूल्यों का प्रकटन" होता है? होता हो तो आप करा दो!

भ्रम का **विकल्प** जागृति है।
जागृति की आवश्यकता भ्रम के आधार पर ही है।
जागृति के बाद भ्रम रहता नहीं है।
भ्रम नहीं रहता तो जीवन से मूल्यों का प्रकटन अपने आप से होता है। **(अध्याय:, पेज नंबर:181–183)**

श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के उदबोधन पर आधारित (अनुभव शिविर २०१०, अमरकंटक)
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2010/02/blog-post_4511.html

- **प्रामाणिकता ही प्रमाण है**

प्रश्नः अध्ययन बोध (अनुभवगामी बोध) और अनुभव प्रमाण बोध (अनुभव मूलक बोध) में क्या अंतर है?

उत्तरः अध्ययनपूर्वक शब्द से अर्थ और अर्थ से वस्तु तक पहुँचना बनता है। अनुभव में जो अध्ययनपूर्वक सच्चाइयों का बोध हुआ था उसकी स्वीकृति हो जाती है। अनुभव में इस प्रकार स्वीकृति होने पर प्रामाणिकता आ गयी। जिसके फलस्वरूप बुद्धि में प्रमाण बोध होता है। जिसको प्रमाणित करने के लिए बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन सब काम करने लगते हैं।

बुद्धि का वर्चस्व (मौलिकता) बोध ही है। चित्त का वर्चस्व चिंतन ही है। वृत्ति का वर्चस्व न्याय, धर्म, सत्य के आधार पर तुलन ही है। मन का वर्चस्व मूल्यों का आस्वादन करना ही है। इस ढंग से पूरा जीवन “अनुभव मय” हो जाता है।

अध्ययन विधि से अनुभव में स्वीकृति तक पहुँचते हैं, अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होने तक पहुँचते हैं। जो अध्ययन कराया उसको प्रमाणित करना।

प्रमाणित होने की शुरुआत अनुभव मूलक चिंतन से है। उससे पहले दृष्टापद है। अनुभव पूर्वक मानव दृष्टा पद में हो जाता है। प्रमाणित होना जीने में परंपरा के रूप में ही होता है।

अनुभव तभी होता है जब बोध हुआ हो। “सही” के अलावा कुछ बोध होता भी नहीं है। “सही” के अलावा दूसरा कुछ भी मानव के आगे आता है, उसमें तर्क फंसा ही लेता है। जब तक “सहीपन” का प्रस्ताव मानव के आगे नहीं आता तब तक तर्क उसे अपने चंगुल में फंसाए ही रखता है। “सहीपन” तर्क के चंगुल में आता नहीं है।

तभी सहीपन का बोध होता है। सहअस्तित्व स्वरूप में अस्तित्व बोध बुद्धि में होता है। सहअस्तित्व परम सत्य है इसलिये अनुभव होता है। सहअस्तित्व बोध होने के बाद ही सहअस्तित्व में अनुभव होता है। मैं जो साधना समाधि सयंम पूर्वक जो चला उसमें भी सहअस्तित्व बोध होने के बाद ही मुझे अनुभव हुआ।

अध्ययन पूरा होने पर ही अनुभव होता है। अध्ययन की वस्तु सम्पूर्ण सहअस्तित्व ही है। अध्ययन यदि पूरा होता है तो प्रमाणित करने के संकल्प के साथ तुरंत अनुभव होता है। अनुभव पूर्वक ही प्रमाणित करने का प्यास तत्काल बुझता है। अध्ययन पूरा होने की स्थिति में प्रमाणित होने की तत्परता बनता है।

यदि आत्मा में अनुभव होता है, तो हम स्वयं को प्रमाणित करने के योग्य हो गए।

अनुभव मूलक विधि से ही प्रमाण होता है। दूसरा कोई प्रमाण होता नहीं है।

अनुभव मूलक विधि से प्रमाण ही होता है। दूसरा कुछ होता नहीं है। अनुभव ही अंतिम प्रमाण है। अनुभव के बिना प्रमाणित होने का हैसियत तो आएगा नहीं!

अनुभव के प्रकाशन का स्वरूप है न्याय, धर्म, सत्य। आखिरी बात यही आती है “जीने देना है और जीना है। होने देना है, होते ही रहना है।”

इसमें क्या तर्क करोगे बताओ? हर जीवन न्याय, धर्म, सत्य को चाहता ही है। जन्म से ही बच्चे न्याय के याचक होते हैं, सही कार्य व्यवहार करना चाहते हैं और सत्य वक्ता होते हैं। हर बच्चा न्याय का याचक है उसमें न्याय प्रदायी क्षमता को स्थापित करने की आवश्यकता है। हर बच्चा सही कार्य व्यवहार करना चाहता है उसमें कर्म और व्यवहार के अभ्यास कराने की आवश्यकता है। हर बच्चा सत्य वक्ता है (जैसा देखा–सुना रहता है, वैसा ही बोलता है) उसमें सत्य बोध कराने की आवश्यकता है।

प्रमाणित होने की "प्रवृत्ति" मानव में है ही! प्रमाणित होने की "आवश्यकता" मानव में है ही! लेकिन प्रमाणित होने के लिए "वास्तविकताओं की समझ" मानव में अभी तक नहीं थी, वह स्पष्ट करने के लिए ही मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन है।

जब तक अनुभव नहीं है, तब तक तर्क का झंझट बना ही रहता है। ऐसा तर्क "निश्चयन विधि" से जीने के लिए बाधक है। निश्चयन विधि से जीने के लिए अनुभव ही है। सहअस्तित्व स्थिर है, विकास और जागृति निश्चित है। इन तीन बातों को ही जीने में प्रमाणित किया जाता है। इन तीन बातों को समझाने के लिए ही पूरा दर्शन,वाद, शास्त्र लिखा है। पूरा वांग्मय संक्षिप्त होने पर पाँच सूत्रों में सूत्रित होता है सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में विकास क्रम, सहअस्तित्व में विकास, सहअस्तित्व में जागृति क्रम और सहअस्तित्व में जागृति।

अनुभव मूलक विधि से जीने की प्रक्रिया है अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन। इन तीन तरीकों से मानव अपने अनुभव को जीने में प्रस्तुत करता है। प्रकाशन अनुभव की ज्यादा व्याख्या है। सम्प्रेषणा में सीमित व्याख्या है। अभिव्यक्ति में संक्षिप्त व्याख्या है। सामने व्यक्ति के अधिकार के अनुसार व्याख्या होती है। अध्ययन का लक्ष्य है विस्तार से संक्षिप्त की ओर बढ़ना। स्वयं प्रमाण स्वरूप हो जाना। इससे ज्यादा कुछ होता नहीं है। इससे ज्यादा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कल्पना के आधार पर ही मानव ज्ञान संपन्न होता है। नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य ये 6 आयामों में ही मानव के प्रमाणित होने की सीमा है। इससे ज्यादा नहीं है।

आप इस बात को पूरा समझ कर मेरे बराबर अच्छा जियोगे, या मुझसे ज्यादा अच्छा जियोगे! आपकी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतन्त्रता इस समझ से जुड़ेगा तो आप हमसे अच्छे हो ही गए! इससे पहले न भौतिकवाद ऐसे सोच पाया, न आदर्शवाद ऐसे सोच पाया। भौतिकवाद का मृत्यु आरक्षण और विशेषज्ञता में हुआ। आदर्शवाद रहस्य में जा कर फंस गया। इन दोनों के **विकल्प** में मध्यस्थ दर्शन प्रस्तुत हुआ है। **(अध्याय:, पेज नंबर:183–186)**

श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (दिसम्बर 2008, अमरकंटक)

- शिक्षा के लिए विकल्प

आदिकाल से ही मनुष्य–परंपरा में शिक्षा की बात है। यह जंगल–युग से ही है। शिक्षा के बारे में आदमी चर्चा करते ही आया है। इस क्रम में हमारे देश में वैदिक–शिक्षा की बात आयी। दूसरे देश में बाइबिल को शिक्षा में लाने की बात हुई। तीसरे देश में कुरान को शिक्षा में लाने की बात हुई। ऐसे ही विभिन्न प्रकार की शिक्षा–परम्पराएं धरती पर स्थापित हुई। यह क्रम चलते–चलते आज के समय में विज्ञान–शिक्षा का सभी देशों में लोकव्यापीकरण हो चुका है। विज्ञान–शिक्षा से अपेक्षा थी कि इससे सबको तृप्ति मिलेगी, लेकिन इससे तृप्ति मिला नहीं।

अभी तक जो कुछ भी शिक्षा में आया, उसके "**विकल्प**" के रूप में मध्यस्थ–दर्शन का "चेतना–विकास, मूल्य–शिक्षा" का प्रस्ताव है। जंगल युग से आज तक आदमी जीव–चेतना में जिया है। मनुष्य ने जीव–चेतना में जीते हुए, जीवों से अच्छा जीने के क्रम में शरीर–सुविधा से सम्बंधित सभी वस्तुएं प्राप्त कर लीं। इसमें खाने–पीना, कपड़ा, मकान, यान–वाहन, दूर–संचार की सभी वस्तुएं शामिल हैं। यह सब होने के बावजूद मनुष्य को शिक्षा से संतुष्टि नहीं मिली। इसका मूल कारण यह है – मनुष्य ज्ञान–अवस्था का है, और उसको जीव–चेतना की शिक्षा से संतुष्टि मिल नहीं सकती। इसलिए "विकसित चेतना" के अध्ययन को शिक्षा में लाने के लिए प्रस्ताव है। मानव–चेतना,

देव–चेतना, दिव्य–चेतना "विकसित चेतना" है। इस तरह जी कर मनुष्य "कृत–कृत्य" हो सकता है। "कृत–कृत्य" होने का मतलब है – मानव जिस बात के लिए ज्ञान–अवस्था में उदय हुआ है, वह सार्थक होना। इस प्रस्ताव के संपर्क में जो भी आये हैं, उनका यह स्वीकृति है – ऐसा होना बहुत ज़रूरी है।

परिवार में हर व्यक्ति मानव–चेतना में पारंगत हों, देव–चेतना में जी सकें, दिव्य–चेतना को प्रमाणित कर सकें – ऐसा "अधिकार" बन सके। कितने लोग इस तरह पारंगत हुए, कितने लोग इस तरह प्रमाणित हो सकें – इसको पहचानने के लिए इस अनुभव–शिविर का आयोजन है।

"चेतना–विकास" से आशय है – मानव–चेतना में जीने के लिए विश्वास स्वयं में पैदा होना। मानव के लिए मानवत्व ही स्वत्व के रूप में पहचानने की आवश्यकता है। देवत्व और दिव्यत्व श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम हैं। मानवत्व से श्रेष्ठता की शुरुआत है। इस आधार पर इसके लिए पारंगत होने की बात आती है।

मानवत्व का क्रिया–स्वरूप है – मानव के साथ न्याय–धर्म–सत्य पूर्वक जी पाना, और मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ नियम–नियंत्रण–संतुलन पूर्वक जी पाना। यदि ऐसे जीना बन पाता है तो हम परिवार में व्यवस्था पूर्वक जी पाते हैं। मानव–चेतना पूर्वक मनुष्य समाधानित होता है, और परिवार में "समाधान–समृद्धि" प्रमाणित करने योग्य होता है। इस प्रकार मनुष्य के जीने में विषमता समाप्त होता है। विषमता समाप्त होने का पहला मुद्दा है – "नर–नारी में समानता"। समझदारी को ही नर–नारियों में समानता के बिंदु के रूप में पहचाना जा सकता है। यदि इस बिंदु को पाना है, तो मानव–चेतना को अपनाना ही होगा। मानव–चेतना के इस प्रस्ताव को लेकर हम इस घर के बाहर तक तो पहुच गए हैं, पर यह संसार तक पहुँच गया – मैं इस पर अभी विश्वास नहीं करता हूँ। अब हमारी सभी की जिम्मेदारी है – यह प्रस्ताव संसार में जल्दी से जल्दी कैसे पहुंचे। "जल्दी" इसलिए आवश्यक है – क्योंकि धरती बीमार हो चुकी है, प्रदूषण छा गया है, अपराध–प्रवृत्ति बढ़ गयी है, अपने–पराये की दूरियां बढ़ गयी हैं।

आज की स्थिति में सभी देशों को यह चेतावनी हो चुकी है – इसी तरह हम चलते रहे तो धरती बचेगा नहीं! धरती को बचाना है तो मनुष्य का भ्रम–मुक्त, अपराध–मुक्त, और अपने–पराये की दीवारों से मुक्त होना आवश्यक है। अधिकाँश लोग धरती को बचाने के पक्ष में हैं। इने–गिने लोग ही धरती को न बचाने के पक्ष में होंगे। धरती को बचाने के लिए मानव–चेतना के प्रस्ताव को हरेक व्यक्ति के पास ले जाने की ज़रुरत है।

इस प्रस्ताव को स्वीकारने में वृद्ध पीढ़ी को सबसे ज्यादा तालीफ़ है, प्रौढ़ पीढ़ी को उससे कम, कौमार्य पीढ़ी को उससे कम, और बाल्य– पीढ़ी को सबसे कम तकलीफ है। यह हमारे सर्वेक्षण में आया है। तकलीफ का कारण है – उनके पूर्वाग्रह और पूर्वाभ्यास।

विज्ञान–शिक्षा के लोकव्यापीकरण क्रम में सभी देशों में शिक्षा–संस्थाएं स्थापित हो चुके हैं। इस प्रस्ताव को शिक्षा–संस्थाओं में पहुँचाने की आवश्यकता है।

इस प्रस्ताव को शिक्षा–संस्थाओं में पहुंचाने का स्वरूप क्या होगा? इस प्रस्ताव को शुद्धतः पहुंचाने की आवश्यकता है। छत्तीसगढ़ में राज्य–शिक्षा संस्थानों में इस प्रस्ताव को समझाने की शुरुआत की गयी – जिससे "सफलता" की शुरुआत हुई। शिक्षा–संस्थानों के अध्यापक और अधिकारी दोनों इससे सहमत हुए। सहमत होने के बाद अध्ययन शुरू किये। अध्यापकों द्वारा बच्चों तक यह शिक्षा पहुँचने लगेगी तो हम इस बात का प्रमाण हुआ मानेंगे। यदि छत्तीसगढ़ में यह पूरा पहुँचता है तो आगे दूसरे राज्यों में भी पहुँचेगा।

– अनुभव शिविर, अमरकंटक – जनवरी २०१० – में श्रद्धेय श्री नागराज जी के उदबोधन से (**अध्याय:, पेज नंबर:** 188–190)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2010/02/blog-post_7536.html

- **धर्म और व्याख्या**

"धर्म" शब्द एक वेद कालीन या बहुत प्राचीन कालीन उपलब्धि है। प्राचीन काल से "धर्म" शब्द का प्रयोग होता आया है। विविध प्रकार से धर्म गद्दियाँ स्थापित हुई। इस धरती पर जितनी भी धर्म गद्दियाँ प्रचलित हो चुकी हैं, वे सभी धर्म के "लक्षणों" को लेकर उन समुदायों को समझाया करते हैं। इस क्रियाकलाप को "उपदेश" कहते हैं। "प्रवचन" भी कहते हैं। इस तरह उपदेश और प्रवचन देने वालों को "धर्म रक्षक" मानते हैं। इन उपदेश और प्रवचन को सुनने वालों को "अनुयायी" माना जाता है। इस तरह धर्म गद्दियों द्वारा भांति–भांति विधियों से "आस्था" की सीढ़ियों तक लोगों को पहुँचाता हुआ और लोगों को पहुँचता हुआ देखा जाता है। इसमें उल्लेखनीय बात यही है धर्म के लक्षणों को बताने वाले को स्वयं धर्म का स्वरूप पता नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में अनुयायियों को या आस्था करने वालों को धर्म कैसे समझ में आएगा यह प्रश्न मानव सम्मुख होता ही है। इस प्रश्न का सटीक उत्तर नहीं होने के आधार पर ऐसा ही बनता है बाकी लोग जैसा कर रहे हैं, वैसा ही हमको भी चलना चाहिए। इस आधार पर मानव परम्परा ने आस्था तंत्र को आज तक बनाए रखा है।

आस्थाएं संवेदनशीलता की अनुकूलता में ही चित्रित होना, व्याख्यायित होना देखा जाता है। संतान अपेक्षा, पद अपेक्षा, धन अपेक्षा, स्वास्थ्य अपेक्षा, सुविधा अपेक्षा के लिए प्रार्थना होती है और उनके प्राप्त होने पर आस्था बना रहता है। इस को "आस्था परम्परा" भी कहा जाता है। मानव ने अपने अभावों को व्यक्त करने के लिए आस्था क्रियाकलाप को सुविधाजनक माना। हम कुछ भी बोलें, सोचें उसके प्रत्युत्तर में कुछ भी न बोलने वाले स्थान, मूर्ति, चित्र को अभी तक आस्था क्रियाकलाप के लिए सुविधाजनक माना जाता है। ऐसे स्थली में जो कोई भी प्रार्थना करते हैं, या अपेक्षा करते हैं उसके फलित होने का अपेक्षा करना होता है। ऐसे प्रतीक्षाकाल में घटना विधि से कुछ न कुछ हो ही जाता है। उस घटना को प्रार्थना का, आस्था का फल माना जाता है। इस प्रकार बड़े–बड़े मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चबूतरा, पत्थर पर लालिमा पोत कर रखना देखा जाता है। इन स्थानों को "पूजा स्थली" माना जाता है। मूर्तियाँ और चित्र इन सबके साथ जुड़ी हुई संगतियाँ हैं।

इसके आगे "आस्था स्थलियों" से जुडी हुई गतिविधियों का सर्वेक्षण करने पर पता चलता है ऐसी स्थलियों पर वहाँ के आस–पास के कुछ लोग जाया करते हैं, कुछ लोग नहीं भी जाया करते हैं। जो जाया करते हैं, उनकी प्रार्थनाओं में जो अपेक्षा रहती है उनका आंशिक भाग या पूरा भाग किसी–किसी के साथ घटित भी होता है, किसी–किसी के साथ घटित नहीं भी होता है। जो लोग इन आस्थावादी जगहों पर नहीं जाया करते उनकी भी कुछ अपेक्षाएं घटित होती हैं, कुछ नहीं घटित होती। इस प्रकार यह निश्चय करना मुश्किल है कोई उपलब्धि पूजा–पाठ, पत्री आदि से

हुई या अपने–आप से हुई। जैसे संतान के लिए प्रार्थना। जो लोग प्रार्थना नहीं भी करते, उनके भी संतान होता है। पैसे और पद के लिए प्रार्थना। जो लोग प्रार्थना नहीं करते उनको भी पद और पैसा मिला रहता है। फ़िर यह मुद्दा बनता है पूजा–पाठ के आधार पर कैसे कोई चीज प्राप्त होती है? यह कहना मुश्किल हो जाता है। इसको और गहराई से सर्वेक्षण करें तो पता चलता है सम्पूर्ण अवैध उपलब्धियों को भी आस्था का फलन माना जाता है। जैसे बहुत शोषण करके धन इकठ्ठा करने में सफल हो गए तो उसको अपनी प्रार्थना का फल मान लिया। इस विधि से हम कहाँ पहुँच गए हैं यह हमारे सामने है। आस्थावाद इस प्रकार वाद ग्रस्त होता गया है। 18वीं शताब्दी से मानव जाति द्वारा उन्मुक्त विचार क्रम में, अथवा भौतिकवादी विचार क्रम में तर्क सम्मत विधि से सोचना, समझना, निर्णय करना शुरू हुआ। विज्ञान विधि ने भी तर्क को भरपूर अपनाया। ऐसे सभी तर्क का प्रयोजन भी कुल मिला कर संवेदनाओं को राजी करना ही रहा। संवेदनाओं को राजी करने के लिए सभी अपराधिक कृत्यों जैसे जंगल, खनिज, वन्य जीव, घरेलू जीव इन सबका शोषण, मानव द्वारा दूसरे मानव का शोषण, एक देश का दूसरे देश का शोषण को वैध मान लिया। इस तरह जो भी किया गया उसके फलन में धरती बीमार हो गयी।

धरती बीमार होने की स्थिति में मानव परम्परा कैसे बना रहेगा? इस तरह तो पिछली पीढ़ियों ने आगे की पीढ़ियों के जीने की स्थली और संभावनाओं को ही समाप्त कर दिया! इस स्थिति के लिए पीछे की पीढियाँ जो अपराध के लिए सहमत हुए हैं ये सब प्रकारांतर से जिम्मेदार होना स्वाभाविक है। इस स्थिति का निराकरण आवश्यक है।

इस स्थिति का निराकरण शोध अनुसंधान विधि से मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के रूप में मानव सम्मुख प्रस्तुत हुआ है।

इसके मूल में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन है।इसका मतलब मानव ही समझने वाला इकाई है। मानव ही प्रमाणित होने वाला इकाई है। समझदारी से संपन्न होने पर मानव समाधानित होता है,सुखी होता है और यही मानव धर्म है। अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था के रूप में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व प्रगट है, वर्तमान है। मानव ज्ञान अवस्था में नियति सहज विधि से है। मानव ज्ञान अवस्था में होने के आधार पर सुखी होने की चाहत में ही जी रहा है। मानव ने पाँच संवेदनाओं के अर्थ में सुखी होने के बारे में सोचा और संवेदनाओं को राजी रखने के लिए प्रयास किया। इस प्रकार के प्रयासों के क्रम में मनाकार को साकार करना सम्भव हो गया। मनः स्वस्थता की अपेक्षा शेष रहे आया। “सुखी होना” ही मनः स्वस्थता का स्वरूप है।

“समाधानित होना” ही सुखी होना है। सर्वतोमुखी समाधान ही निरंतर सुख का स्त्रोत है। यही मानव धर्म का व्यवहारिक सूत्र है। समाधान ही अनुभव में सुख है। समाधान, समृद्धि ही अनुभव में सुख, शान्ति है। समाधान, समृद्धि, अभय ही अनुभव में सुख, शान्ति, संतोष है। समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ही अनुभव में आनंद है। जीवन में सुख, शान्ति, संतोष, आनंद मूल्यों का अनुभव होने की स्थिति में मानव परम्परा के कार्य और व्यवहार में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व प्रमाणित होता है। अनुभव स्थिति में सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व का दृष्टा होना पाया जाता है। अनुभव मानव परम्परा में प्रमाणित होता है, जिससे नित्य उत्सव होता है। यही आनंद का स्वरूप है।

विकल्प रूप में मानव परम्परा गुणात्मक परिवर्तन के लिए ज्ञान, विवेक और विज्ञान में पारंगत होने की आवश्यकता है। यही अपराध मुक्त प्रवृत्ति और कार्यक्रम का सूत्र है।

बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००६, अमरकंटक) (**अध्याय:, पेज नंबर:211–214**)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/11/blog-post_18.html

- **विरोध पर विजय पाना सम्भव है.**

आदिकाल से आज तक युद्ध को सर्व–जन मानस में आवश्यकता के रूप में स्वीकारा नहीं गया, एक "मजबूरी" के रूप में ही स्वीकारा गया। ऐसी मजबूरी के लिए तर्क यह दिया जाता है – पड़ोसी देश जब सामरिक तंत्र को तैयार करता है, तब हमको करना ही पड़ेगा। ऐसे उदगार जो पहले तैयार करता है, वह भी देता है। बाद में जो तैयार करता है, वह भी यही तर्क देता है। ऐसे में किसको सही माने? तब यही एक निष्कर्ष निकलता है – राज–गद्दी में जो बैठने को व्यक्ति तैयार होता है, उसके मन में सामरिक–तंत्र भय और प्रलोभन के आधार पर तैयार हुआ ही रहता है। राजगद्दी पर बैठे हुए आदमी को गद्दी खिसकने का भय बना ही रहता है। इसलिए राज–गद्दी में बैठ–कर पैसे को वितरित करने के "दाता" बने रहते हैं, और गद्दी बनाए रखने के लिए कितने भी भृष्टाचार, अनाचार, दुराचार समावेश करने के लिए प्रलोभित रहते हैं। एक निष्कर्ष निकलता है – "राज–गद्दी रहेगा तो युद्ध–कार्य रहेगा ही!"

इस प्रकार की स्थिति में इससे बचा कैसे जाए? इस पर सोचने के लिए **विकल्पात्मक** विधि की आवश्यकता हुई, जो अनुसंधान पूर्वक हमारे करतलगत हो गयी।

मानव–चेतना विधि से हम यह पाये हैं – विरोध का विरोध, और विरोध का दमन के स्थान पर "विरोध पर विजय" पाना सम्भव है। यह समझदारी सहज रूप में लोकव्यापीकरण होना ही है। इसे पाने के लिए सूत्र रूप में "चेतना–विकास मूल्य–शिक्षा" विधि से पूरे देश में "विरोध पर विजय" पाने की मानसिकता को तैयार किया जा सकता है। विरोध पर विजय पाने के लिए "सर्वतोमुखी समाधान" ही एक मात्र उपाय है। "सर्वतोमुखी समाधान" समझदारी से ही मानव–परम्परा में प्रमाणित होता है। इसके लिए सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान – इन तीनो में अध्ययन पूर्वक पारंगत होने के उपरांत ही अनुभव–मूलक विधि से सर्वतोमुखी समाधान प्रकट करने का अधिकार हर व्यक्ति में होना पाया जाता है।

इस ओर हर शुभ चाहने वाले व्यक्ति को ध्यान देने की आवश्यकता पैदा हो गयी है। (**अध्याय:, पेज नंबर:233–234**)

– श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००६, अमरकंटक)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/10/blog-post_1311.html

- **वर्तमान का विखंडन नहीं किया जा सकता.**

वर्तमान का तात्पर्य है – होना, रहना। होने–रहने में क्रियाशीलता सदा–सदा से स्थिति–गति रूप में, फल–परिणाम रूप में, वर्तता ही रहता है, अभी भी वर्त रहा है, आगे भी वर्तता रहेगा। इस प्रकार वर्तमान कहीं भी खंडित होना, या खंडित रहना – किसी भी विधि से सम्भव नहीं है।

"ऋणात्मक विधि" से वस्तु के अभावित होने की बात किया जाता है। ऐसे प्रयोगों को सर्वाधिक रूप में गणितीय विधि से संपन्न करना देखने को मिल रहा है। ऋणात्मक विधि से वस्तु स्थानांतरित होती है। कोई एक देश–काल में वस्तु जो थी, वह दूसरे देश–काल में चली गयी। उदाहरण रूप में : "१० – १० = ० " – ऐसा गणित में लिखा करते हैं। इससे मानव को संदेश रूप में जो स्वीकारने को सूत्र मिलता है – "वस्तु नहीं रहा!" इस तरह गणितीय विधि जो सच्चाई को उद्घाटित करने गया था, झूठाई में उलझाते चले गए।

"विखंडन विधि" से भी वस्तु और क्रिया के समाप्त होने की कल्पना दी जाती है। विखंडन क्रम के लिए चक्कू, छुरी, तलवार, पिसाई, घुटाई का प्रयोग किया जाता है। इसके बाद संख्यात्मक गणित का सहारा लिया जाता है। इस क्रम में – एक वस्तु को हज़ार टुकडा किया, पुनः उसमें से एक टुकड़े को हज़ार टुकडा किया, इस प्रकार करते–करते टुकडा विधि से एक टुकडा बचा ही रहता है। जिसको गणितीय विधि में "नगण्य" मान लेते हैं, अथवा और टुकडा करने में दिलचस्पी ख़त्म हो जाता है, अथवा और टुकडा करने का आवश्यकता नहीं रहता। ऐसी थकी हुई मानसिकता की स्थिति में "वस्तु समाप्त हो गयी" – ऐसा गणितीय विधि से स्वीकार लेते हैं। जबकि हर विखंडन के पहले "एक" होना स्वीकारे ही रहते हैं। उसको हज़ार भाग में विभाजित करने के बाद एक भाग को पुनः विभाजित करना स्वीकारते हैं। शेष ९९९ भाग यथावत रखा ही रहता है। इस क्रम को जोड़ने पर पता लगता है मानव भ्रमित करने को ही विखंडन–विधि गणित को अपनाए। विखंडन–विधि गणित मनुष्य को कुछ भी सकारात्मक वस्तु, उपलब्धि, घटना, अथवा ज्ञान देने में असमर्थ रहा। जबकि गणितीय भाषा को सर्वाधिक सत्य मान करके विज्ञान–संसार उदय हुआ था!

"दबाव विधि" से भी वस्तु और क्रिया के समाप्त होने की कल्पना दी जाती है। इसमें "यांत्रिक दबाव" और "ऊष्मा दबाव" के भेदों से प्रयोग संपन्न हुए। इन प्रयोगों में बहुत प्रकार के रसायन द्रव्यों के संयोग में ऊष्मा–दबाव पैदा करते हुए देखा गया। एक पटाखा से लेकर बन्दूक तक, बन्दूक से लेकर तोप तक, तोप से लेकर आण्विक–बम्ब तक विध्वंस क्रियाकलापों को करता हुआ देखा गया। इन सभी क्रम में ऊष्मा विधि से दबाव होना, उस दबाव से वातावरण में ध्वनि से लेकर कुछ न कुछ उपद्रव मचाने के रूप में निरीक्षण–परीक्षण करके निर्णय लेते चले गए।

इन सभी विधियों में सर्वाधिक हानि–प्रद ऊष्मा–तंत्र प्रदूषण विकीरणीय धातुओं के परिष्करण पूर्वक मध्यांश का विखंडन पूर्वक हुआ। यह सब जो मानव जाति के लिए नकारात्मक है – उसका गुण–गायन आए दिन प्रचार–माध्यमो द्वारा उछाला जाता है। इस प्रकार विज्ञानं विधा में जो सर्वाधिक सम्मान पाते हैं – वह सर्वाधिक विध्वंस–कारी, मानव–विरोधी, और नियति–विरोधी है। यह सब नाश और अड़चन का कारण बन चुकी है। सामरिक तंत्रों में, सामरिक विचारों में, सामरिक प्रयोगों में संलग्न विज्ञानियों को सर्वाधिक उपयोगी माना जाता है।

हर ईष्ट–अनिष्ट घटनाएं वर्तमान में ही घटित होती हैं। इसमें से ईष्ट घटनाएं मानव को स्वीकार होती हैं, अनिष्ट घटनाएं मानव को स्वीकार नहीं होती। हम अपराध के लिए भले ही भय–प्रलोभन वश सहमत हो गए हों, पर आज की स्थिति में मानव–कुल में जीवित सर्वाधिक लोगों में अपराध अस्वीकृत है। इसीलिए **विकल्पात्मक** विधि को सोचने की आवश्यकता है।

अपराध–मुक्ति **विकल्पात्मक** विधि से ही सम्भव है, परम्परा–गत विधि से नहीं। भटकाव से मुक्ति पाने के लिए सह–अस्तित्ववादी **विकल्पात्मक** विचार, शास्त्र, शिक्षा, व्यवस्था के प्रति पारंगत होना आवश्यक हो गया है। यह "सर्वतोमुखी समाधान" एक सहज–मार्ग होना स्पष्ट हो चुका है। **(अध्याय:, पेज नंबर: 234–236)**

बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००६)
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/10/blog-post_29.html

- **सार्वभौम व्यवस्था** – सम्मलेन २००९, हैदराबाद
  जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

इस शुभ–कामना से हम यहाँ मिले हैं। आज मेरे वक्तव्य का मुद्दा है – "सार्वभौम व्यवस्था"। सार्वभौम व्यवस्था कैसे होती है? पिछले तीन दिनों में आपके सम्मुख प्रस्ताव रखा है कि '**विकल्प**' स्वरूप में 'समझदारी' से संपन्न होने की आवश्यकता है। 'समझदारी' से संपन्न होने के बाद 'प्रमाणित' करने की आवश्यकता है। यह मनुष्य के सामने 'आवश्यकता' के स्वरूप में रखा हुआ है। सन् २००० तक ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी इस धरती पर जो कुछ भी सोचा, निर्णय लिया, किया – उसके फल–परिणाम में यह धरती बीमार होते हुए देखने को मिला। अपना–पराया की दूरियां बढ़ते हुए देखने को मिला। देशों की सीमाओं पर विभीषिकाएँ बढ़ता हुआ देखने को मिला। इन सब को देखने पर मनुष्य–जाति में सोचने का मुद्दा उभरा – "हम सही कर रहे हैं, या ग़लत कर रहे हैं?"

उसके उत्तर में **विकल्पात्मक** स्वरूप में "समझदारी" का यह प्रस्ताव है। समझदारी को अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन–ज्ञान, और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान के संयुक्त रूप में अध्ययन–गम्य कराने का व्यवस्था दिया। इसको अध्ययन करने वाले आज लगभग २००० लोग तो हो चुके हैं। अब यदि आपकी इच्छा हो तो आप भी अध्ययन कर सकते हैं। यह आपको सूचना देना चाहा।

इस प्रकार यदि अध्ययन होता है तो मनुष्य का "मानव चेतना" पूर्वक जीना बनता है। अभी तक मनुष्य–जाति "जीव–चेतना" में जिया है – यह समीक्षित हुआ। जीव–चेतना में जीते हुए मनुष्य ने जीवों से अच्छा जीने का प्रयत्न किया। इन्ही प्रयत्नों के फलन में यह धरती ही बीमार हो गयी – जिससे पुनर्विचार की आवश्यकता बन गयी। पुनर्विचार के लिए **विकल्पात्मक** रूप में "समझदारी" का प्रस्ताव है।

अस्तित्व–दर्शन ज्ञान, जीवन–ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान – इन तीनो को छोड़ कर हम कभी भी "समझदार" नहीं होंगे। अभी भी नहीं, करोड़ वर्ष के बाद भी नहीं। इस ज्ञान को परीक्षण करने और शोध करने का अधिकार हर व्यक्ति के पास रखा है। यह मैं अपने अनुभव से बता रहा हूँ।

ऐसे समझदारी से संपन्न होने पर हमको "सर्वतोमुखी समाधान" हासिल होता है। इस बात को मैंने अनुभव किया है, जिया है, प्रमाणित किया है। सर्वतोमुखी समाधान को मैं जी कर देखा हूँ, प्रमाणित किया हूँ – इससे "सुख" मिलता है। प्रकारांतर से, आज पैदा हुआ आदमी, कल मरने वाला आदमी – सभी सुखी होना चाहते हैं। मानव–चेतना से संपन्न होने पर हरेक व्यक्ति के पास समाधान उपलब्ध होगा। समाधान पूर्वक हम सुखी होते हैं। समस्या पूर्वक दुखी होते हैं। "सर्वतोमुखी समाधान" यदि आप हासिल करना चाहते हैं तो उसके लिए "मध्यस्थ–दर्शन सह–अस्तित्व वाद" अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया है। उसको आप अध्ययन कर सकते हैं।

"जीवन विद्या शिविर" इस प्रस्ताव की "सूचना" देता है। सूचना मिलने के बाद "उत्साहित" होना होता है। उत्साहित होने के बाद यदि "समझने" का उद्देश्य बनता है, तो उसके लिए व्यवस्था है। इस पर आप यदि इच्छा हो तो ध्यान दे सकते हैं। मेरे कहने मात्र से मत करिए। आपकी अपनी इच्छा बनती हो तो अध्ययन करिए। अभी रायपुर के पास एक छोटे से गाँव अछोटी में लगभग १०० लोग अध्ययन कर रहे हैं।

सह–अस्तित्व में प्रकटन विधि पूर्वक मनुष्य–शरीर रचना धरती पर प्रकट हुई। इस प्रकटन में किसी भी मानव का कोई भी हाथ नहीं है। इस धरती पर अभी तक जितने भी मनुष्य अब तक प्रकट हुए, यहाँ जो इतने लोग दिख रहे हैं – किसी का भी धरती पर मनुष्य–शरीर रचना प्रकटन में हाथ नहीं है। मनुष्य–शरीर रचना को प्रकृति स्वयं–स्फूर्त विधि से प्रस्तुत कर दिया। जागृति को प्रमाणित करने योग्य शरीर धरती पर बन चुकी है।

समझदारी के बिना हम समाधान संपन्न होंगे नहीं। मानव–जाति समाधान–संपन्न होने के बाद न सीमा–सुरक्षा रहेगी, न अपने–पराये की दूरियां रहेंगी, न "भ्रम" रहेगा।

"भ्रम" का स्वरूप क्या है? जीवन ही शरीर को जीवंत बना कर रखता है। जीवंत बनाने के फलस्वरूप शरीर में संवेदनाएं व्यक्त होती हैं। संवेदनाओं को देख कर जीवन ही बुद्धू बनता है और शरीर को जीवन मान बैठता है। यही भ्रम है। यह भ्रम रहने तक जीवन शरीर के मरने और जीने को अपने साथ जोड़ लेता है। शरीर को जीवन मानना ही भ्रम का मूल स्वरूप है।

समस्या भ्रम–वश है। समाधान जागृति पूर्वक होता है।

यदि हम समस्या प्रस्तुत करते हैं, तो हम भ्रमित हैं। यदि हम 'सर्वतोमुखी समाधान' प्रस्तुत करते हैं, तो हम जागृत हैं। हर व्यक्ति इस बात का "स्व–निरीक्षण" कर सकता है।

विकल्पात्मक मध्यस्थ–दर्शन का अध्ययन करने से मानव "सर्वतोमुखी समाधान" संपन्न होता है। सभी विधा में समाधान प्रस्तुत करने योग्य होता है। अध्ययन के बारे में बताया – हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। अध्ययन पूर्वक वस्तु साक्षात्कार होना, बोध होना, अनुभव होना। अनुभव होने के बाद प्रमाण होना। इस तरह मनुष्य अस्तित्व में अध्ययन कर सकता है, अनुभव कर सकता है, और अनुभव को जी कर प्रमाणित कर सकता है।

सर्व–मानव सुख चाहते ही हैं। सुख पूर्वक जीना चाहते ही हैं। वे एक शरीर–यात्रा में ही कैसे समझदार हों, समाधानित हों, प्रमाणित हों – उस चौखट में पूरे अध्ययन की व्यवस्था है। एक ही शरीर यात्रा में! अनेक शरीर यात्राओं की बात नहीं है। एक ही शरीर–यात्रा में "सम्पूर्ण बात" का अध्ययन कर सकते हैं।

"सम्पूर्ण बात" है – सह–अस्तित्व स्वरूप में अस्तित्व का अध्ययन हो जाए, और स्वयं का अध्ययन हो जाए। तब सम्पूर्ण अध्ययन हुआ। इसमें से एक भी भाग को छोड़ दें तो सम्पूर्ण अध्ययन नहीं हुआ।
अभी जो अध्ययन प्रचलित है वह केवल सुविधा–संग्रह करने के लिए है, अपराध करने के लिए है, दूसरों को बुद्धू बनाने के लिए है। अभी मानव–जाति के पास जो भी विद्वता है – वह इन तीन जगह में ले जाने के लिए ही कामयाब है। अभी तक मानव–जाति के पास जो भी विद्वता है वह समाधान प्रस्तुत करने में असमर्थ है। न्याय प्रस्तुत करने में असमर्थ है। सत्य प्रस्तुत करने में असमर्थ है। अभी तक मैं सुप्रीम कोर्ट के तीन retired judges से बात किया हूँ। वे कहते हैं – हमें न्याय का पता नहीं है, हम केवल "फ़ैसला" करते हैं।

"सत्य" शब्द हम जानते हैं – पर सत्य क्या है, सत्य का प्रभाव क्या है, इसके बारे में हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। सत्य बोध कराने की व्यवस्था अभी तक शिक्षा में आया नहीं है। इसीलिये इस **विकल्प** के द्वारा न्याय, धर्म, और सत्य को शिक्षा में बोध कराने की व्यवस्था रखा है। छत्तीसगढ़ राज्य शिक्षा से विद्वान यहाँ हमारे बीच बैठे हैं। वे भी इसकी गवाही दे सकते हैं। इस कार्यक्रम में हर व्यक्ति "स्वेच्छा" से भागीदार हो सकते हैं।

यह कोई "उपदेश" नहीं है।

मैं स्वयं एक वेदमूर्ति परिवार से हूँ। उपदेश देने में मैं माहिर हूँ। उपदेश की विधि है – "जो न मैं समझा हों, और न आप समझोगे – उसको मैं आपको बताऊँ, फ़िर आप मुझे कुछ दे कर खुश हों, मैं आप से वह ले कर खुश होऊं!" इस तरीके को मैंने छोड़ दिया – क्योंकि यह निरर्थक है, इससे कोई प्रयोजन नहीं निकलता। प्रयोजन जिससे निकलता है, उसको अनुसन्धान करने में मैंने २५ वर्ष लगाया, फ़िर और २५ वर्ष लगाया उसको संसार को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने के लिए, फ़िर १० वर्ष से इस बात को लोगों के सम्मुख रखने योग्य हुए। आज इस बात को करीब २००० लोग अध्ययन कर रहे हैं। आगे और लोग इसको अध्ययन करेंगे – यह आशा किया जा सकता है। जो चाहें, वे अध्ययन करने में भागीदारी कर सकते हैं।

अध्ययन कराने को लेकर हम प्रतिज्ञा किए हैं – "ज्ञान व्यापार" और "धर्म व्यापार" हम नहीं करेंगे। अध्ययन के लिए कोई दक्षिणा उगाहने की बात नहीं है। अध्ययन के लिए कोई शुल्क नहीं रखा है। ज्ञान जीवन सहज–अपेक्षा है। ज्ञान को टुकडा करके बेचा नहीं जा सकता। अभी जो "बुद्धि–जीवी" कहलाये जाते हैं – वे अपने ज्ञान को "बेच" रहे हैं। उनसे पूछने पर – "ज्ञान को कैसे बेचोगे? 'ज्ञान' को तुम क्या जानते हो?" – उनसे कोई उत्तर मिलता नहीं है। इस बात का कोई उत्तर देने वाला हो तो मैं उसको फूल माला पहना करके सुनूंगा! ज्ञान को "बेचने की विधि" को मुझे बताने वाला आज तक मिला नहीं है। अभी ज्ञान–व्यापार और धर्म–व्यापार में कितने लोग लगे हैं, उसका आंकडा रखा ही है। सारी दरिद्रता, सारी अपराध–प्रवृत्ति धर्म–व्यापार और ज्ञान–व्यापार से ही है।

समझदार होने के बाद हम धर्म–व्यापार करेंगे नहीं, ज्ञान–व्यापार करेंगे नहीं। मैं यदि "धर्म" को समझता हूँ तो मैं अपने बच्चे को उसके योग्य बनाऊं, अपने अडोस–पड़ोस के व्यक्तियों को उसके योग्य बनाऊं, अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों को उसके योग्य बनाऊं – यही बनता है। मैं वही कर रहा हूँ। मेरे संपर्क में आने वाले व्यक्तियों के बीच मैं काम कर रहा हूँ। व्यापार से मुक्त – धर्म और ज्ञान का बोध कराने की मैंने व्यवस्था कर दिया।

धर्म–आचार्यों से मैंने इस बारे में (ज्ञान–व्यापार और धर्म–व्यापार को लेकर) बात–चीत किया। इस बात को छेड़ने से आचार्य–लोग बहुत नाराज होते हैं। मैं उन आचार्यों की बात कर रहा हूँ जो शंकराचार्य पद पर बैठे हैं। एक आचार्य नाराज नहीं हुए। वे थे – श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य! वे अमरकंटक आए थे, उसके बाद उनसे सत्संग हुआ, उन्होंने मेरी बात को अध्ययन करने के बाद बताया – "तुमने एक महत कार्य किया है। हम तो धर्म के लक्षणों को बताकर शिष्टानुमोदन करते हैं, तुमने धर्म का अध्ययन कराने का व्यवस्था किया है।" ऐसा एक ही ऐसे व्यक्ति ने कहा। दूसरा ऐसे व्यक्ति ने अभी तक कहा नहीं है। इन सब बातों से जो मुझे संतोष मिलना था, मिलता रहा। मैं आगे–आगे बढ़ता गया, और इस प्रकार चलते–चलते आज आप लोगों के सान्निध्य में आ गया।

समझदार व्यक्ति व्यवस्था में जीता है। समझदार व्यक्ति सर्वप्रथम परिवार में समाधान–समृद्धि पूर्वक व्यवस्था में जीता है। ऐसे परिवार में नर–नारियों में समानता रहता है। इस प्रकार परिवार में सुख–शान्ति पूर्वक जीना बनता है। सभी परिवार ऐसे सुख–शान्ति पूर्वक जीने वाले होने पर "अखंड समाज" होता है। सभी परिवार समाधान–समृद्धि संपन्न होने पर अखंड–समाज का गठन होता है। उससे कम में अखंड–समाज होने वाला नहीं है। ऐसे समाज में हम अभय–संपन्न होते हैं। भय–मुक्त होते हैं। अभी इसके अभाव में कौन क्या कर देगा – यह आशंका बना ही रहता है। मनुष्य–जाति का सारा इतिहास इस बात की गवाही है। सभी बात आपके सम्मुख है।

अभय–संपन्न होने के बाद हम "सार्वभौम व्यवस्था" के पक्ष में जाते हैं। चारों अवस्थाओं का परस्पर संतुलन ही सार्वभौम–व्यवस्था है। इसमें नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीना प्रमाणित होता है। इन प्रमाणों के साथ मानव सुख, शान्ति, संतोष, आनंद पूर्वक जीने की स्थिति में आता है। सुख, शान्ति, संतोष, और आनंद जीवन सहज–अपेक्षा है।

समाधान, समृद्धि, अभय, और सह–अस्तित्व – ये चार घाट हैं।

व्यक्ति के स्तर पर समाधान।
परिवार के स्तर पर समाधान–समृद्धि।
समाज के स्तर पर समाधान–समृद्धि–अभय।
समग्र–व्यवस्था के स्तर पर समाधान–समृद्धि–अभय–सह–अस्तित्व।

समाधानित होने के लिए "अध्ययन" है। अध्ययन कराने का शुरुआत मैंने किया है।

"सार्वभौम व्यवस्था" हो जाने पर क्या होगा?

सार्वभौम–व्यवस्था में हम "सत्य" को प्रमाणित करते हैं। सह–अस्तित्व परम सत्य है। सह–अस्तित्व को हम व्यवस्था में प्रमाणित करते हैं। इस तरह मानव प्रकृति–सहज विधि से, अस्तित्व–सहज विधि से, सह–अस्तित्व सहज विधि से जीता है। इसको हर व्यक्ति सोच सकता है, समझ सकता है, जी सकता है, प्रमाणों को प्रस्तुत कर सकता है।

सार्वभौम–व्यवस्था में हम पाँच आयामों में बहुत अच्छी तरह जी पाते हैं। "सार्वभौम व्यवस्था" में मनुष्य के जीने के पाँच आयाम हैं : –

1. शिक्षा–संस्कार
2. न्याय–सुरक्षा
3. स्वास्थ्य–संयम
4. उत्पादन कार्य
5. विनिमय कोष

शिक्षा–संस्कार से मानव–परम्परा में "समाधान" उपलब्ध होगा।

इससे सबके लिए न्याय–सुलभता हो ही जायेगी। समझदार परिवार में संबंधों में न्याय होता ही है।

समझदारी के बाद न्याय कोई दुरूह नहीं है।
भ्रमित रहते तक न्याय महान–दुरूह है।

समझदारी के बाद – संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, और उभय–तृप्ति होने पर न्याय होता है।

"न्याय" का हम अध्ययन कराते हैं। जबकि इस धरती पर जितने भी सुप्रीम कोर्ट हैं – उनमें न्याय का अता–पता नहीं है। सभी देशों के संविधानों के तीन ही कायदे हैं – गलती को गलती से रोको, अपराध को अपराध से रोको,

युद्ध को युद्ध से रोको। इन तीन कायदों के रहते उनसे न्याय कहाँ मिलेगा? इन तीन कायदों के अलावा ये कोर्ट "जन–सुविधा" की बात करते हैं। सुविधा का कोई तृप्ति–बिन्दु ही नहीं है। सबके लिए सुविधा–संग्रह की चाहत को पूरा करने की सम्भावना ही नहीं है।

उससे पहले विगत में कहा गया था – "भक्ति–विरक्ति में कल्याण है।" भक्ति–विरक्ति सबको मिल नहीं सकती। भक्ति–विरक्ति "रहस्य" से शुरू होता है, "रहस्य" में ही अंत होता है। भक्ति–विरक्ति के रहस्य से पार अभी तक किसी एक व्यक्ति के वश का रोग नहीं हुआ। भक्ति–विरक्ति रहस्य से मुक्त हो जाए, शिक्षा में स्थापित हो जाए, आचरण में आ जाए, व्यवस्था में प्रभावित हो जाए – ऐसा आज तक हुआ नहीं। "भक्ति–विरक्ति से व्यवस्था होगा" – ऐसा हम "आस्था" के आधार पर अरमान करते रहे। आस्थाएं धीरे–धीरे शिथिल होता हुआ देखा जा रहा है। जब कभी भी शिक्षा की "समीक्षा–समिति" बनती है तब उसमें प्रधान रूप में कहा जाता है – "आस्था का हनन हो रहा है।" यह सब सुनने पर लगता है – लोगों के मन में कुछ तो आया है। किंतु इस स्थिति का समाधान पाना उनसे सम्भव नहीं हुआ है।

न्याय–अन्याय की बात मनुष्य–परस्परता में ही होती है। न्याय की अपेक्षा मानव–परस्परता में ही होती है। न्याय–सुलभता का आधार है – "संबंधों की पहचान"। संबंधों के नाम सबको विदित हैं। सभी भाषाओँ में संबंधों के नाम तो हैं। लेकिन संबंधों के प्रयोजनों का ज्ञान नहीं है। संबंधों के प्रयोजनों को निर्वाह करने का अधिकार बना नहीं है। जैसे – "माता", "पिता" नाम सुदूर विगत से भाषा में हैं। किंतु माता–पिता के साथ न्याय कैसे होगा, क्यों होगा, क्या प्रयोजन होगा – इसके बारे में कोई बात न शिक्षा में हैं, न व्यवस्था में है, न आचरण में है। अभी जितने भी समुदाय–परम्पराएं हैं – किसी में भी नहीं है। इसी कारण "अनुसंधान" करना पड़ा। अनुसंधान पूर्वक प्राप्त वस्तु को **विकल्पात्मक** स्वरूप में रखना पड़ा। उसको अभ्यास में लाने के लिए उपक्रम करना पड़ा।

उसी "उपक्रम" में यह सम्मलेन भी है। अपनी–अपनी जगह में हम सब शुभ के लिए कार्य कर रहे हैं। हम शुभ के लिए क्या कार्य किए, आप क्या कार्य किए – इसे सम्मलेन में परस्पर सुन कर हम उत्साहित होते हैं। अगले वर्ष पिछले वर्ष से ज्यादा शुभ के लिए कार्य करते हैं। इस ढंग से होते–होते हम यहाँ तक पहुंचे हैं।

यह जो इतनी बात आपको बताया, उसमें कुछ पूछना हो तो आपका स्वागत है। **(अध्याय:, पेज नंबर: 242–248)**

सबको धन्यवाद! शुभाशीष! प्रणाम! और नमन!

– श्रद्धेय श्री ए नागराज के उदबोधन पर आधारित (४ अक्टूबर २००९, हैदराबाद)
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/10/blog-post_23.html

- **विकल्पात्मक अनुसन्धान से प्राप्त ज्ञान का शिक्षा में समावेश – सम्मलेन २००९, हैदराबाद**

मेरे बंधुओं!

मैं स्वयं को आप सभी के बीच पा करके सुख का अनुभव कर रहा हूँ। बहुत दूर–दूर से आप आए हैं। बहुत ध्यान लगा कर एक दूसरे की बात समझ रहे हैं। कहीं न कहीं अन्तिम निष्कर्ष निकलेगा ही, ऐसा विश्वास करके मैं उत्सवित हूँ।

विकल्पात्मक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान शिक्षा में किस प्रकार पहुंचेगा? – उसको सुनने के लिए यहाँ इच्छा व्यक्त किया गया है। आप सब बहुत जिज्ञासा से इस बात को सुनना चाह रहे हैं, ऐसा मेरा स्वीकृति है।

मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह से परखा हूँ, किसी आयु के बाद हर व्यक्ति – चाहे नर हो या नारी हो – अपने आप को "समझदार" मानता ही है। अभी तक की सोच से कुछ ऐसा निकलता है – "पैसा पैदा कर सकने वाला समझदार है। पैसा पैदा नहीं कर सकने वाला समझदार नहीं है।" इसके पहले "बलशाली" को समझदार मानते रहे। उसके पहले "रूपवान" को समझदार मानते रहे। "बल" और "रूप" के आधार पर समझदारी को पहचानने की कोशिशों को आदमी नकार चुका है। लेकिन ज्यादा "धन"और "पद" अर्जन करने वाले को ज्यादा समझदार आज भी मानते रहे हैं। "धन" और "पद" एक दूसरे के पूरक हो गए। पद से धन, और धन से पद मिलने की बात हो गयी। रूप, बल, पद, और धन के आधार पर हम समझदारी को पहचान नहीं पायेंगे। यह हमारा निष्कर्ष निकला। मानव–चेतना पूर्वक जीना समझदारी है – यह निष्कर्ष निकला।

मानव–चेतना को मानव–परम्परा में लाने के लिए मैंने शिक्षा विधि को शोध किया। शिक्षाविदों को समझाने का कोशिश किया। वह कोशिश होते–होते आज छत्तीसगढ़ राज्य शिक्षा संस्थान इस प्रस्ताव को अध्ययन करने के लिए तैयार हो गया। वह बुद्धि, समय, और साधन लगा कर अध्ययन कर रहा है। यह आपको सूचना देना चाहा।

इस अध्ययन की क्या वस्तु है?

इस अनुसंधान के फलस्वरूप "मानव व्यवहार दर्शन" नामक पुस्तिका तैयार हुआ – जिसको "शोध–ग्रन्थ" भी कह सकते हैं। मानव–व्यव्हार–दर्शन में मानव–चेतना विधि से व्यव्हार का क्या स्वरूप होता है? न्याय का क्या स्वरूप होता है? इसका वर्णन है। उसको अध्ययन कराते हैं। "मानव व्यवहार दर्शन" में मानव के कर्तव्य और दायित्व को तय किया। मानव का कर्तव्य और दायित्व तय होना ज़रूरी है या नहीं है – इस पर आप ही निर्णय लीजिये। यह निर्णय लेना हर व्यक्ति का अधिकार है।

"मानव कर्म दर्शन" में मानव के करने–योग्य और न करने–योग्य कर्मो का विभाजन होता है। इसकी भी आवश्यकता या अनावश्यकता पर आप अच्छे से विचार कर सकते हैं। यदि यह हमारी आवश्यकता बनता है तो

उसके लिए हम तत्पर हो ही जाते हैं। जिसकी आवश्यकता हम स्वीकार नहीं करते, उसके लिए हम तत्पर नहीं हो पाते हैं।

"मानव अभ्यास दर्शन" में व्यवहार और व्यवसाय में अभ्यास कैसे करेंगे – इसका निर्धारण किया गया है।

"अनुभव दर्शन" में प्रमाणित होने के अधिकार को ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट किया गया है।
इन चारों भागों की आवश्यकता है या नहीं है – इसको सभी परिशीलन कर सकते हैं, समझ सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

दर्शन के बाद आता है – वाद। वाद में चारों अवस्थाओं के साथ कैसे हम जी पायेंगे – यह वर्णन किया है।

पहला – समाधानात्मक भौतिकवाद। भौतिक वस्तुएं कैसे समाधान के अर्थ में काम कर रहे हैं, इसका बोध कराते हैं।

दूसरा – व्यवहारात्मक जनवाद। मानव व्यव्हार में जागृति को कैसे प्रमाणित करता है, इसका बोध कराते हैं। मानव का व्यवहार मानव के साथ न्याय, धर्म, और सत्य पूर्वक होता है। मानव का व्यव्हार मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक होता है। इसको स्पष्ट किया है।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद में – अध्यात्म (व्यापक) में समाई सम्पूर्ण जड़–चैतन्य प्रकृति का हमको अनुभव होता है। फलस्वरूप मानव सह–अस्तित्व में सह–अस्तित्व को प्रमाणित करने वाला हो जाता है। पदार्थ न हो, केवल व्यापक वस्तु हो – उसका कोई अनुभव नहीं है। केवल पदार्थ हो, व्यापक न हो – तब भी मानव के अनुभव करने का कोई रास्ता नहीं है।

अनुभव के लिए प्रकृति और व्यापक वस्तु साथ–साथ में होना आवश्यक है। ज्ञान–अवस्था की प्रकृति ही व्यापक वस्तु को अनुभव करता है। फलस्वरूप परम–सत्य को प्रमाणित करता है। इसीको मैंने अनुभव किया है। उसी अनुभव के आधार पर ही पूरे बात को प्रस्तुत किया है।

उसके बाद आते हैं – "शास्त्र"। शास्त्र में पहला है – मानव संचेत्नावादी मनोविज्ञान। "चेतना" का मतलब है – ज्ञान। "संचेतना" का मतलब है – सत्य को प्रकट करने वाला ज्ञान। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान में मानवीयता पूर्वक प्रमाणित होने वाले १२२ आचरणों को बताया गया है। इन आचरणों के आधार पर मानव व्यवस्था में जी पाता है।

व्यवहारवादी समाजशास्त्र में मानव–संचेतना के व्यवहार में प्रमाणित होने की बात है।

आवर्तनशील अर्थशास्त्र में उत्पादन के लिए नियोजित होने वाले प्राकृतिक–ऐश्वर्य के स्त्रोत को बनाए रखते हुए उत्पादन और विनिमय व्यवस्था के स्वरूप को बताया गया है।

इन सब की आवश्यकता है या नहीं – इसको आप शोध कर सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, नकार भी सकते हैं। जो आपकी "इच्छा" हो – आप वही करिए। आप यही स्वीकारो – ऐसा मेरा कोई "आग्रह" नहीं है। किंतु है ऐसा ही**!** – ऐसा बताने की "धृष्ठता" कर रहे हैं। या "साहस" कर रहे हैं। या "अनुग्रह" कर रहे हैं। इन तीन में से जो आप स्वीकारें – वही ठीक है।

इस ढंग से दर्शन, वाद, और शास्त्र का प्रयोजन स्पष्ट हुआ। अभी तक हमारे साथ जितने भी लोग अध्ययन किए हैं – इसकी अत्यन्त आवश्यकता है, ऐसा मान कर स्वीकारे हैं। आगे यहाँ कैसे होगा, और जगहों पर कैसे होगा, धरती पर और राज्यों पर कैसा होगा – इसको आगे भविष्य बतायेगा। अभी छत्तीसगढ़ राज्य में जो स्वीकृति बनी है, वहाँ कहने लगे हैं – "इस प्रस्ताव को समझे बिना कोई आदमी के स्वरूप में जी नहीं सकता।" इसको लेकर यहाँ भी प्रयोग हो सकता है। और जगह में भी प्रयोग हो सकता है।

मानव–संचेतना पूर्वक मानव मानव के साथ न्याय–धर्म–सत्य पूर्वक प्रकट होता है और मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ नियम–नियंत्रण–संतुलन पूर्वक प्रकट होता है। नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, और सत्य – इन ६ भागों में हर समझदार व्यक्ति प्रकट होता है। इसमें कोई "झगडा" करने की जगह है या नहीं – इसको हर व्यक्ति शोध कर सकता है, हर व्यक्ति समझ सकता है, हर व्यक्ति जी सकता है, हर व्यक्ति प्रमाणित हो सकता है। यह ऐसा "इच्छा" होने पर ही सम्भव है। जीव–चेतना में ही जिसके जीने की इच्छा हो – तो वह इस बात पर ध्यान भी नहीं देगा, इसको करेगा भी नहीं। "इच्छा" हो तो – हर व्यक्ति इस प्रस्ताव को समझ कर, जी कर प्रमाणित कर सकते हैं। "इच्छा" हो तो – आप इसको देख सकते हैं, अध्ययन कर सकते हैं। मेरी स्वीकृति है – यहाँ हम जितने भी लोग हैं, वे समझने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं, समझा हुआ को प्रकट करने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं।

इस प्रकार दर्शन, विचार, और शास्त्र जो तैयार हुए उसको शिक्षा में देने का स्वरूप दिया – "चेतना विकास – मूल्य शिक्षा"।

दर्शन, विचार, शास्त्र के साथ "मानवीय आचार संहिता स्वरूपी संविधान" लिख कर दिया। "मानवीयता पूर्ण आचरण" के स्वरूप के आधार पर यह संविधान लिखा। उसको भी आप लोग देख सकते हैं।

शिक्षा में इस **विकल्पात्मक** प्रस्ताव के "अध्ययन" की बात रहेगी।

अध्ययन का मतलब है – अधिष्ठान के साक्षी में, अर्थात अनुभव के साक्षी में स्मरण पूर्वक हम जो कुछ भी क्रिया करते हैं – वह सब का सब अध्ययन है।

अनुभव कहाँ रहता है? अध्ययन कराने वाले के पास रहता है। अध्ययन कराने वाले के अनुभव की रोशनी में हम जो कुछ भी सोचते हैं, समझते हैं, स्वीकारते हैं – वह सब का सब अध्ययन है।

अध्ययन कैसे कराते हैं?

यहाँ जितने भी लोग बैठे हैं, सभी को "पठन" करना आता है – ऐसा मैं मानता हूँ। पठन भर करने से काम नहीं चलता है। अध्ययन करना ज़रूरी है। अध्ययन के लिए प्रस्तावित किया है – हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। अस्तित्व में वस्तु को हम समझ लेते हैं, तो हमने अध्ययन किया। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किया। यदि वस्तु का साक्षात्कार नहीं हुआ – मतलब हमने अध्ययन नहीं किया। यह बात स्पष्ट हुआ। इस प्रकार हमने अध्ययन किया या नहीं किया – उसको हर दिन हम सोच सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

यह कैसे होता है? कहाँ पर होता है? इसका उत्तर है – यह कल्पनाशीलता से होता है। हर व्यक्ति में – बच्चे से बूढ़े में कल्पनाशीलता समाई है। कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता के योगफल में "तदाकार–तद्रूप विधि" आती है। तदाकार–तद्रूप विधि से मनुष्य द्वारा अस्तित्व में वस्तु को पहचानना बनता है। तदाकार विधि से मनुष्य में वस्तु की पहचान होती है। तद्रूप विधि से मनुष्य प्रमाणित होता है। तद्रूप विधि से प्रमाण आत्मा (गठन–पूर्ण परमाणु का मध्यांश) में अनुभव होने के बाद है। इस विधि से अध्ययन कराते हैं।

यह अध्ययन हर मानव–संतान को स्वीकार होता है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग बिजनौर में हुआ। वहाँ पाया – यह बात मानव–संतान को स्वीकार होता है। वहाँ अभिभावकों से हमने पूछा – "आप क्या चाहते हो, आपके बच्चे समझदार बन कर समझदारी पूर्वक जियें या नौकरी करें?" उसके उत्तर में ९०% अभिभावक कहे – "नौकरी करना चाहिए!" १०% लोग कहे – "नौकरी भी करना चाहिए, समझना भी चाहिए।"

उसके बाद अभी छत्तीसगढ़ में राज्य–शिक्षा के अधिकारियों और अध्यापकों के साथ हम एक कार्य–गोष्ठी किए। उस कार्य–गोष्ठी का मूल मुद्दा था – "वेतन–भोगी क्या वास्तविक रूप में प्रमाणित हो सकता है या नहीं?" इसका उत्तर मैंने दिया – वेतन–भोगी "प्रमाण" नहीं हो सकता। वेतन–भोगी दूसरा वेतन–भोगी को ही तैयार करेगा – दूसरा कुछ भी नहीं करेगा। प्रमाणित व्यक्ति ही प्रमाणित–व्यक्ति को तैयार करेगा। वेतन–भोगी "प्रेरक" हो सकता है। उस आधार पर वे लगभग १०० अध्यापक–गण वहाँ अध्ययन कर रहे हैं। उनको अध्ययन करते हुए २ महीना हो चुका है, तीसरा महीना पूरा होने वाला है। उनको अध्ययन कराने वाले दो व्यक्ति यहाँ इस सभा में ही बैठे हुए हैं।

मध्यस्थ–दर्शन के वांग्मय के मूल–प्रबंधों (दर्शन, वाद, शास्त्र) को स्नातक–कक्षा में पढाने का सोचा जा रहा है। उसके पहले दसवीं कक्षा तक पाठ्य–पुस्तकों को तैयार किया जा रहा है। कक्षा–१ से कक्षा–५ तक की पाठ्य–पुस्तकों को तैयार करके राज्य–शिक्षा को दे दिया है – जिसको वे छपवाने के काम में लगे हैं। अगले वर्ष तक वह

प्रभाव–शील हो जायेगी। इस ढंग से इस प्रस्ताव को शिक्षा में समावेश करने की एक प्रक्रिया चल रही है, अध्ययन चल रहा है, कार्य चल रहा है, प्रयत्न चल रहा है।

यह तो बच्चों तक इस बात को पहुंचाने की बात थी। अब सवाल आता है – बड़े–बुजुर्गों का क्या करोगे? उनको भी तो इस शिक्षा की जरूरत है। उसका उत्तर है – "लोक शिक्षा"। इस पूरी बात को "लोक–शिक्षा" विधि से हम बड़े–बुजुर्गों को विदित करायेंगे। विदित कराने का कार्यक्रम अभी शुरू नहीं किए हैं। वह एक आवश्यकता है।

अभी जितना बात आपको बताया, उसमें कोई शंका हो – तो आप मुझसे पूछ सकते हैं। मध्यस्थ–दर्शन को शिक्षा के स्वरूप में प्रस्तुत करने की विधि के बारे में जो कुछ भी मैंने बताया – उसको लेकर कुछ भी शंका हो तो आप मुझसे पूछ सकते हैं।

प्रश्न: इस ज्ञान के अर्थ में शिक्षा कब तक सम्भव हो पायेगी?

उत्तर: समझने पर सम्भव हो पायेगी। ज्ञान के आधार पर हमको जीना है या नहीं जीना है – उसको तय करिए। जीव–चेतना में समस्या पूर्वक जीना होता है। मानव–चेतना में समाधान–पूर्वक जीना होता है। आपको कैसे जीना है? – आप सोचिये। जीव–चेतना में समस्या के अलावा कुछ होता नहीं। मानव–चेतना में समाधान के अलावा कुछ होता नहीं। जो करना है, वही करिए।

धरती का बीमार होना मानव की करतूत से हुआ या और कोई भूत किया? इसको भी सोचिये। यदि आपको यह स्वीकार होता है यह मानव ने किया – तो आप यह भी स्वीकार सकते हैं कि मानव ने जीव–चेतना वश यह अपराध किया। इस बात को स्वीकारना या नहीं स्वीकारना आपके हाथ में है। इसमें मेरा कोई "आग्रह" नहीं है। जैसा आपका विचार हो – वैसा ही करिए।

"कब तक, कितनी देर में समझेंगे" वाली बात के उत्तर में – यह सब सकल कुकर्म करने में जिसमें धरती को बरबाद किया, उसमें इतना दिन लगा है। अब इस प्रस्ताव को पूरी शिक्षा में समावेश होने में भी कुछ समय तो लगेगा।

प्रश्न: "अध्ययन" और "अध्यापन" को समझाइये।

उत्तर: अध्ययन और अध्यापन संयुक्त रूप में होता है। अध्ययन करने वाले और अध्यापन कराने वाले के योग में अध्ययन होता है। (अध्यापक के) अनुभव की रोशनी में विद्यार्थी जितनी भी समझने की प्रक्रिया करते हैं – उसका नाम है "अध्ययन"। उसके समर्थन में बताया – हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किए।

अध्ययन "तदाकार–विधि" से होता है। तदाकार कैसे होता है? हर व्यक्ति के पास कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता स्वत्व के रूप में रखा है। आज पैदा होने वाले बच्चे में भी, कल मरने वाले वृद्ध में भी। कल्पनाशीलता के प्रयोग से तदाकार होता है। चाहे जीव–चेतना में चोरी–डकैती का काम सिखाना हो – वह भी तदाकार विधि से सम्भव होता है। मानव–चेतना का न्याय–धर्म–सत्य समझाना हो – वह भी तदाकार–विधि से सम्भव होता है।

प्रश्नः अध्यापक में क्या योग्यताएं आवश्यक हैं?

उत्तरः अध्यापक समझा हुआ और समझदारी को प्रमाणित किया हुआ व्यक्ति होता है। समझदारी को मानव चेतना विधि से प्रमाणित करता है। ऐसा व्यक्ति हर मानव संतान को स्वीकार होता है। समझदारी से कम में कोई "अध्यापक" होता नहीं है। उससे पहले होता है वही समस्या पैदा करने वाला। जीव चेतना में जीने वाला अध्यापक समस्या के लिए ही आधार बनेगा, दूसरा कुछ भी नहीं। मानव चेतना में जीने वाला अध्यापक समाधान का ही आधार बनेगा, दूसरा कुछ भी नहीं। जो आपकी इच्छा हो वही करिए।

प्रश्नः अध्यापक की भौतिक रासायनिक आवश्यकताएं कैसे पूरी होंगी?

उत्तरः समाधान पूर्वक जीने के क्रम में "समृद्धि" का उपाय निकलता है। मैं एक सामान्य परिवार का आदमी हूँ। मैं जब समाधान पा गया तो मुझसे समृद्धि का उपाय निकल गया। कृषि करता हूँ, गो पालन करता हूँ, आयुर्वेद को मैं जानता हूँ, सामान्य औषधियों को पहचानता हूँ उसके आधार पर चिकित्सा करता हूँ। इन तीन कामों को मैं करता हूँ। इनके चलते मेरा कोई काम रुका नहीं है। मैं हर जगह अपने हाथ पैरों से पहुँचता हूँ। मैं पराधीन नहीं हूँ। भौतिक वस्तुओं के प्रयोजन को मैं इस तरह पहचाना हूँ परिवार में जितने भी लोग रहते हैं, उनके शरीरों का पोषण और संरक्षण (घर–बार) और उसके साथ 'समाज गति' में भागीदारी करने के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है। समझदारी पूर्वक इस आवश्यकता का निश्चयन होता है। उस "निश्चित आवश्यकता" से अधिक उत्पादन कर लेने से मैं समृद्धि का अनुभव करता हूँ।

अभी पैसा इकट्ठा करके आदमी क्या करता है, आप सब लोग वह जानते ही हैं। कुल मिला कर "भोग" और "संघर्ष" के लिए पैसा इकट्ठा करता है। "स्वस्थ रहना चाहिए" इस बात को अभी के समय में कहा जाता है। स्वस्थ क्यों रहना है? इसका उत्तर तलाशने जाते हैं तो वही है "भोग" के लिए स्वस्थ रहना है, या "संघर्ष" के लिए स्वस्थ रहना है। भोग और संघर्ष के लिए "पैसा इकट्ठा करना" और "स्वस्थ रहना" सही है या "शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के लिए श्रम पूर्वक उत्पादन करना" और "समाधानित रहना" सही है? आप ही सोचिये! आप सोच कर अपने आप निर्णय लीजिये।

प्रश्नः समझदारी को प्रमाणित कौन करेगा? समाज या व्यक्ति?

उत्तरः समझदारी के बाद हर व्यक्ति परिवार के रूप में "संस्कृति" और "सभ्यता" को वहन करता है; तथा सभा के रूप में "विधि" और "व्यवस्था" को वहन करता है। उसी के आधार पर "परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था" का प्रगटन है। "समझदार परिवार" मानवीय सभ्यता और संस्कृति का वहन करता है। "समझदार परिवार सभा" मानवीय विधि और व्यवस्था का वहन करता है। परिवार ही पूरा प्रमाण का आधार है। परिवार में प्रमाणित होने के बाद ही हम संसार में प्रमाणित होते हैं। इस तरह प्रमाणित होना हर समझदार व्यक्ति का माद्दा ह, अधिकार है, प्रवृत्ति है।

प्रश्नः अभी इतनी गरीबी, सामाजिक असंतुलन के बीच खड़ा आदमी "स्वावलंबन" के बारे में कैसे काम करे?

उत्तरः आपकी बात को स्वीकारा जा सकता है। यह स्थिति व्यक्ति के साथ कब तक रहेगा? इसका उत्तर है जब तक समझदार नहीं बनेगा, तब तक रहेगा। समझदार होने के बाद स्वावलंबी होने के लिए अपने आप जगह बनता है।मैंने आपको अपना उदाहरण बताया था। मैं कोई बहुत धनाढ्य व्यक्ति नहीं हूँ। भक्ति विरक्ति विधि से मैंने साधना किया। भक्ति विरक्ति में कोई संग्रह होता नहीं है। समाधान संपन्न होने के बाद मैंने तीन उपायों (कृषि, गौ पालन और आयुर्वेद चिकित्सा) को समृद्धि के लिए अपनाया। इन तीन के अलावा तीस और उपाय मेरे पास हैं, जिनको मैं क्रियान्वयन कर सकता हूँ। समाधान के बाद समृद्धि संपन्न होने का उपाय निकाल लेना हर व्यक्ति के माद्दे की बात है। बिना "समझ" के किसी के पास न साधन अनुकूल होता है, न परिस्थितियाँ। समझ या समाधान के बाद सारी परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, जितना साधन होता है वह आवश्यकता से अधिक होता है। श्रमशीलता हमारा प्रधान साधन है। अभी पैसे को "प्रधान साधन" मान रहे हैं। उसके स्थान पर यहाँ कह रहे हैं हमारी श्रमशीलता ही हमारा प्रधान साधन है। श्रम शीलता सबके पास है।

एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो श्रमशीलता से रिक्त हो। गूँगे, लूले, लंगड़े सभी के पास श्रमशीलता रहता है।

देखिये "बातें करने" से कुछ नहीं होता। "जीने" से होता है। बातें हम बहुत ज्यादा कर सकते हैं उससे कोई फायदा नहीं है। "जीने" से फायदा है। "जीना" समाधान के बिना होता नहीं! समाधान के बिना कोई "जी" ही नहीं सकता! यह मैंने देख लिया। अपराध कोई "जीना" नहीं है। अनर्थ कोई "जीना" नहीं है। झूठ बोलना कोई "जीना" नहीं है। समाधान पूर्वक "जीना" है। समृद्धि पूर्वक "जीना" है।

न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक "जीना" है।

नियम नियंत्रण, संतुलन, पूर्वक "जीना" है।

ऐसे जीने के लिए समझना ही पड़ेगा। मैंने समझने में 25–30 वर्ष लगाए। आप इसको समझने के लिए 25 हफ्ते तो

लगाइए! 25 महीने तो लगाइए! 25 महीना तो आप लगा सकते हैं न? यदि लगायेंगे तो आप समझ जायेंगे। समझाने की व्यवस्था हमने कर दिया है।

प्रश्नः "मोक्ष" क्या है?

उत्तरः भ्रम मुक्ति ही मोक्ष है। भ्रम मूलतः शरीर को जीवन मानना है। शरीर को जीवन मानने वाला जीवन ही है। जीवन ही जीवंत शरीर में होने वाली संवेदनाओं के आधार पर ऐसा मान बैठता है। फलस्वरूप दुःख भोगता है। शरीर को जीवन मान लेना ही "भ्रम" है। भ्रम से मुक्त होना ही "मोक्ष" है। भ्रम मुक्ति = अतिव्याप्ति, अनाव्यप्ति, अव्याप्ति दोषों से मुक्त होना।

सबको धन्यवाद! शुभाशीष! प्रणाम! और नमन!

(अध्याय:, पेज नंबर:256–266)

– बाबा श्री ए नागराज के उदबोधन पर आधारित (२ अक्टूबर २००९, हैदराबाद)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/10/blog-post_2746.html

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- विकल्प की पृष्ठभूमि

मेरे बंधुओं!

सबको नमन, प्रणाम, आर्शीवाद देते हुए मैं आपसे अनुरोध करना चाह रहा हूँ – यह अनुसंधान क्यों और कैसे हुआ? उसके पहले मुझे यह भी बताने को कहा गया है – यथास्थिति से मुझे क्या परेशानी थी? मैं मानता हूँ, यहाँ पर जितने भी बंधू–जन उपस्थित हैं, वे ध्यान से सुनेंगे, और फ़िर अपने विचार व्यक्त करेंगे।

यथास्थिति यह है – "हम इस धरती पर जो आदमी–जात हैं, वे ज्ञानी, विज्ञानी, अथवा अज्ञानी में गण्य हैं।" यह मेरा कथन आप लोगों को कितना अनुकूल है, या प्रतिकूल है – यह आप आगे बताएँगे। हम ज्ञानी, विज्ञानी, और अज्ञानी मिल कर इस धरती पर जो कुछ भी किए – उसके फलन में पहले वन–सम्पदा समाप्त हो गयी, दूसरे – खनिज–सम्पदा समाप्त हो गयी। इन दोनों के समाप्त होने से यह धरती रहने योग्य नहीं बची – ऐसा विज्ञानी लोग कह रहे हैं। ये सब बात हम लोग सुनते ही हैं। इस पर आगे सोचने पर स्वयं–स्फूर्त रूप में यह बात आती है – हमने जो कुछ भी किए उससे यह धरती रहने–योग्य नहीं बची, अब यह रहने–योग्य बने उसके लिए भी कुछ सोचें!

धरती पर मनुष्य रहने योग्य कैसे बने – उसके लिए मैं अनुसंधान किया हूँ। मेरे अनुसंधान का उद्देश्य इतना ही है। इस अनुसंधान पूर्वक मैंने जो पाया, उसको स्पष्ट करने का कोशिश किया है। यह स्पष्ट हुआ या नहीं हुआ – यह आप ही लोग शोध करके बताएँगे। हर व्यक्ति को शोध करने का अधिकार है, समझने का अधिकार है, उस पर अपने विचारों को व्यक्त करने का अधिकार है। आज पैदा हुए बच्चे में यह अधिकार है, कल मरने वाले वृद्ध में भी यह अधिकार है।

प्रकारांतर से चलते हुए वर्तमान में हम मानव–जाति अपराध में फंस गए हैं। इससे पहले हमारे बुजुर्गों ने वेद–विचार में लिख कर दिया है – "भक्ति–विरक्ति में कल्याण है।" भौतिकवाद जब आया तो पहले से ही प्रलोभन से ग्रसित मनुष्य–जात "सुविधा–संग्रह" में फंस गया। सुविधा–संग्रह के चलते इस धरती से वन और खनिज दोनों समाप्त होते गए। वन और खनिज समाप्त होने से ऋतु–संतुलन प्रतिकूल होता गया। और धीरे–धीरे धरती बीमार हो गयी।

विज्ञानी यह बता रहे हैं – धरती का तापमान कुछ अंश और बढ़ जाने पर इस धरती पर आदमी रहेगा नहीं। सन १९५० से पहले यही विज्ञानी बताते रहे – यह धरती ठंडा हो रहा है। सन १९५० के बाद बताना शुरू किए – यह धरती गर्म हो रहा है। यह कैसे हो गया? इसका शोध करने पर पता चला – इस धरती पर सब देश मिल कर २००० से ३००० बार nuclear tests किए हैं। ये test इस धरती पर ही हुए हैं। इन tests से जो ऊष्मा जनित होते है – उसको नापा जाता है। यह जो ऊष्मा जनित हुआ, वह धरती में ही समाया या कहीं उड़ गया? यह पूछने पर पता चलता है – यह ऊष्मा धरती में ही समाया – जिससे धरती का ताप बढ़ गया। धरती को बुखार हो गया है। अब और कितना ताप बढेगा उसका प्रतीक्षा करने में विज्ञानी लगे हैं। इसके साथ एक और विपदा हुआ – प्रदूषण का छा जाना। ईंधन–अवशेष से प्रदूषण हुआ। इन दोनों विपदाओं से धरती पर मनुष्य रहेगा या नहीं – इस पर प्रश्न–चिन्ह लग गया है।

धरती को मनुष्य ने अपने न रहने योग्य बना दिया। मनुष्य को धरती पर रहने योग्य बनाने के लिए यह अनुसंधान है।

"न्याय पूर्वक जीने" की प्रवृत्ति मनुष्य में कैसे स्थापित हो – उसको मैंने अनुसंधान किया है। न्याय पूर्वक जीने में मैं स्वयं प्रवृत्त हूँ। न्याय किसके साथ होना है? मनुष्य के साथ होना है, और मनुष्येत्तर–प्रकृति के साथ होना है। इसके बारे में हम थोड़ा यहाँ बात–चीत करेंगे।

मैं स्वयं एक वेद–मूर्ति परिवार से हूँ। मेरे शरीर का आयु इस समय ९० वर्ष है। इन ९० वर्ष में से पहले ३० वर्ष मैंने अपने घर–परिवार की परम्परा के अनुसार ही काम किया। ३० वर्ष के बाद के ६० वर्ष मैं इस अनुसंधान को करने और उससे प्राप्त फल को मानव–जाति को अर्पित करने में लगाया हूँ।

यह अनुसंधान कैसे किया? – यह बात आती है। हमारे शास्त्रों में लिखा है – अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र स्थान है। उस पर विश्वास करते हुए, अमरकंटक को अनुकूल स्थान मानते हुए, मैं १९५० में अमरकंटक पहुँचा। अमरकंटक में मैंने साधना किया, और समाधि को देखा। समाधि को देखने पर पता चला – समाधि में कोई ज्ञान नहीं होता। समाधि में मैंने अपनी आशा, विचार, और इच्छा को चुप होते हुए देखा। एक–दो वर्ष तक मैंने समाधि की स्थिति को देखा – पर समाधि में ज्ञान नहीं हुआ।

उसके बाद समाधि का मूल्यांकन करने के क्रम में मैंने संयम किया – जिससे प्रकृति की हर वस्तु मेरे अध्ययन में आयी। अस्तित्व स्वयं सह–अस्तित्व स्वरूप में है – यह बात मुझको बोध हुआ, ज्ञान हुआ, उसको जी कर के प्रमाणित करने की अर्हता आयी। ऐसे ज्ञान को जी कर के प्रमाणित करने में परस्परता में विश्वास होता है। जीने में ही विश्वास होता है, बस कहने मात्र से विश्वास नहीं होता। ऐसा मैंने स्वीकार किया। इस प्रकार जीते हुए लोगों तक इस बात को कैसे पहुंचाया जाए? इस पर सोचने पर शिक्षा–विधि द्वारा इसे प्रवाहित करने के उद्देश्य से वांग्मय तैयार किया।

अनुसंधान पूर्वक क्या उपलब्धि हुई? अनुसंधान की उपलब्धि है – समाधान। सभी आयामों, कोणों, परिपेक्ष्यों के लिए समाधान उपलब्ध हुआ। अनुसंधान पूर्वक मेरा स्वयं का अच्छी तरह समाधान–पूर्वक जीना बन गया। समाधान को जब प्रकाशित करने लगे तो लोगों को लगने लगा – हमको भी चाहिए, हमको भी चाहिए... ऐसा होते–होते हम यहाँ तक पहुंचे हैं।

समाधान के साथ यदि "समृद्धि" नहीं है तो हम प्रमाणित नहीं हो सकते – यह भी बात आया। समृद्धि का प्रयोजन है – शरीर पोषण, संरक्षण, और समाज–गति। सम्पूर्ण भौतिक–वस्तुओं का मानवीयता पूर्वक नियोजन इन्ही तीन स्थितियों में है। विज्ञानं द्वारा हम दूर–श्रवण, दूर–दर्शन, दूर–गमन संबन्धी वस्तुओं को जो हम पाये – उनसे अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति दोष हो गया। जिस के पास नहीं है – उसके पास नहीं ही रहा। जिसके पास है – उसके पास बहुत ज्यादा हो गया। इसके रहते उत्पादन–कार्य का नियंत्रण नहीं रहा। उत्पादन अनियंत्रित होने के फलन में धरती बीमार हो गयी। आदमी के बने रहने पर प्रश्न–चिन्ह लग गया। धरती बीमार हो गयी तो आदमी कहाँ रहेगा? आगे पीढी कहाँ रहेगा? यह भी सोचने का मुद्दा है। केवल आदमी को ही अपराध–मुक्त होने की आवश्यकता है। अपराध–मुक्त होने के लिए आदमी को सह–अस्तित्व में जीने की आवश्यकता है। आदमी को तीनो अवस्थाओं के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक जीने की आवश्यकता है।

स्वयं में जो बोध हुआ, अनुभव हुआ – उसको जीने के क्रम में हम दूसरों को बोध कराते हैं। इसका हमने काफी अभ्यास किया – जिसके फलस्वरूप देश में दूर–दूर तक एक आवाज सुनाने योग्य तो हुए। इस बात की आवाज तो सुनने में आया है – इसमें तो कोई दो राय नहीं है। इसके बाद कुछ लोगों में इसको अध्ययन करने की इच्छा भी हुई है। अभी इस प्रस्ताव के अध्ययन में लगे ज्यादा से ज्यादा लोग रायपुर में हैं। छत्तीसगढ़ राज्य–शिक्षा के तीनो विभाग – व्यवस्था, प्रशिक्षण, और शोध – ये तीनो मिल कर अध्ययन कर रहे हैं। करीब १०० लोग अध्ययन कर रहे हैं। हर आदमी स्वयं को प्रमाणित करने का अधिकार रखता है। हर बच्चे, बड़े, बुजुर्ग – स्वयं को प्रमाणित करने के अधिकार से संपन्न हैं। यह स्वीकारते हुए इस प्रस्ताव की शिक्षा–पद्वति को हमने नाम दिया – "चेतना–विकास – मूल्य–शिक्षा"। "चेतना–विकास – मूल्य–शिक्षा" के लिए ये लोग अध्ययन कर रहे हैं, और स्वयं को प्रमाणित करने के लिए कटि–बद्ध हैं। यहाँ हैदराबाद में भी काफी विद्वान ऐसा सोचते होंगे। इन सबको ध्यान में रखते हुए इस प्रस्ताव की उपयोगिता हमको समझ आता गया। जैसे–जैसे उपयोगिता समझ आता गया – हमारा उत्साह भी बढ़ता गया! उत्साह बढ़ता गया तो मेरा स्वस्थ रहना भी बन गया। जल्दी शरीर त्यागने की आवश्यकता नहीं है, कुछ दिन और देख लें इसका क्या फल–परिणाम होता है। इस तरह ९० वर्ष व्यय्तीत हुए हैं। जब तक साँस चलती है, इस प्रस्ताव का क्या प्रयोजन सिद्ध होता है – यह देखा जा सकता है। आगे आप सब प्रयोजनों को देखने के लिए उम्मीदवार हो ही सकते हैं, प्रयत्नशील हो सकते हैं, प्रयोजनों को प्रमाणित कर सकते हैं।

इस अनुसंधान को करने में (समाधि–संयम में) हमने २५ वर्ष लगाए। अनुसंधान की उपलब्धि के अनुरूप अपने जीने के तौर–तरीके को बनाने में १० वर्ष लगाए। उसके बाद संसार को इस प्रस्ताव की ज़रूरत है या नहीं – इसका सर्वेक्षण करने में १० वर्ष लगाए। संसार को इस प्रस्ताव की ज़रूरत है – यह निर्णय होने पर सन २००० से इसको लोगों तक पहुँचाना शुरू किए। सन २००० से अभी तक कितना काम हुआ है – यह अभी आप इस सम्मलेन में देख ही रहे हैं।

मेरे अनुसंधान की उपयोगिता समझ आने पर मेरी आवाज में भी थोड़ा बल आया। इससे यह कहना बना – "अपराधों से सहमत हो कर हम इस धरती पर ज्यादा दिन रह नहीं पायेंगे।" दूसरी बात – "समझदारी से समाधान–संपन्न हो कर हम इस धरती पर चिरकाल तक रह सकते हैं।"

समझदारी के लिए अध्ययन के स्वरूप को हमने शिक्षा–विधि से प्रस्तुत किया है। इस प्रस्ताव के लोकव्यापीकरण में संलग्न विभूतियों का यह सोचना है – "जीवन–विद्या से शुरू किया जाए – और अध्ययन में प्रवृत्ति पैदा किया जाए।" जीवन–विद्या की भनक तो देश के सभी प्रान्तों में करीब–करीब पहुँच गया है। इस सम्मलेन में यह पता चलता है – किस प्रांत में कितनी भनक पडी। इस बात को हम दूर–दूर तक पहुंचाने के योग्य हुए। लोगों तक पहुंचाने के क्रम में हममें संतुष्टि बनी हुई है। इस संतुष्टि को व्यक्त करने के क्रम में यह सम्मलेन है। सम्मलेन में परस्पर–चर्चा से पता चलता है – संसार में इस अनुसंधान की ज़रूरत है, समझदारी की ज़रूरत है, समाधान की ज़रूरत है, समृद्धि की ज़रूरत है।

अब हम इस अनुसन्धान के प्रयोजन की बात करेंगे।

हर मनुष्य के पास कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता पूंजी के रूप में है। हर बच्चे के पास है, हर बड़े के पास है, हर बुड्ढे के पास है – उसका वह प्रयोग कर सकता है। कल्पनाशीलता के आधार पर कर्म–स्वतंत्रता का प्रयोग मनुष्य ने आज तक किया है। इस कमरे का छत जो बना है – वह कल्पनाशीलता के आधार पर बना है। जहाँ हम बैठे हैं – वह

स्थान कल्पनाशीलता के आधार पर बना है। जो गाडी में हम घुमते हैं, हवाई–जहाज से आकाश में घूमते हैं – वह कल्पनाशीलता के आधार पर बना है। कल्पनाशीलता के आधार पर ही हम "सुविधा–संग्रह" को अपनाए हैं। हर मनुष्य पास यह कल्पनाशीलता कर्म–स्वतंत्रता उपलब्ध है। जीवन और शरीर के योगफल में कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता प्रकट होती है। मरे हुए आदमी में यह प्रकट नहीं होती है। जीवन हो पर शरीर न हो – तब भी यह प्रकट नहीं होगी। शरीर हो पर जीवन न हो – तब भी यह प्रकट नहीं होगी।

कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता कैसे आ गया? "सह–अस्तित्व नित्य प्रकटन–शील है" – इस सिद्धांत पर यह आधारित है। सह–अस्तित्व नित्य प्रकटन–शील होने से अपने प्रतिरूप को मानव–स्वरूप में प्रस्तुत कर दिया। धरती पर प्रकट होने के बाद मानव अपराधी हो गया। मुख्य बात इतना ही है। चोट की बात इतना ही है। इस चोट की बात को ध्यान में लाने पर हम अच्छी तरह से समझ सकते हैं – मानव–जाति का अपराध–मुक्त होना नितांत आवश्यक है।

यह बात बच्चे भी समझ सकते हैं, बड़े भी समझ सकते हैं। बिजनौर में एक स्कूल में इस बात को लेकर हमने एक प्रयोग किया – जिससे बच्चों में जो गुण प्रकट हुए, उससे बड़े–बुजुर्ग भी अपनी आदतों को सुधारने लगे। बच्चों के मुखरण से वहाँ के आगंतुक भी बहुत विस्मित हुए। वह स्कूल आगे चल नहीं पाया – क्योंकि जिस व्यक्ति ने जमीन दी थी, उसने वापिस ले ली। उसके बाद अछोटी के पास गाँव के स्कूल में प्रयोग किया तो वैसे ही विद्यार्थियों में मुखरण हुआ। वह मुखरण छत्तीसगढ़ शासन की दृष्टि में आ गया। यह शासन के ध्यान–आकर्षण होने का आधार बन गया। जिसके फलस्वरूप ३०००–४००० अध्यापकों के लिए ३ दिन का गोष्ठी हुआ। यह घटना आप के दृष्टिकोण के लिए ध्यान में ला सकते हैं। इतना दूर तो हम आ चुके हैं। पर आगे इसकी सम्भावना बहुत लम्बी–चौड़ी हैं।

"हर मानव सुधर सकता है." – यह इस बात से पहली सम्भावना है। हर मानव सुधर कर अपने सुधार को प्रमाणित कर सकता है। इस सम्भावना के विस्तार को क्या नापा जा सकता है? हर मनुष्य के सुधरने पर क्या होगा? जैसे हर गाय अपने वंश के अनुसार गायत्व के साथ व्यवस्था में जीता है... जैसे हर वृक्ष अपने बीज के अनुसार वृक्षत्व के साथ व्यवस्था में रहता है... उसके पूर्व जैसे हर पदार्थ परिणाम के अनुसार अपने त्व सहित व्यवस्था में रहता है... उसी प्रकार मानव सुधरने के बाद मानवत्व सहित व्यवस्था में जी सकता है।

इस अनुसंधान पूर्वक "मानव का अध्ययन" सम्भव हो गया है। अभी तक "मानव का अध्ययन" शून्य था। "मानव का अध्ययन" छोड़ कर आदर्शवाद भागा, और भौतिकवाद भी भाग ही रहा है। आदर्शवाद और भौतिकवाद मानव का अध्ययन नहीं करा पाये। यह अभिशाप मानव–जाति पर लगा हुआ है। मानव का अध्ययन न होने से मनमानी विचार–धाराएं निकली, मनमानी व्यवस्थाएं निकली। एक ही परिवार में बीस मतभेद निकले। इस तरह नर–नारियों में समानता का रास्ता नहीं निकला, दूसरे – अमीरी–गरीबी में संतुलन नहीं बन पाया। गरीब और ज्यादा गरीब होते गए। अमीर और अमीर होते गए। नर–नारियों में समानता और अमीरी–गरीबी में संतुलन के लिए "अच्छे" ढंग से भी जो प्रयोग हुए, "बुरे" ढंग से भी जो प्रयोग हुए – दोनों बुरे में ही अंत हुए। इस तरह मानव–जाति के उद्धार का रास्ता बना नहीं। अब इस अनुसन्धान पूर्वक नर–नारियों में समानता का भी सूत्र निकलता है, अमीरी–गरीबी में संतुलन का भी सूत्र निकलता है।

नर–नारियों में समानता समझदारी के आधार पर आता है। हर नर–नारी में कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता रखा हुआ है, उसके आधार पर हर नर–नारी समझदारी को अपना सकते हैं। शरीर (रूप) के आधार पर नर–नारी में समानता होगा नहीं। रूप शरीर के साथ है, समझदारी जीवन के साथ है। धन सबके पास समान रूप में हो नहीं सकता। धन के आधार पर नर–नारियों में समानता होगा नहीं। पद सबको मिल नहीं सकता। पद के आधार पर नर–नारियों में समानता होगा नहीं। तलवार और बन्दूक (बल) के आधार पर नर–नारियो में समानता होगा नहीं। तलवार और बन्दूक सभी चला नहीं सकते। नर–नारियो में समानता समझदारी के आधार पर ही सम्भव है। हर नर–नारी समझदार हो सकते हैं।

हमारे देश में आदर्शवादी ज्ञान को स्पष्ट करना चाहते रहे – पर वह स्पष्ट नहीं हो पाया। या कहीं न कहीं उनका पतन हुआ है। या तो वे पूरी बात पाये नहीं, या बीच में पंडितों पुरोहितों के हाथ विकृत हो गया हो – यह हो सकता है। दोनों में से कुछ भी हुआ हो – समझदारी मानव–परम्परा में आया नहीं है। मनुष्य में चाहत समझदारी का ही रहा है। अभी यहाँ जितने भी लोग बैठे हैं, नहीं बैठे हैं – सबमें समझदारी की चाहत बनी हुई है। मेरे अनुसार हर व्यक्ति समझदार होना चाहता है – उसके लिए अवसर पैदा किया जाए। वस्तु से समृद्ध होने के लिए अवसर पैदा किया जाए।

"नर नारियों में समानता" और "अमीरी गरीबी में संतुलन" होने पर हम इस धरती पर अनादि काल तक रह सकते हैं।

मानव द्वारा धरती के साथ अपराध प्रधान रूप से खनिज–कोयला, खनिज–तेल, और विकीरणीय धातुओं का अपहरण करने से हुआ है। इन तीन वस्तुओं के अपहरण करने से धरती असंतुलित हुई है। विकीरणीय धातुओं का प्रयोग ही ३००० बार nuclear tests करने में किया गया है। उससे जनित भीषण ताप धरती में ही समाया है। फलस्वरूप धरती बीमार हो गयी। धरती यदि स्वस्थ रहेगा तभी मानव स्वस्थ रूप में कुछ कर सकता है। धरती ही स्वस्थ नहीं रहेगा तो मानव क्या कर लेगा? कहाँ करेगा? इसको सोच कर के तय करना पड़ेगा। हमको धरती को संतुलित रख कर जीना है या नहीं? यदि जीना है तो अपराध–प्रवृत्ति से मुक्त होना आवश्यक है।

संवेदनाओं के पीछे पागल होना ही अपराध–प्रवृत्ति में फँसना है। संवेदनाओं को संतुष्टि देने के पीछे हम दौड़ते हैं तो अपराध के अलावा कुछ होगा नहीं। समझदारी पूर्वक यदि दौड़ते हैं तो समाधान के अलावा कुछ होगा नहीं।

रायपुर में २०–२५ धनाढ्य परिवारों की नारियों की सभा में पूछा गया – नर–नारियों को संवेदनाओं को तृप्त करने के लिए दौड़ना जरूरी है – या संवेदनाओं को नियंत्रित करना जरूरी है? ढाई घंटा चर्चा करने पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला – "यदि संवेदनाओं के पीछे ही हम दौड़ते हैं तो हम जानवरों से अधिक कुछ नहीं हैं। संवेदनाओं को नियंत्रित करके ही हम मानव बन सकते हैं।" यह हर व्यक्ति स्वयं में निरीक्षण कर सकता है – हम कितना संवेदनाओं के पीछे लट्टू हैं, हमारी संवेदनाएं कितनी नियंत्रित हैं। हर नर–नारी यह परीक्षण कर सकते हैं, और उसके आधार पर अपने बच्चों को उदबोधन कर सकते हैं।

संवेदनाओं को तृप्त करने के लिए हम कितना भी काम करें – वे तृप्त होती नहीं हैं। इस तरह काम करने से केवल अपराध होता है। मनुष्य स्वयं में तृप्ति पूर्वक समाधान को प्रमाणित करता है। मनुष्य स्वयं में अतृप्ति पूर्वक अपराध को प्रमाणित करता है।

हमको तृप्त रहना है, या अतृप्त रहना है – इसको हमें तय करना है। हम सब यही तय करने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। संवेदनाओं को तृप्त करने में लगे रहना है, या संवेदनाओं को नियंत्रित करना है? इसको तय करने के लिए हम यहाँ हैं।

"संवेदनाओं को नियंत्रित करना है" – वहीं से "**विकल्प**" के अध्ययन की ज़रूरत पड़ती है।

यह प्रस्ताव आदर्शवाद और भौतिकवाद दोनों का "**विकल्प**" है।

आदर्शवाद शुरू भी "रहस्य" से करता है, और उसका अंत भी "रहस्य" में ही है। दूसरे – भौतिकवाद से "सुविधा–संग्रह" ही जीने का लक्ष्य बनता है। सुविधा–संग्रह का कोई तृप्ति बिन्दु होता नहीं है। कितनी भी सुविधा पैदा करें, और सुविधा पैदा करने की जगह बना ही रहता है। कितना भी संग्रह करें, और आगे की संख्या रखा ही रहता है।

विकल्प विधि से सोचने पर यह निकलता है – "मानव–लक्ष्य समाधान–समृद्धि–अभय–सह–अस्तित्व है।"

हमें "सुविधा–संग्रह" के पीछे ही लगे रहना है, या "समाधान–समृद्धि" की ओर चलना है – यह हमको निर्णय करना है।

संवेदनाओं को तृप्त करने के लिए दौड़ते ही रहना है, या संवेदनाओं को नियंत्रित रखना है – यह हमको निर्णय करना है।

समाधान–समृद्धि की ओर चलना है, और संवेदनाओं को नियंत्रित रखना है तो उसके लिए "समझदारी" अवश्यम्भावी है। "समझदारी" का मतलब है – सह–अस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व को समझना और सह–अस्तित्व स्वरूप में जीना।

सह–अस्तित्व स्वरूप में जीने में हमारे न्याय–पूर्वक जीने की बात बनती है। न्याय पूर्वक जीने में किसी का किसी पर "आरोप", किसी की किसी से "शिकायत", किसी की किसी पर "आपत्ति" बनता नहीं है। सह–अस्तित्व विधि को छोड़ कर यदि हम व्यक्तिवादी/समुदायावादी विधि से जीने के बारे में सोचते हैं, तो समस्याएं तैयार हो जाती हैं। मानव मानवीयता पूर्वक जीने से व्यक्तिवादिता से मुक्त होता है। चेतना–विकास को जब समझते हैं, जीते हैं तो व्यक्तिवाद/समुदायवाद दोनों से मुक्त हो जाते हैं। चेतना–विकास को समझने और जीने का प्रमाण मैं स्वयं हूँ। ऐसे प्रमाणों का जो सत्यापन प्रस्तुत करेंगे – उन पर आप विश्वास कर सकते हैं।

– जीवन विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन में बाबा श्री नागराज शर्मा का उदबोधन (१ अक्टूबर २००९, हैदराबाद)

(अध्याय: 1–1.1, पेज नंबर:1–10)

- **अनुसंधान की पृष्ठभूमि और इसकी उपलब्धि का लोकव्यापीकरण**

यह जीवन–विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन सुखद, सुंदर, सौभाग्य–पूर्ण हो – यह मेरी शुभ कामना है। मूल में मुझे यह बताने के लिए कहा गया है की इस अनुसंधान को करने का "संकट" मुझे कैसे आ गया? यह अनुसंधान हुआ कैसे? इस अनुसंधान को "**विकल्प**" स्वरूप में प्रस्तुत करने की क्या ज़रूरत आ गयी थी? इन सब बातों पर ध्यान दिलाने के लिए यह मेरी प्रस्तुति है।

मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा – मेरी शरीर–यात्रा ईश्वर–वादी विचार के अनुसार विद्वान कहलाने वाले वेद–मूर्ती परिवार में शुरू हुई। उस परिवार में मैंने पलने से लेकर ६–७ वर्ष या १० वर्ष तक वेद–विचार के अलावा कुछ श्रवण किया ही नहीं। या ऐसा कह सकते हैं – दूसरी कोई बात मेरे मन में पहुँची ही नहीं। मेरी आयु जब ५ वर्ष रही होगी – तब बहुत सारे बड़े–बुजुर्ग लोग मुझे प्रणाम किया करते थे। मुझ में यह विचार आया – "मुझको ये लोग प्रणाम करते हैं – इनको मैंने ऐसा क्या दे दिया है? ये लोग क्यों मुझे प्रणाम करते हैं?" मैंने इस बारे में अपने घर–परिवार, माता–पिता, भाइयों, मामा के साथ बात की तो वे उसका मखौल उडाते रहे। यह सब चलते चलते १०–१२ वर्ष बाद मुझको इस बात का बोध हुआ, ये लोग मेरे परिवार का सम्मान करते हैं – और उसी आधार पर मेरा सम्मान करते हैं। यह जो मुझ में निष्कर्ष निकला उससे इस बात की मुझ में प्रतिज्ञा बनी, हमारा परिवार जो सम्मान और प्रतिष्ठा बनाया है, उसको बरबाद करने का अधिकार मुझको नहीं है।

उसके बाद मैं वहीं न रुक कर, मेरा परिवार संसार को क्या दे दिया – इस को मैं शोध करने लगा। यह शोध करने पर पता चला – मेरे परिवार की परम्परा में हर पीढी में एक–दो संन्यासी होते ही रहे। उनमें से कई संन्यासी तो ऐसे हुए, जो अपनी समाधी के लिए स्वयं गड्ढा खोद कर मिट्टी डाल कर मर गए। मर जाने के बाद उनके ऊपर चबूतरा बना कर रखे हुए थे। मैंने अपने परिवार–जनों से पूछा "ये हमको क्या दे गए?" इसका उत्तर देने में काफी परेशानी उनको होने लगी। अंततोगत्वा यह बताया – शास्त्रों में "संन्यास" के बारे में लिखा है कि उससे कल्याण होता है। "कल्याण होता है – तो उसका कोई गवाही होगी कि नहीं?" – यहाँ से मैंने शुरू किया। ऐसा शुरू करने पर तकलीफ और बढ़ी। यह बढ़ते–बढ़ते मुझ को अंततोगत्वा समझाया गया – तुम पूरा वेदान्त को समझो। मैं फ़िर वेदान्त को समझने गया।

वेदान्त को मैंने पूरा ठीक समझा। लेकिन उससे तो वही हुआ – "पहले से करेला, ऊपर से नीम चढा**!**" वेदान्त के अध्ययन से मुझे पता चला – "यह ब्रह्म ही बंधन और मोक्ष का कारण है।"

ब्रह्म–ज्ञान क्या है? – तो रहस्यमय बताया। "ब्रह्म अव्यक्त है, अनिर्वचनीय है " – यह बात की मुझे सूचना दिए। यदि ब्रह्म अव्यक्त है, अनिर्वचनीय है – तो ऐसी स्थिति में "ब्रह्म–ज्ञान" का क्या मतलब होगा? ऐसा मैं तर्क करने लगा। उस पर मुझे बताया गया – "तुम छोटा मुहँ बड़ी बात करते हो। " इस प्रकार मुझ से मेरे परिवार में काफी संकट गहराया।

ब्रह्म ही बंधन और मोक्ष का कारण कैसे हो गया? मैंने पूछा तो बताया – यह "ब्रह्म–लीला" है। यह सुनने पर मैंने कहा – देखिये, संसार में जो दारु पीते हैं, वे बढ़िया लीला करते हैं। जो पागल हो जाते हैं – उससे बढ़िया लीला करते हैं। क्या ब्रह्म को पागल या दारु पिया हुआ माना जाए? यदि ऐसा नहीं माना जाए – तो उसका तरीका क्या है? यह सब होने पर वे मुझ को समझाए – "इसको समझने के लिए तुमको स्वयं अनुभव करना पड़ेगा।"

क्या अनुभव होता है? – मैंने पूछा।

"समाधि में अनुभव होता है" – उत्तर मिला।

किस बात का अनुभव? – मैंने पूछा।

"ज्ञान का" – यह बात बताये।

यह बताया तो मैंने समाधि के लिए तैय्यारी कर लिया। अपने मन को तैयार किया – कि इसके लिए मुझको यह शरीर यात्रा अर्पित करना है। उस समय मेरी आयु २६–२७ वर्ष रहा होगा। परम्परा को छोड़ कर अपने मन का कुछ करना है – उसके लिए शास्त्रों में "विद्वत–संन्यास" की बात लिखा है। विद्वत–संन्यास के बारे में लिखा है – ऐसा कुछ काम करने के लिए पत्नी का अनुमति चाहिए, माँ का अनुमति चाहिए, और गुरु का अनुमति चाहिए।

उस बारे में मैंने अपने पत्नी से एक गोष्ठी किया, अपना विचार व्यक्त किया – कि इस प्रकार से मेरे मन में ऐसा निश्चय हो रहा है। इसमें तुम्हारा क्या कहना है? "तुम जो निर्णय लोगे उसी के साथ मुझे चलना है।" – ऐसा वह बोली। मैंने बहुत तर्क दिया – इस में यह खतरा हो सकता है, वह हो सकता है, बहुत सारी कल्पना। यह सब बात मैंने की। अंततोगत्वा उनको साथ ही चलना है – यही ठोस निर्णय आया।

उसके बाद मैंने अपनी माँ से बात किया। मेरी माँ मेरे लिए पहले से ही गुरु–तुल्य रही थी। उन्ही से मैंने ज्योतिष और आयुर्वेद सीखा था। उसके आलावा मेरे घर पर "श्री विद्या आगम–तंत्र–उपासना" की परम्परा रही थी, उसका उपदेश उन्हों ने ही मुझे दिया। इसी अर्थ में मेरी माँ मेरे लिए गुरु–तुल्य थी। उनसे पूछा तो वे बताईं – "तुम जो कुछ भी निर्णय लोगे – उससे अच्छा निर्णय लेने वाला इस धरती पर कोई नहीं है। तुम जो निर्णय लो – उसे कर डालो, तुम उसमें सफल होगे।" ऐसा उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया।

उसके बाद श्रृंगेरी के विद्या–पीठ के शंकराचार्य को मैंने अपनी आस्था का केन्द्र बनाया था – उनसे मैंने इस बात का जिक्र किया। उन्होंने बताया – "तुम्हारा संकल्प ठीक है। तुम सफल हो जाओगे। नर्मदा किनारे भजन करो।" ऐसा वे बोले।

यह कुल मिला कर combination बनी। उसके बाद मैंने अपने पिताश्री से बात किया। पिताजी ने यह बताया – तुम वेद मानते हो, अध्यात्म मानते हो, तो जब तक हम जीते हैं – तब तक तुमाहरा जप, यज्ञ, तप सब कुछ हम ही हैं। हमारी सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है – ऐसा वे बोले।

उसके बाद अपने ससुरजी से बात किया। वे बोले – तुम ६० वर्ष की आयु के बाद वानप्रस्थ जाना। मैंने धीरे से उनसे पूछा – आपका आयु कितना है? उन्होंने बताया – ६२ वर्ष! मैंने पूछा – फ़िर यहाँ कैसे दिख रहे हो?! सुन कर वे भाग गए! यह भी एक मखौल की बात है।

इस तरह परामर्श के तौर पर मैंने सबसे बात किया – और समाधि के लिए जाने का निष्कर्ष निकाला।

सबसे परामर्श करके मैंने समाधि के लिए जाने का निष्कर्ष लिया। निष्कर्ष में तो मैं आ ही गया था – कि मुझको यह करना ही है, एक शरीर यात्रा इसमें अर्पित करना ही है। मैंने कुछ तिथि निश्चित किया कि इस तिथि में चले जायेंगे। तब तक अपने सभी क्रियाकलापों, लेन–देन आदि सब को पूरा करने में मैं लगा। इसी बीच में मेरी माँ का देहांत हो गया। यह १९४७ के अंत में हुआ। और १९४८ के आरम्भ में मेरे पिता का भी शरीर शांत हो गया। वहाँ की परम्परा के अनुसार १ वर्ष तक मरणोत्तर कर्मो में सम्मान देते हैं, ऐसी आस्था रखते हैं। उसको मैंने पूरा किया। वह सब पूरा होने पर १९५० में हम यहाँ अमरकंटक पहुँच गए।

अमरकंटक – इस पावन स्थली पर पहुँच कर हमको बहुत अच्छा लगा। यहाँ के लोग, हवा, पानी, जंगल, जानवर, धरती – इन सबके साथ हमारी सानुकूलता बनी। वहाँ जो २००–२५० लोग उस समय थे – उनके साथ भी हमारा स्नेह और विशवास पूर्वक जीने का आधार बना। हमको ऐसा लगा – वहाँ जितने भी लोग हैं, वे सभी हमारे अभिभावक हैं, संरक्षक है। ये सभी बात सानुकूल होने पर मैं साधना कर पाया। यह सानुकूलताएं जो अपने आप में मुझ को सुलभ हुई, (उसका कारण) मैंने माना – यह नियति का देन है, बड़े–बुजुर्गों का आशीर्वाद है, या मानव का पुण्य है।

अमरकंटक उस समय एक छोटा सा गाँव था। कुल आबादी – १५० लोग। वहाँ आने पर वहाँ के सभी लोग जैसे मेरे अभिभावक बन गए। फ़िर मैं वहाँ साधना करने की प्रवृत्ति बनाने लगा। अमरकंटक के बड़े–बुजुर्गों के नित्य–कर्मो को मैंने देखा। सवेरे नर्मदा में स्नान करने के बाद, घर में खाने–पीने के बाद, वही बीडी–सिगरेट–तम्बाकू का सेवन, फ़िर चौपड़ खेलना, ताश खेलना। ये उनकी पूरी दिनचर्या के काम को मैंने देखा। ऐसे बड़े–बुजुर्गों के पास मैं बैठता हूँ तो ये मुझे भी वही सब करने को कहेंगे। यदि मैं इसके लिए मना करता हूँ, तो मैं उनके लिए कुजात जो जाता हूँ! यदि मैं वही सब करता हूँ – तो मेरा साधना तो समझो हवा हो गया! अब क्या किया जाए? यहाँ पर रहा जाए या यहाँ से भागा जाए?

ऐसे में मेरी पत्नी ने सुझाया – तुम क्यों परेशान होते हो? उनको अपना काम करने दो, तुम अपना काम करो! तुम सवेरे से शाम तक साधना करो। तुम्हारे पास कोई आएगा नहीं, तुम किसी के पास जाना नहीं। यह सुन कर मैं बहुत बाग़–बाग़ हुआ। उसी के अनुसार मैंने साधना शुरू किया। १९४२ में मेरा विवाह हुआ था। १९५० में हम अमरकंटक आ गए थे। इन ८ वर्षों में मैं अपनी पत्नी के लिए अभिभावक जैसे रहा था। मेरी पत्नी १९५० से लेकर आज तक मेरे लिए अभिभावक है। इस सम्मानजनक सम्बन्ध को मैंने कैसे पहचाना, और वह मेरे लिए कैसे वरदान सिद्ध हुआ – यह आपको बताना चाहा। मेरी पत्नी की तपस्या ही है, जो मैं साधना कर पाया। नहीं तो मैं साधना नहीं कर पाता। मैं समझता हूँ, साधना करने के लिए कहीं न कहीं आत्मीयता पूर्ण सेवा आवश्यक है।

यह सब होने के बाद अपनी साधना में मैं तत्पर हुआ, उसके लिए किया–धरा, उस सब में २० वर्ष लगे। २० वर्ष बाद मैं समाधि की स्थिति में पहुँच गया।

समाधि की स्थिति में मैंने पाया – मेरा आशा, विचार, इच्छा जो दौड़ता रहता था – "मुझे कुछ चाहिए", "मुझे कुछ करना है", "मेरे पास कुछ है" – ये तीनो पूरा का पूरा चुप हो गए। ये चुप होने के बाद आदमी को कोई संकट तो होता नहीं है। आशा–विचार–इच्छा चुप हो जाने के बाद संकट काहे को होगा? ये चुप होने के बाद मैं हर दिन इंतज़ार करता रहा – आज ब्रह्म ज्ञान होगा, आज होगा... ऐसा करते करते कई महीने इंतज़ार में बीत गए।

समाधि में मुझको ब्रह्म–ज्ञान नहीं हुआ।

समाधि में ब्रह्म–ज्ञान नहीं होता – इसको मेरे कहने भर से कौन मानने वाला है? शास्त्रों में तो इसके विपरीत लिखा है। समाधि मुझ को हुआ है या नहीं – इसका गवाही देने के लिए मैंने "संयम" किया। संयम के द्वारा समाधि का गवाही हो जाता है। फ़िर संयम करने का संकल्प ले कर मैं लग गया।

पंतांजलि योग–सूत्र में संयम के लिए विभूति–पाद में जो कुछ भी लिखा है – वह कोई ज्ञान के लिए नहीं है। "अज्ञात को ज्ञात" और "अप्राप्त को प्राप्त" करने के उद्देश्य की पहले से घंटी बजती रही। उसमें से "अप्राप्त को प्राप्त करने" को लेकर मेरी कोई जिज्ञासा नहीं रही। मुझको ऐसा महसूस ही नहीं हुआ – मेरे पास कुछ अप्राप्त है। अभाव मुझको स्पर्श ही नहीं किया था। अप्राप्त को प्राप्त करने की मुझ में कोई जिज्ञासा नहीं रही, आवश्यकता भी नहीं रही। इसको आप मेरा पागलपन भी कह सकते हैं, मेरी सच्चाई भी कह सकते हैं। अब क्या किया जाए? अज्ञात को ज्ञात कैसे किया जाए – यही बात हुई। उस सन्दर्भ में लिखा है – "धारणा–ध्यान–समाधिः त्रयम एकत्रत्वा संयमः"। ऐसा एक लाइन लिखा है। उसको मैंने उलटाया। "समाधि–ध्यान–धारणा त्रयम एकत्रत्वा संयमः" – ऐसा मैंने दूसरा लाइन तैयार किया। अप्राप्त को प्राप्त करने की एक भी विधि को मुझे नहीं अपनाना है – ऐसा मैंने सोचा। अज्ञात को ज्ञात करना उसके उल्टा विधि से होगा – उस विधि से करके देखा जाए! ऐसा मेरा मन पहुँचा। और फ़िर उसको मैंने किया।

यह करने पर एक वर्ष में मैं उस जगह पर पहुँचा जहाँ – अस्तित्व कैसा है, क्यों है? और मानव कैसा है, क्यों है? – इन दोनों का उत्तर मुझे मिल गया। इन दोनों ध्रुवों के बीच में संसार का जो कुछ भी क्रिया–कलाप है – भौतिक, रासायनिक, और जीवन क्रियाकलाप – उसका मुझे साक्षात्कार हुआ। साक्षात्कार होने पर मैं संतुष्ट हुआ।

साक्षात्कार पूर्वक मुझ को पता चला : –

(१) हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त स्वरूप में है।

(२) जीवन एक गठन–पूर्ण परमाणु है।

(३) जीवन में दो और पूर्णतायें – क्रिया–पूर्णता और आचरण–पूर्णता – मानव परम्परा में ही घटित होता है।

मुझको यह समझ में आया – मनुष्य जीव–चेतना वश भ्रमित हो कर संकट से घिर जाता है। फ़िर मानव–चेतना पूर्वक सुखी होना होता है – यही क्रिया पूर्णता है। इस तरह पता चला – जीव–चेतना से मानव–चेतना श्रेष्ठ है। मानव–चेतना से देव–चेतना श्रेष्ठतर है। देव–चेतना से दिव्य–चेतना श्रेष्ठतर है। यह अनुभव होने के बाद मैं अपने में सुद्रढ़ हुआ। जागृति का अधिकार मुझे मिल गया।

जागृति के अधिकार के फलस्वरूप पता चला – मनुष्य भ्रम–वश ही बंधन की पीड़ा से पीड़ित है। क्या चीज है भ्रम या बंधन? वह है – अति–व्याप्ति दोष (अधिमुल्यन करना) , अना–व्याप्ति दोष (अवमूल्यन करना) , और अव्याप्ति दोष (निर्मुल्यन करना)। इन तीन दोषों से ही हम संकट में फंसते हैं। छल, कपट, दंभ, पाखण्ड – यह अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, और अव्याप्ति दोषों का प्रदर्शन है। दूसरी विधि से जो हम फंसे हैं – वह है – द्रोह, विद्रोह, शोषण, और

युद्ध। इस तरह मनुष्य इन दो भंवरों में फंस गया। इसके पहले साम–दाम–दंड–भेद का भंवर बना ही रहा। इस तरह मानव एक साथ तीन भवरों में फंसा हुआ है। मनुष्य जाति कैसे जी पा रही है – आप ही सोच लो!

यह जो ज्ञान मुझे हुआ – यह १९७५ में हुआ। यह ज्ञान होने पर मैंने स्वीकारा – यह मेरे अकेले का ज्ञान नहीं है। यह मानव का ज्ञान है। मानव के पुण्य वश ही यह घटित हुआ है। इसलिए मानव को इसे अर्पित करना है। उसके बाद मनुष्य के साथ संपर्क करने का कोशिश किया। कोशिश करने के क्रम में कुछ लोगों ने कहा – "तुम आशावादी हो!" कुछ ने कहा – "समय से पहले तुम यह बात कर रहे हो।" कुछ ने कहा – "जैसे और कई विचार आए – तुम्हारा भी यह एक विचार है – थोड़ी देर बाद यह भी ख़त्म हो जायेगा। " इन तीन प्रकार की opinions आयी। मैं चिंतन–मनन करता रहा, और उसी के साथ अच्छे–अच्छे लोगों से मिलन होते ही रहे। धीरे–धीरे मुझको यह धैर्य हुआ कि इस बात की आवश्यकता मानव–परम्परा को है।

उसके बाद १९९० से हमने शुरू किया कि इसे सटीक विधि से एक शैक्षणिक प्रणाली के रूप में लोगों के सम्मुख रखा जाए। उसमें दो–तीन जगह में इस बात के प्रयोग हुए हैं, काफी बुद्दिमान लोग इसमें सोचने के लिए तत्पर हुए हैं। यह आज तक की घटित घटनाएं यहाँ तक पहुँची हैं। अनुसंधान के फल में जो हाथ लगा उसमें कुल मिला कर "समझदारी" की बात है। अभी तक क्या था? अभी तक समझदारी था कि नहीं था? यह आप पूछो तो मेरे समझ में यह आता है – अध्यात्मवाद रहस्य में फंसने से आदमी को हाथ नहीं लगा। रहस्य में ही रह गया। उसमें हमने माना मरने के बाद हमको स्वर्ग मिलेगा, मोक्ष मिलेगा, ज्ञान का फल मिलेगा, देवता मिलेंगे – इस प्रकार की बहुत सारी परिकल्पनाएं रखी हुई हैं। मरने के बाद क्या मिलता है – उसकी कोई गवाही तो हो ही नहीं सकती।

इस समझदारी से मानव–लक्ष्य स्पष्ट हुआ। मानव–लक्ष्य है – समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व प्रमाण। मानव–लक्ष्य को पूरा करना ही मानव–चेतना है।

समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि – यह एक formula बना। समझदारी से समाधान–संपन्न हो सकते हैं। हर समझदार परिवार में अपनी आवश्यकता का निर्णय कर सकते हैं। आवश्यकता से अधिक उत्पादन करके समृद्धि का अनुभव कर सकते हैं।

इस आधार पर इस पूरी बात को अध्याव्सायिक विधि से प्रस्तुत करने की कोशिश किए। प्रस्तुत करने के क्रम में सर्वप्रथम मैंने बंगलोर में एक "अध्ययन शिविर" लगाया। ४५ दिन का शिविर था। बहुत सारे लोग इसको सराहे, इसकी आवश्यकता है – ऐसा बोले। इसके बाद धीरे–धीरे रायपुर, भिलाई – इन जगहों पर विद्वानों के संपर्क में आए। उसके बाद दुर्ग में एक polytechnic institute के संपर्क में आए, जहाँ के लोगों ने जीवन–विद्या का शिविर किया। विज्ञान को पढ़े हुए लोगों के साथ मैंने एक जीवन–विद्या शिविर किया। इस शिविर करने के बाद उनमें कुछ संतोष और धैर्य हुआ, उसके बाद वही polytechnic institute द्वारा IIT Delhi से संपर्क हुआ। IIT Delhi के विद्वानों का तरीका कुछ दूसरा ही रहा!

वहाँ पहुँचते ही वे मुझसे कहे – "तुम्हारी प्रस्तुति का आधार क्या है? जो बात तुम कह रहे हो – यह किसी सिद्धांत पर आधारित है या नहीं?"

इससे मुझको ऐसा झलका, ये पूछ रहे हैं – "मैं किस परम्परा के आधार पर बात कर रहा हूँ? –उसको लेकर मेरा उदगार चाह रहे हैं। " किंतु मेरी बात किसी परम्परा पर आधारित नहीं रहा।

इसका सीधा उत्तर मैंने दिया – "मेरी बात का आधार है – सह–अस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व। और इस बात का प्रमाण मैं स्वयं हूँ।" इस प्रकार से मैं प्रस्तुत हुआ।

इस प्रकार वहाँ के जो तत्कालीन विद्वान थे – उनमें से कुछ लोगों को सुनकर काफी अच्छा लगा, तो कुछ को लगा यह बिल्कुल पाखंडी आदमी है – बस बात करने वाला है। ऐसा दो तरह की बात हुई। इसके बाद उनसे मंगल–मैत्री, ज्ञान–अर्जन करने–कराने की बातचीत शुरू हुई। अंततोगत्वा IIT में यह प्रवृत्ति बनी – "यह कुछ सही चीज़ है, इस पर प्रयोग करके देखना चाहिए।

कुल मिला कर "अध्यात्मवाद की रहस्यमयता" मेरे अनुसंधान का कारण रहा। अस्तित्व में रहस्य होने का कोई कारण नहीं है। अध्यात्म या ब्रह्म जैसे वस्तु का अव्यक्त रहने का कोई कारण नहीं है। अनुसंधान से पता चला – ब्रह्म सभी वस्तुओं को प्राप्त है। प्राप्त का अनुभव करने का मानव के पास अधिकार है। वह अनुभव सह–अस्तित्व स्वरूप में होता है। यह मैंने अनुभव किया है।

इस प्रकार सह–अस्तित्व समझ में आने के बाद उसको literature स्वरूप में दर्शन, वाद, और शास्त्र रूप में दिया। दर्शन रूप में नाम दिया गया है – मानव व्यवहार दर्शन, मानव कर्म दर्शन, मानव अभ्यास दर्शन, और अनुभव दर्शन। उसके बाद विचार में नाम दिया – समाधानात्मक भौतिकवाद , व्यवहारात्मक जनवाद , और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद। उसके बाद शास्त्रों का नाम दिया – आवर्तनशील अर्थशास्त्र , व्यवहारवादी समाजशास्त्र , मानव संचेत्नावादी मनोविज्ञान। उसके बाद संविधान लिखा – मानवीय आचार संहिता रुपी संविधान। उस ढंग से मानव को जो आवश्यकता है – आचरण से संविधान तक, संविधान से व्यवस्था तक – हर आदमी जो जांच सकता है, उसका पूरा व्याख्या प्रस्तुत किया। उसमें धीरे–धीरे लोगों का भरोसा तो बन ही रहा है। इस प्रकार जितने भी लोग इस विचार से जुड़ रहे हैं, उनका भरोसा की बात तो पूरा पड़ता है। इस बात को लेकर जीवन–विद्या का कार्यक्रम जहाँ–जहाँ होता है, जीवन–विद्या को जो–जो सुनते हैं, उनमें नवीन उत्साह जगता है। उसके बाद जिज्ञासा के आधार पर आगे विद्वान होना बनता ही है।

इस तरह अनुसंधान की यह छोटी सी बात हुई। केवल मुझ में स्वयं में रहस्यवाद से पैदा हुआ संकट और भौतिकवाद से पैदा हुआ संकट (धरती बीमार होने के रूप में) – इन दोनों से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्न, उस प्रयत्न में मेरी सफलता समाधि–संयम पूर्वक होना, उसको मानव को अर्पित करने के लिए प्रयत्न, और यहाँ आप तक पहुँचने का सौभाग्य।

जय हो! मंगल हो! कल्याण हो! (अध्याय: 1–1.1, पेज नंबर:10–20)

- अभी तक की सोच का विकल्प

मानव जाति के इतिहास में अभी तक जो भी प्रयास हुए, वे उसको समझदारी के घाट पर पहुँचाने में असमर्थ रहे। पहले आदर्शवाद ने "आस्था" या "मान्यता" के आधार पर भक्ति विरक्ति का रास्ता दिखलाया। उसके बाद भौतिकवाद आया, जिसने तर्क का रास्ता खोल दिया। तर्क संगत विधि से आस्था टिक नहीं पायी तो सुविधा संग्रह के चक्कर में हम आ गए। अभी ज्ञानी अज्ञानी विज्ञानी तीनों सुविधा संग्रह के दरवाजे पर भिखारी बने खड़े हैं। कोई आदमी इससे नहीं बचा। धरती पर मानव के अपने को समझदार मानने के बाद मानव का गति आज तक इतना ही हुआ है। अभी तक जो कुछ भी रास्ते हैं, सुविधा संग्रह के दरवाजे की ओर ही ले जाते हैं। आप चाहे कुछ भी कर लो सह अस्तित्ववादी ज्ञान इस दरवाजे के बाहर है। सह अस्तित्ववादी विधि से जीने का तरीका है समाधान समृद्धिपूर्वक परिवार में जीना। फ़िर समाधान समृद्धि अभय पूर्वक समाज में जीना। फ़िर समाधान समृद्धि अभय सह अस्तित्व पूर्वक सार्वभौम व्यवस्था में जीना।

अब आप हम को तय करना है, समाधान समृद्धि पूर्वक परिवार में जीना है या सुविधा संग्रह के दरवाजे पर भिखारी बने खड़े ही रहना है?

हर व्यक्ति को अपने अपने में इसके लिए निर्णय लेने की आवश्यकता है। एक व्यक्ति के निर्णय लेने भर से काम नहीं चलेगा।

(जीवन विद्या राष्ट्रीय सम्मेलन 2006, कानपुर) **(अध्याय: 1-1.1, पेज नंबर:23-24)**

- शिक्षा में विकल्प

जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

मैं स्वयं को अपने बंधुओं के बीच पा कर प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। आप हम जो यहाँ मिले हैं यह एक संयोग और सद्-बुद्धि की बात है। सद्-बुद्धि के पक्ष में आगे बढ़ने का यहाँ प्रस्ताव है। सद्-बुद्धि चाहने वाले यहाँ सब बैठे हैं – ऐसा मेरा स्वीकृति है। कल आपके साथ बात हुई थी – **विकल्प** कैसे आया, क्यों आया, और यह किस बात का **विकल्प** है? उसमे बताया था – यह आदर्शवाद और भौतिकवाद का **विकल्प** है, और समाधि-संयम विधि से निष्पन्न हुआ है। अब आगे इसका शिक्षा में क्या स्वरूप होगा, उसको मुझे प्रस्तुत करने को कहा गया है। उसको मैं स्वीकारा हूँ, उचित समझा हूँ। लोग भी उसको उचित समझते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है।

वेद-विचार में ३० वर्ष तक जो मैं पला-बढा, उसमे सुनने-सुनाने को "श्रुति" नाम दिया। मैं भी उसको मान कर वेदिक ऋचाओं को उच्चारण करते रहा। मुझको जो लोग सुनते रहे वे मेरी प्रशंसा करते रहे, उससे मुझे अभिमान होता रहा। जब वेद-विचार के अर्थ में गए तो मैंने उसे निरर्थक पाया। पहले – ब्रह्म को ही सत्य और अनंत बताया। दूसरे – ब्रह्म से ही जीव-जगत पैदा हुआ, यह बताया। तीसरे लाइन में लिखा – ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है। सत्य से मिथ्या कैसे पैदा हो गया? इस प्रश्न से मुझको पीड़ा हुई, जिसके निराकरण के लिए मैंने स्वयं-स्फूर्त विधि से अनुसंधान किया। उसके फल में मैंने जो पाया वह मुझे सम्पूर्ण मानव-जाति की सम्पदा लगा – इसलिए उसे मानव-जाति को पकडाने के

लिए मैंने प्रयास शुरू किया। यहाँ उपदेश–विधि को छोड़ करके शिक्षा–विधि से इसको प्रस्तुत किया। शिक्षा में उसके स्वरूप को बताने के लिए मैं यहाँ प्रस्तुत हूँ।

शिष्टता से संपन्न होने के लिए शिक्षा है। उसके लिए प्रक्रिया है – अध्ययन। अनुभव के प्रकाश में स्मरण पूर्वक किया गया क्रिया–कलाप अध्ययन है। अध्यापन करने वाला अनुभव का प्रकाश देता है। अनुभव का प्रकाश लोहे के पास रहेगा, जानवर के पास रहेगा, या मानव के पास रहेगा? मैंने यह निर्णय लिया – "अनुभव का प्रकाश मानव के पास ही रहेगा।" अनुभव का प्रकाश न लोहे के पास रहेगा, न जानवर के पास रहेगा। इसको आप सभी शोध करने योग्य हैं। सभी को शोध करना चाहिए, निर्णय लेना चाहिए। अभी अत्याधुनिक लोग सोचते हैं – लोहा आदमी को सिखायेगा! मेरी कंप्यूटर के बड़े वैज्ञानिक से एक बार अमरकंटक में बात–चीत हुई। उनसे मैंने पूछा – "तुम लोहे को जो समझाते हो, उसको मनुष्य समझेगा या लोहा समझेगा?" उन्होंने कहा – "मनुष्य समझेगा।" उसके बाद पूछा – "मनुष्य को मनुष्य समझायेगा या लोहा समझायेगा?" तो उन्होंने कहा – "मनुष्य समझायेगा।" ये सब बातों का अंतिम निष्कर्ष यही निकलता है – मनुष्य ही मनुष्य को समझायेगा। न जानवर समझायेगा, न लोहा समझायेगा, न पत्थर समझायेगा, न मणि समझायेगा। इसमें यदि आप सहमत नहीं होते हैं, तो आप मुझसे प्रश्न कर सकते हैं, पूछ सकते हैं। आपकी सहमति से मेरे इस निर्णय की पुष्टि हुई।

समझने और समझाने के लिए पाँच ही सूत्र हैं। पहला है – "सह–अस्तित्व को समझना और समझाने योग्य होना।" सह–अस्तित्व में अनुभव करने पर सह–अस्तित्व समझ में आता है। उससे पहले किसी को सह–अस्तित्व समझ में नहीं आएगा। सह–अस्तित्व में अनुभव किये बिना हम सह–अस्तित्व को समझा नहीं पायेंगे। मानव–परंपरा अनुभव–मूलक विधि से जिन्दा रह सकता है। मानव का सारी मानव–जाति के साथ सह–अस्तित्व, सारी जीव–जाति के साथ सह–अस्तित्व, सारी वनस्पति–जाति के साथ सह–अस्तित्व, सारी पदार्थ–जाति के साथ सह–अस्तित्व पूर्वक जीने की बात होती है। मानव का इस पहले सूत्र से यह निकलता है। इस धरती पर ही आप–हम बैठे हैं, हवा को लेते ही हैं, पानी को पीते ही हैं, वनस्पतियों और जीवों का उपयोग करते ही हैं। अब मानव का मानव को समझदारी के अर्थ में प्रबोधित करना, न्याय पूर्वक, समाधान पूर्वक और समृद्धि पूर्वक जी सकने की बात है। इसको मैंने स्वयं जी कर प्रमाणित हूँ। मैं स्वयं सह–अस्तित्व को समझा हूँ, सह–अस्तित्व में जीता हूँ. मैं किसी को घायल नहीं करता हूँ। किन्तु घायल करने वाले धरती पर हैं. जैसे यह प्रकाश जो इस बल्ब से है, जो बिजली है, वह धरती को घायल किये बिना आया नहीं है। धरती सूर्य को ताप को अपने में पचाने के लिए पहले कोयला बनाया, उसके बाद धरती अपने को अभी के संसार के जीने योग्य हवा आदि नैसर्गिकता को बनाया। उसके बाद ही जीव–संसार प्रकट हुआ, मनुष्य–संसार प्रकट हुआ। मानव जब से धरती पर प्रकट हुआ, अरण्य–युग से जंगल को बर्बाद करने में लगा ही है। अत्याधुनिक विज्ञान के साथ मानव खनिज–संसार पर टूट पड़ा। खनिज–तेल, खनिज–कोयला, और विकीर्णीय धातुओं के अपहरण करने से ही यह धरती बीमार हुई। इनके ईंधन–अवशेष से ही धरती ताप–ग्रस्त हो गयी है। अब धरती और कितने दिन बची रहेगी उसके लिए विज्ञानी लोग अपनी–अपनी भविष्यवाणियां कर रहे हैं। ये सब सुनने–बोलने के लिए हमारा कोई विरोध नहीं है। हमारा अनुरोध इतना ही है – हमारे बोलने–सुनने से प्रयोजन सिद्ध होना चाहिए। प्रयोजन है – मानव का व्यवस्था में जीना। व्यवस्था में जीने का मतलब है – मानव का अपराध–मुक्त होना, भ्रम–मुक्त होना। सकारात्मक भाषा में – नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीना। दूसरे तरह से कहें – समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व पूर्वक जीना। मानव का मानवत्व पूर्वक जीना, अर्थात मानव–चेतना, देव–चेतना,

दिव्य–चेतना पूर्वक जीना। शिक्षा में ये सभी सार्थकता का अध्ययन है। इसी के आधार पर आप इसका श्रवण करेंगे, इसकी औचित्यता का निर्णय करेंगे, उसमे कोई शंका हो तो हमसे पूछेंगे – उसका समाधान हमारे पास है।

अभयता

अभयता का मतलब है – विश्वास। मानव ही मानव के लिए भय का स्वरूप है, तथा मानव ही मानव के लिए विश्वास का स्वरूप है। परस्परता में विश्वास सबको स्वीकार होता है – ऐसा मेरा स्वीकृति है। मैंने डाकुओं, अपराधियों, व्यभिचारियों से भी इस बारे में बात किया – वे भी विश्वास के प्रति ही सहमत होते हैं। साधू, संत, यति–सती, योग्य, बुद्धिमान लोग तो अभयता

अभयता का मतलब है – विश्वास। मानव ही मानव के लिए भय का स्वरूप है, तथा मानव ही मानव के लिए विश्वास का स्वरूप है। परस्परता में विश्वास सबको स्वीकार होता है – ऐसा मेरा स्वीकृति है। मैंने डाकुओं, अपराधियों, व्यभिचारियों से भी इस बारे में बात किया – वे भी विश्वास के प्रति ही सहमत होते हैं। साधू, संत, यति–सती, योग्य, बुद्धिमान लोग तो विश्वास के प्रति पहले से ही सहमत है। मानव–जाति के साथ संपर्क से मैंने ऐसा पाया।

अत्याधुनिक–विचार हो या अर्वाचीन विचार हो – उसमे नाश करने की प्रवृत्ति बनी हुई है। पहले ऐसे सोचा गया था – यदि आपके पास में पत्थर हो तो दूसरा आप पर अपनी चलाएगा नहीं। पत्थर चल गया तो फिर सोचा गया – जिसके आपके पास डंडा हो, दूसरा आप पर अपनी चलाएगा नहीं। दूसरे ने डंडा चला दिया, तो फिर बन्दूक आ गया। फिर तोप आया, मिसाइल आया। ये सब कहाँ अंत होगा? समाधान पूर्वक जीने से ही नाश की प्रवृत्ति का अंत होता है। हमारे जैसे समाधान सबको हो सकता है। इसीलिये शिक्षा से समाधान की बात किया।

हमारे अनुसार – हर बच्चा जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक, और सत्य–वक्ता होता है। जबकि अत्याधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार बच्चे जन्म से ही कामुक होते हैं। हम आदमी हैं, जानवर हैं, या भूत–प्रेत हैं? हम क्या सीख रहे हैं, क्या कर रहे हैं, क्या बोल रहे हैं? यह एक–दूसरे के लिए भ्रम फ़ैलाने की बात है या नहीं? यह एक सोचने का मुद्दा है।

शिष्टता पूर्वक जीने के लिए शिक्षा है। समाधान–समृद्धि–अभय–सह–अस्तित्व पूर्वक जीना ही शिष्टता है। समाधान समझदारी से आता है. समझदारी सह–अस्तित्व, सह–अस्तित्व में विकास–क्रम, विकास, जागृति–क्रम, और जागृति को समझने से होती है. इन पाँच सूत्रों को समझाने के लिए ४ दर्शन, ३ वाद, ३ शास्त्रों, और संविधान को लिखा. यह कुल ३६०० पेज हैं। इससे ज्यादा मुझे कुछ लिखना नहीं है। यही शिक्षा/अध्ययन की वस्तु है। लोकव्यापीकरण होने पर जीने की जगह इन पाँच सूत्रों में ही है। उसका व्यवहार रूप बहुत विस्तार में है। अभी हम बहुत ज्यादा भाषा का प्रयोग करते हैं, थोडा समझा पाते हैं। लोकव्यापीकरण क्रम में आगे चल कर थोड़ी भाषा में ज्यादा समझाना बन जाएगा। ये भविष्य के लिए आशा है।

पूरा इसको लिखने के बाद मैंने यह निर्णय किया – जो इसको समझना चाहते हैं, उनके पास इसको जाना चाहिए। उससे समझने वालों को खोजना शुरू किया। धीरे–धीरे लोगों की इसमें स्वीकृति और प्रयासों से शिक्षा के इस स्वरूप पर हमारा विश्वास हुआ। अखंड–समाज होने के लिए इस शिक्षा का सारे विश्व में लोकव्यापीकरण होना होगा। एक गाँव

में हर परिवार यदि समाधान–समृद्धि पूर्वक जीता है तो यह व्यवस्था का एक प्रारूप बनता है। गाँव में ऐसे सबको बनाने का दायित्व अध्यापकों का है. हर गाँव में अध्यापक होंगे ही। हर गाँव में अध्यापक बच्चों को पढायेंगे, और बड़ों को समझायेंगे। यह ज़रूरत है या नहीं? गाँव में सभी समझदार होने पर ग्राम–स्वराज्य व्यवस्था की शुरुआत होती है। हर परिवार में इस तरह सभ्यता और संस्कृति का धारक–वाहकता होता है। और परिवार–सभा में विधि और व्यवस्था की धारक–वाहकता होती है। परिवार और परिवार–सभा में इस तरह पूरकता का अंतर–सम्बन्ध है। हर नर–नारी यदि समझदार होते हैं, तो परिवार में ही न्याय होता है। परिवार–सभा में श्रम–विनिमय के सामान्यीकरण की व्यवस्था होती है।

अकेले परिवार में ही आधा मानव–लक्ष्य (समाधान और समृद्धि) प्रमाणित हो जाता है। इसको आप वर सकते हैं, प्रयोग कर सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं। तुरंत प्रमाणित करने का क्षेत्र परिवार ही है. धीरे–धीरे प्रमाणित करने वाली जगह अखंड–समाज है। अखंड–समाज होता है तो सार्वभौम–व्यवस्था होती ही है। सर्व–देश में यदि समझदारी आती है तो सार्वभौम–व्यवस्था होती है। सार्वभौम–व्यवस्था होना ही अंतिम मंजिल है। इस ढंग से हम एक अच्छी बात के लिए तुल सकते हैं, अच्छी बात के लिए जोर लगा सकते हैं, अच्छी बात के लिए समर्पित हो सकते हैं, हम स्वयं को प्रमाणित कर सकते हैं।

जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

– बाबा श्री ए नागराज के जीवन–विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन २०१० में उदबोधन पर आधारित

(अध्याय: 1–1.2, पेज नंबर24–29)

- पुनर्विचार की आवश्यकता

मानव जब धरती पर प्रगट हुआ तो पहले जीवों के सदृश जीना शुरू किया। फिर संवेदनाओं को राजी करने के अर्थ में जीवों से अच्छा जीने का प्रयास किया। जैसे, अच्छे से अच्छा कपड़ा पहनना शुरू कर दिया। कोई जीव कपड़ा बनाने, पहनने का उपक्रम नहीं करता। मकान बना दिया। मानव ही मकान बनाता है, कोई जीव मकान बनाता नहीं है। सड़क बना दिया। मानव ही सड़क बनाता है, जीव सड़क बनाता नहीं है। इस तरह अभी तक मानव ने जीवों से अच्छा जीने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। इस तरह अच्छा जीने के क्रम में मानव ने जो कुछ भी किया उससे धरती बीमार हो गयी, प्रदूषण छा गया, अपराध प्रवृत्ति बढ़ गयी, और अपने पराये की दीवारें बढ़ गयी। धरती ही बीमार हो गयी तो रहेंगे? कहाँ पर? आगे की पीढ़ी रहेगी कैसे? यह पुनर्विचार की आवश्यकता है। पुनर्विचार के लिए **विकल्प** को प्रस्तुत किया है। यह विकल्प सह अस्तित्व में जीने का प्रस्ताव है। हम मोटाते रहे बाकी सब भले ही मरे ऐसी सोच से सह अस्तित्व में जीना होता ही नहीं है। (अध्याय: 1–1.2, पेज नंबर 30)

- प्रचलित–शिक्षा का विकल्प

अभी की प्रचलित–शिक्षा कामोंमादी, भोगोंमादी, और लाभोंमादी है। जबकि हर अभिभावक – चाहे डाकू हों, दरिद्र हों, समर्थ हों, असमर्थ हों – चाहते हैं उनके बच्चे नैतिकता पूर्ण बने, चरित्रवान बनें। आप स्वयं सोचिये – इन तीनो उन्मादों को पाते हुए क्या बच्चे नैतिक बन सकते हैं, चरित्रवान बन सकते हैं? इस ढंग से हम अभी तक क्या किये, किस बात के लिए भागीदारी किये – इसका मूल्याँकन होने लगता है। इस मूल्याँकन के होने के बाद हम **विकल्पात्मक** स्वरूप में जीने के लिए तैयार होते हैं। **विकल्पात्मक** स्वरूप है – सह–अस्तित्व में जीना. **विकल्पात्मक** शिक्षा के स्वरूप के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे।

सह–अस्तित्व में स्वयम जीने के स्वरूप को लेकर **विकल्पात्मक**–शिक्षा की शुरुआत करते हैं। सह–अस्तित्व में स्वयं जीने के लिए जब पारंगत हो जाते हैं, तो उसके सत्यापन को हम इस **विकल्पात्मक**–शिक्षा की पूर्णता मानते हैं। इसके उपरान्त समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने, अन्य लोगों की सहायता करने, और उपकार करने की शुरुआत होती है। आगे पीढ़ी में पिछली पीढ़ी से और अच्छा करने तथा अच्छा प्रस्तुत होने की कल्पना रहता ही है। अभी की अपराध–परंपरा में भी इस को देखा जा सकता है। मानव ने अपराध की शुरुआत जंगल को विनाश करने और हिंसक पशुओं का वध करने के रूप में की। उनकी संतान और ज्यादा विनाश करने, और ज्यादा वध करने की ओर गयी। यह चलते–चलते लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद तक पहुँच गया। अभी प्रचलित व्यापार–शिक्षा में लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद ही मिलता है। इसके अलावा दूसरा कुछ उसमे पा ही नहीं सकते। इसके अलावा उस शिक्षा में कोई ध्वनि ही नहीं है, सूत्र ही नहीं है, न व्याख्या है। यहाँ बैठे कुछ लोग नौकरी करते हुए भी हैं, व्यापार करते हुए भी हैं। वे सभी सोच सकते हैं, ऐसा ही है या नहीं? यदि मैं जो कह रहा हूँ वास्तविकता उससे भिन्न कुछ है तो उसको आप मुझे सुझाव के रूप में दे सकते हैं, आग्रह के रूप में दे सकते हैं – कैसे भी दीजिए, वह सब स्वागतीय है।

अभी मानव बहु–रुपिये जैसा जीता है. समझदारी पूर्वक मानव एक निश्चित आचरण (मानवीयता पूर्ण आचरण) के साथ जीता है। क्या इस बात से किसी का विरोध है, असहमति है? यह जीव–चेतना और मानव–चेतना का विश्लेषण है। इस विश्लेषण के आधार पर मनुष्य पुनर्विचार करने का अधिकार प्राप्त करता है। पुनर्विचार कि – अपराध–मुक्ति कैसे हो? गलतियों से मुक्ति कैसे हो? भ्रम से मुक्ति कैसे हो? दरिद्रता से मुक्ति कैसे हो? पुनर्विचार के लिए सुझाव है – सह–अस्तित्व–वादी विधि से इन सभी मुद्दों का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। जिससे अपराध–मुक्त हो सकते हैं, गलतियों से मुक्त हो सकते हैं, भ्रम से मुक्त हो सकते हैं, दरिद्रता से मुक्त हो सकते हैं।

– बाबा श्री ए नागराज के जीवन–विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन २०१० में उदबोधन पर आधारित (**अध्याय: 1–1.2 , पेज नंबर 31–32**)

- मानव–जाति की छाती के पीपल

आदि–काल से अभी तक हर समुदाय में नर–नारियों में असमानता – ऊपर–नीचे की बात, श्रेष्ठ और नेष्ट की बात, ज्यादा और कम की बात – बना ही रहा है। यह किसी एक समुदाय विशेष की बात नहीं है। हर समुदाय में ऐसा ही रहा है. 'नर–नारियों में असमानता' और 'गरीबी–अमीरी में असंतुलन' आदि काल से मानव–जाति की "छाती के पीपल" बने हुए है। नारी को असमान बनाए रखने के लिए और गरीब को गरीब ही बनाए रखने की विधियों को लेकर के आदमी अभी तक चला है। हर मानव में ये दो जंजाल बने हुए है। यह है भ्रम का विस्तार! यह सोचने का मुद्दा है। **विकल्पात्मक** विधि से इस पर सोचने से निकला – समाधान को यदि हम अध्ययन पूर्वक पाते हैं तो नर–नारियों में समानता आती है। नर और नारी में समानता रूप विधा से आ नहीं सकती, बल विधा से आ नहीं सकती, धन विधा से आ नहीं सकती, पद विधा से आ नहीं सकती। बुद्धि विधा से अर्थात समझदार होने पर ही नर–नारी में समानता का स्वरूप निकलता है।

यदि हर परिवार में समाधान–समृद्धि पूर्वक जीना बन जाता है तो गरीबी–अमीरी में संतुलन होता है। हर परिवार – जिसे चाहे हम आज "गरीब" कहते हों, "अमीर" कहते हों, या "सामान्य" कहते हों – यदि 'समझदारी से समाधान' और 'श्रम से समृद्धि' को प्रमाणित करते हैं तो गरीबी–अमीरी में संतुलन सिद्ध होता है। परिवार में संबंधों को व्यवस्था के अर्थ में पहचानना और व्यवस्था के अर्थ में जीने पर समाधान–समृद्धि का अनुभव होता है। उसके पहले प्रमाण होने वाला नहीं है. इसकी आवश्यकता है या नहीं – यह भी सोचा जाए।

इस धरती पर जितने भी देश हैं, जिसकी सीमाओं पर सेनाएं तैनात हैं – उन सभी के अपने–अपने संविधान हैं। वे सभी एक–एक परम्पराएं हैं। इस तरह मानव कितनी विधियों से जियेगा? इस तरह मानव छतरिया गया है। छतरिया करके कहीं भी टिक नहीं पा रहा है। सर्व–देश में एक ही तरीके से उपयोगी हो, ऐसा मानव बन नहीं पा रहा है। हम सभी देशों में अपने उपयोगी हो पाने के बारे में चाहते अवश्य हैं, पर उस तरह से हम सोच नहीं पाते हैं, प्रमाणित नहीं हो पाते हैं। व्यापार–विधि से मानव सर्व–देश तक पहुंचा है। व्यापार का मतलब है – दूसरे को बुद्धू बना कर, ज्यादा लेना और कम देना। व्यापार को सर्व–देशीय बनाने की कोशिश हुई है। उस तरह जिसके पास ज्यादा धन है – वह ज्यादा शोषण करता है, जिसके पास कम धन है – वह कम शोषण करता है।

व्यापार "कृत्रिम अभाव" के आधार पर होता है. इसमें हर उत्पादक द्वारा किये गए सारे उत्पादन को एक जगह इकठ्ठा करके मनचाहे लाभ के अनुसार बेचने की बात रहती है। अभी हमारे ही देश में जो उत्पादक हैं, कृषक हैं – वे अपने घर की दीवारों पर सफेदी करवा नहीं पाते हैं। और जो व्यापारी हैं – वे चमकते घरों में रहते हैं। क्यों होता है ऐसा करिश्मा!? यह सोचने का मुद्दा है या नहीं? गरीबी और अमीरी में संतुलन आये बिना इस स्थिति का समाधान होगा ही नहीं। गरीबी और अमीरी में संतुलन कैसे होगा? गरीबी और अमीरी का संतुलन समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने की विधि से ही होगा। गरीब के पास भी समाधान का अभाव है। अमीर के पास भी समाधान का अभाव है। समाधान के बिना समृद्धि का अनुभव होता ही नहीं है। समाधान के बाद ही समृद्धि का अनुभव होता है। हर व्यक्ति यदि समझदारी से समाधान प्राप्त करता है तो वह श्रम से समृद्धि को प्राप्त कर ही सकता है। हर व्यक्ति में समाधान का एक ही स्वरूप होता है। हर परिवार में समृद्धि का अपना–अपना स्वरूप होता है। किसी का दो रोटी से पेट भरता है, किसी का चार से पेट भरता है। उसके लिए कोई एक वस्तु का एक मात्रा में उत्पादन करता है, दूर किसी दूरी वस्तु का दूसरी मात्रा में

उत्पादन करता है। दोनों समृद्धि का अनुभव कर सकते हैं। समाधान पूर्वक सभी समृद्धि का अनुभव कर सकते है। यदि दस व्यक्तियों के एक परिवार में समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने का अभ्यास होता है – उससे फिर एक से अनेक परिवार का ऐसे ही जीना बनता है। हम यदि न्याय पूर्वक जियें, समाधान पूर्वक जियें, सुख पूर्वक जियें, समृद्धि पूर्वक जियें – तो हर व्यक्ति ऐसा चाहता है या नहीं, इसका परीक्षण किया जा सकता है।

सह–अस्तित्व विधि से हम अध्ययन कर पाते हैं तो समाधान–समृद्धि हाथ लगता है। प्रचलित–विज्ञान की विधि से हम अध्ययन करते हैं तो अस्थिरता–अनिश्चयता ही हाथ लगता है, उससे सिवाय अपराध करने के दूसरा कोई प्रवृत्ति बनता ही नहीं है। भक्ति–विरक्ति विधि से हम चलते हैं तो भौतिकता को नकारते रहते हैं, जबकि जीने में भौतिकता को ही स्वीकारे रहते हैं। इस तरह भक्ति–विरक्ति विधि से हमारे शिक्षा में, जीने में, और व्यवहार में कहाँ संतुलन होता है? इस तरह संतुलन न भक्ति–विरक्ति विधि से हुआ, न अत्याधुनिक–विज्ञान विधि से हुआ। अत्याधुनिक–विज्ञान यंत्र को सर्वोपरि प्रमाण मानने तक पहुंचा है – मानव को प्रमाण नहीं माना. भक्ति–विरक्ति शास्त्र को सर्वोपरि प्रमाण मानने तक पहुंचा है – मानव को प्रमाण नहीं माना। यही मुख्य बात है. सह–अस्तित्व वादी विधि से शिक्षा व्यवस्था में जीने के अर्थ में है। स्थिरता और निश्चयता के आधार पर है. हम स्थिरता–अनिश्चयता चाहते हैं या अस्थिरता–अनिश्चयता? – इसका भी अपने में परिशीलन करिये. हम यदि स्थिरता–निश्चयता चाहते हैं तो क्या उसे हम पाए हैं या नहीं – इसका भी अपने में परिशीलन करिये। यदि स्थिरता–निश्चयता को पा गए हैं तो उसमे प्रमाणित हैं या नहीं – इसको सोचिये। इस तरह हम सोचते हैं तो अभी तक की शिक्षा की समीक्षा होती है, उसका मूल्यांकन होता है, और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि – अभी तक की शिक्षा निरर्थक है, अपराधिक है, अनिश्चित है, अस्थिर है। इसमें कोई शंका हो, कोई जिज्ञासा हो, कोई प्रश्न हो तो उसको आप सभी मुझसे पूछ सकते है।

आपका कोई प्रश्न नहीं है – उसका मतलब मैं यह नहीं मानता कि आपको यह बात स्वीकार हो गयी है। आप इस बात में पारंगत हो गए – ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। स्वीकार होने पर प्रमाण ही होता है। आप इस बात से सहमत हुए हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

सही बात को “सही” मानना और गलत बात को “गलत”मानना शिक्षा के लिए एक आधारभूत बात है। इसी विश्वास के साथ “मानवीय आचरण रुपी शिक्षा” दी जाती है ताकि समझने वाला “सही” को जान सके और समाधानित हो सके। शिष्टता पूर्वक जीने के लिए शिक्षा है। समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व पूर्वक जीने के लिए शिक्षा है। नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीने के लिए शिक्षा है।

सह अस्तित्ववादी शिक्षा की पहली उपलब्धि है समाधान पूर्वक जीना। दूसरी उपलब्धि है समाधान समृद्धि पूर्वक जीना। तीसरी उपलब्धि है समाधान समृद्धि अभय पूर्वक जीना। जब सार्वभौम रूप में, अथार्त सभी देशों में सभी परिवार समाधान समृद्धि पूर्वक जीते हैं तो अखंड समाज का स्वरूप निकलता है। अखंड समाज ही मानवीय सभ्यता और संस्कृति का धारक वाहक होता है। इसी के साथ मानव का मानव से भय समाप्त होता है। मानव का मानव से भय के समाप्त होने पर सभी देशों की सीमाओं पर लगी सुरक्षा सेनाओं की आवश्यकता निरस्त होती है। इसको हम अच्छी तरह से समझ सकते हैं। इस धरती पर ही नहीं, किसी भी धरती पर यदि मानव हों तो वे सह अस्तित्व विधि से ही अखंड समाज को पायेंगे। सह अस्तित्व विधि से ही परिवार में समाधान समृद्धि को पायेंगे। सह अस्तित्व विधि से ही मानव का वैभव समाधान स्वरूप हैं। स्पष्ट होता है। समाधान समृद्धि ही परिवार का वैभव है। समाधान समृद्धि अभयता पूर्वक ही

समाज का वैभव है। समाधान समृद्धि अभय सह अस्तित्व पूर्वक सार्वभौम व्यवस्था का वैभव है। समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व मूल सत्रू हैं। इन मूल सूत्रों को व्याख्या देने के लिए सह अस्तित्ववादी शिक्षा को प्रस्तुत किये हैं। सह अस्तित्ववादी शिक्षा पूर्वक शिष्टता पूर्वक जीने का स्वरूप निकलता है। जिससे मनमानी समाप्त होती है और मानव जाति के एक सूत्र में जीने की बात आती है। सह अस्तित्व स्वरूप में पारंगत होना, जागृत होना, जीना और प्रमाणित होना ही मानव परंपरा में शिष्टता का स्वरूप है। इसकी जरूरत है या नहीं है इसका परिशीलन किया जाए। इस जरूरत को पूरा करने के लिए कहाँ से शुरू करें? मानव के जीने के रूप में शुरू करें या शिक्षा के रूप में शुरू करें? इसमें मैंने जो समझा है वह है शिक्षा पूर्वक एक व्यक्ति जैसे अनेक व्यक्ति तैयार हो जाते हैं। इसलिए शिक्षा से शुरू किया जाए। मैं स्वयं पूरा समझने के बाद समाधान समृद्धि पूर्वक जिया। मेरे ऐसा जीने से अनेक लोग इस बात को समझने और जीने के लिए तैयार हो गए। मेरे समझाने की विधि में "दक्षिणा विधि" नहीं है। हमारे साथ ज्ञान व्यापार और धर्म व्यापार नहीं है। पहले ऐसा था समझाने वाले ज्यादा थे और सुनने समझने वाले कम थे। अब ऐसा है समझाने वाले कम हैं, सनु ने समझने वाले ज्यादा हो गए हैं। समझाने वालों की संख्या भी अब बढ़ती जा रही है। एक से चार पाँच, फिर चार पाँच से अब सौ लोग समझाने वाले हो गए हैं। अपनी अपनी जगह पर समझ कर जी रहे हैं, समझा रहे हैं। इसके आधार पर हम सोचते हैं, थोड़े ही दिन में हम मानवीय शिक्षा को मानव के मानस पटल पर बैठा देंगे। मानस पटल में बैठने के बाद वह अपने आप से एक से दूसरे में अंतरित होता जाता है। यदि एक परिवार समाधान समृद्ध होते हैं, तो उनका अपनी संतान को समाधान समृद्ध बनाने में क्या तकलीफ होता होगा? दस व्यक्तियों के समझदार परिवार में समाधान समृद्धि का वैभव होता है। ऐसे दस समझदार परिवार एक एक व्यक्ति को अपने में से निर्वाचित करते हैं, जो परिवार समूह सभा को गठित करता है। ऐसे दसों व्यक्तियों का अधिकार समान होगा, उसका कोई एक मुखिया होगा ऐसा नहीं है। इन दसों परिवारों के जीने के पाँचों आयामों शिक्षा संस्कार कार्य, न्याय सुरक्षा कार्य, स्वास्थ्य संयम कार्य, उत्पादन कार्य, विनिमय कोष कार्य में जब भी कोई काम आया उसको पूरा करना, इनका काम रहेगा। जैसे सभी दस परिवार शिक्षा संस्कार में पारंगत हैं या नहीं? उसमें जो कमी है उसको पूरा करना। सभी दस परिवार न्याय पूर्वक जी पा रहे हैं या नहीं?, यदि नहीं जी पा रहे हैं तो उसको पूरा करना। सभी दस परिवार उत्पादन कार्य में प्रवीण हैं या नहीं?, आवश्यक उत्पादन कर पा रहे हैं या नहीं? इसका परिशीलन करना और उसकी कमियों को पूरा करना। सभी स्वास्थ्य को लके र स्वायत्त हैं या नहीं? इसका परिशीलन करना और उसकी कमियों को पूरा करना। व्यवस्था के अर्थ में ही कमियों का आंकलन होता है और उसको पूरा करने के लिए प्रयास होता है। इस तरह एक परिवार से एक परिवार समूह तक पहुँचते हैं। ऐसे दस परिवार समूह मिल कर एक ग्राम परिवार सभा को तैयार करते हैं। ग्राम परिवार सभा में भी यही पाँचों आयाम शिक्षा संस्कार, न्याय सुरक्षा, स्वास्थ्य संयम, उत्पादन और विनिमय काम करते हैं। इन सौ परिवारों के बीच ही विनिमय कोष कार्य पूरा होता है, संतुलित होता है। इसके आगे ग्राम समूह परिवार सभा में दस ग्राम परिवार सभाओं से एक एक व्यक्ति निर्वाचित हो कर पहुँचते हैं। इस प्रकार उत्पादन के दस गाँवों तक पहुँचने की व्यवस्था बनती है। इस तरह हजार परिवारों के बीच संतुलन की व्यवस्था बनती है। इसके आगे दस ग्राम समूह सभाओं से एक एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मंडल परिवार सभा तक पहुँचते हैं। इस तरह दस हजार परिवारों के बीच पाँचों आयामों में संतुलन की व्यवस्था बनती है। इसके आगे दस मंडल सभाओं से एक एक व्यक्ति निर्वाचित हो कर मंडल समूह परिवार सभा तक पहुँचते हैं। दस मंडल समूह परिवार सभा से एक एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मुख्य राज्य परिवार सभा बनता है। इसी विधि से आगे प्रधान राज्य परिवार सभा और विश्व परिवार सभा के होने का प्रावधान है। इस तरह "दश सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था" का स्वरूप निकलता है जिससे विश्व स्तर तक शिक्षा संस्कार, न्याय

सुरक्षा, स्वास्थ्य संयम, उत्पादन और विनिमय कोष कार्यों को व्यवस्था के अर्थ में संपादित किया जाता है, उनमें कमियों को पूरा किया जाता है। व्यवस्था का काम यह है, न कि आदमी को फांसी पर लटकाना, बंदूक दिखा कर बस में रखना। शक्ति केन्द्रित शासन मानव को स्वीकार नहीं है। व्यवस्था ही मानव को स्वीकार होती है। सार्वभौम व्यवस्था के लिए सह अस्तित्ववादी ज्ञान, विवेक, विज्ञान में पारंगत होने की आवश्यकता बनती है। पारंगत होने के लिए शिक्षा विधि ही है। उसके लिए हम छत्तीसगढ़ में कुछ प्रयास कर रहे हैं, आगे चल कर सभी जगह पहुंचेंगे। (**अध्याय: 1–1.2, पेज नंबर 32–39**)

- **समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि**

IIT में fission-fusion में PhD करने वाले विद्यार्थियों ने मुझसे पूछा – "हम यह सब fission-fusion की पढ़ाई क्यों कर रहे हैं?"

मैंने उनको उत्तर दिया – आराम की रोटी खाने के लिए। जहाँ आपको रोटी मिलने का आश्वासन है, आप वही करते हो। लेकिन मैं आपको इतना बता दूँ – जिस बात की रोटी खाने आप जा रहे हो, उसमें आदमी की हैसियत से आप जी नहीं पाओगे। fission-fusion का क्या प्रयोजन है? क्या अपने घर में atom-bomb डालोगे?

कितना बड़ा foundation में हाथ डालने वाला बात है यह! थोड़ा सा सोच के तुम बताओ। कितना भारी खतरा हम मोल लिए हैं! इस खतरे का मुझे ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं है। लोगों को मेरा ऐसा कहना कितना प्रिय–अप्रिय लगता है, इसका मुझे ज्ञान है। प्रिय लगना, अप्रिय लगना के आधार पर तुलन करना जीव–जानवरों के लिए है।

उन्होंने फ़िर पूछा – "इससे कैसे छूटें हम?"

इस पूरे **विकल्प** को पहले अच्छे से समझो – फ़िर समाधान संपन्न होने पर अपने परिवार की आवश्यकताओं से अधिक उत्पादन करने में संलग्न हो जाओ। आपके अभी नौकरी वाले तरीके में "जीना" तो बनेगा नहीं। पैसा जरूर हो सकता है। पैसे से वितृष्णा बढ़ना ही है। जैसे यदि आपके पास २ पैसा हो गया, तो ४ पैसे की प्यास बनता ही है। पैसे से हमको तृप्ति मिलेगी या वस्तु से तृप्ति मिलेगी – इसको तय करो! वस्तु से तृप्ति मिलती है, यह समझ में आता है – तो वस्तु के उत्पादन में लगो!

अभी सबसे बड़ी विपदा यही है – पढने के बाद श्रम नहीं करना है। इस प्रस्ताव को लेकर बुद्धिजीवियों के गले में फांसी यहीं पर लगती है। जितना ज्यादा जो पढ़ा – वह श्रम से उतना ही कट गया। श्रम किए बिना पैसा पैदा करना – वैध है, या अवैध है? आप ही तय करो!

प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम–नियोजन करने से उपयोगिता–मूल्य स्थापित होता है। जैसे – लकड़ी से इस मेज़ को बनाया। इस मेज़ का उपयोगिता–मूल्य इसमें निहित है। इसको बनाने में जो श्रम लगा, उसके आधार पर इसका विनिमय किया जा सकता है। इसी तरह हर उत्पादित–वस्तु का विनिमय उसके लिए नियोजित श्रम के आधार पर किया जा सकता है। श्रम के आधार पर विनिमय करना न्यायिक होगा या पैसे के आधार पर – आप ही तय करो!

मनुष्य की उपयोगिता की वस्तुएं हैं – आहार, आवास, अलंकार, दूर–श्रवण, दूर–दर्शन, और दूर–गमन संबन्धी। इन ६ के अलावा मनुष्य की उपयोगिता की वस्तुएं आप पहचान नहीं पाओगे। इसके अलावा जो वस्तुएं हैं – जैसे युद्ध सामग्री – वे मनुष्य के लिए "उपयोगी" नहीं हैं। अच्छी तरह से देख लेना आप इसको!

व्यापार और नौकरी में "जीने" का कोई स्थान ही नहीं है। व्यापार में आदमी के साथ कम देना, ज्यादा लेना का तौर–तरीका है। इसमें "जीना" कहाँ हुआ? नौकरी में भी वैसा ही है। जीने के बारे में सोचा जाए, या जीने के नकली–साधन (पैसा) के बारे में सोचा जाए? यह सोचने का एक मुद्दा है। जीने में तृप्ति है। जीने के लिए नकली साधन (पैसा) को लेकर सारा समय लगा देना – कहाँ तक न्याय है? भौतिक वस्तुएं जीने के लिए असली साधन हैं। भौतिक–वस्तुएं प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम–नियोजन द्वारा मनुष्य उत्पादित करता है। अभी विश्व के १२% से कम जनसँख्या उत्पादन–कार्य में लगे हैं। यदि हर व्यक्ति अपने श्रम को उत्पादन करने के लिए नियोजित करने का मन बना ले तो वस्तु कितना होगा – आप सोच लो! समाधान–सम्पन्नता पूर्वक बनी आर्थिक–व्यवस्था में वस्तु से समृद्ध होंगे, न कि पैसे से।

समाधान–सम्पन्नता पूर्वक ही परिवार में समृद्धि के साथ जीने का तौर–तरीका आता है। समाधान–सम्पन्नता से पहले आदमी की तरह जीना तो बनेगा नहीं। मध्यस्थ–दर्शन का प्रस्ताव समाधान–संपन्न होने के लिए है।

सुविधा–संग्रह के चक्कर से मुक्त हुआ जाए और अच्छे से जिया जाए। इसके लिए पुनर्विचार ज़रूरी है।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००८, अमरकंटक)

(अध्याय: 1–1.2, पेज नंबर 55–57)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/03/blog-post_7593.html

- आदर्शवाद का विकल्प

सत्य समझ में आने के बाद पता चलता है – "सह–अस्तित्व स्वरूपी सत्य से मुक्त कोई वस्तु है ही नहीं।" यह आदर्शवादी विचारधारा से भिन्न बात है – जिसमें कहा सत्य अलग ही रहता है, जगत अलग ही रहता है। सत्य को "खोजने" की अभ्यास, तप विधियां बता दी। सत्य को जगत से अलग ही बता दिया – उसी में उनके हाथ–पैर टूट गए। "सत्य जगत से अलग ही कोई चीज है" – कोई इस बात को समझा नहीं पाता है, न प्रमाणित कर पाता है। केवल इसको "कहने" मात्र से यह प्रभावित होता नहीं है।

आदर्शवाद ने संवेदनाओं को समाप्त करने के लिए बहुत सारे उपदेश, और अभ्यास–विधियां बताई गयी। समाधि से पहले कोई संवेदनाएं नियंत्रित होती नहीं हैं। समाधि सबको मिलने वाला नहीं है। इस तरह सबके लिए संवेदनाएं नियंत्रित होने के लिए कोई उत्तर आदर्शवाद के पास नहीं है। इसीलिए हम अराजकता के शिकार हो गए। काफी क्षत–विक्षत हो चुके हैं।

पहले इन आदर्शवादी भाषणों के प्रति लोगो की आस्थाएं होती थी। अब आस्था होती नहीं है। अब उन भाषणों पर प्रश्न करना बनता है। "इसको कैसे प्रमाणित किया जाए? इसको कैसे समझा जाए?" असभ्य तरीके से भी लोग प्रश्न करते हैं

– "यह तो बकवास है, इसका रोटी–कपड़ा–मकान से कोई लेन–देन नहीं है।" ये दोनों ध्वनियां हम सुनते ही हैं। आज के समय में आस्थावाद स्थापित होने वाला नहीं है। प्रमाण ही स्थापित होगा। प्रमाण के लिए आपको अपनी सौजन्यता का प्रयोग करना पड़ेगा। प्रमाण के लिए आपकी सौजन्यता ही जिम्मेदार है, और कोई जिम्मेदार नहीं है।

सत्य को समझना = सह–अस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व को समझना। अस्तित्व क्यों है, और कैसा है – यह समझ में आना। कैसा है? – का स्वरूप आपको बताया। क्यों है? – का उत्तर है, प्रकट होने के लिए है। विगत में आदर्शवाद ने कहा था – "ब्रह्म से सब प्रकट है।" यहाँ कह रहे हैं – "ब्रह्म में सब प्रकट है।" व्याकरण–विधि से देखें तो ज्यादा दूर नहीं हैं – बस "में" और "से" का फर्क है। ब्रह्म में सब प्रकट है – इससे "सम्पृक्तता" इंगित है। सम्पृक्तता का मतलब है – जगत डूबा है, भीगा है, घिरा है।

सत्य को जो मैं समझा उसको समझाने के लिए मैंने भाषा का प्रयोग किया। भाषा परम्परा की है। परिभाषाएं मैंने दी हैं। जैसे – "धर्म" एक शब्द है। उसके लिए विगत में आदर्शवाद ने परिभाषा दिया – "धार्यतेति सः धर्मः"। "धारणा" का व्याख्या देते हुए कहा – जिसको पहना जा सकता है, ओढा जा सकता है, उतारा भी जा सकता है। गीता में भी कहा गया है – "सर्वधर्मान परिताज्या मामेकम शरणम रजा"। मतलब – सभी धर्मो को त्याग दो! इस ढंग से हम कहाँ पहुँच गए? धर्म को पहना भी जा सकता है, ओढा भी जा सकता है, और उतारा भी जा सकता है! इसका मतलब – "धर्मान्तरण" हो सकता है! अभी जो "धर्मान्तरण" हो रहा है – उसका आधार यही है।

धर्म वास्तव में क्या है? जिससे जिसका विलगीकरण न हो, वही उसका धर्म है। पदार्थावस्था अस्तित्व–धर्मी है। प्राणावस्था अस्तित्व–सहित पुष्टि धर्मी है। जीवावस्था अस्तित्व–पुष्टि सहित आशा–धर्मी है। मानव ज्ञान–अवस्था में होते हुए, अस्तित्व–पुष्टि–आशा सहित सुख–धर्मी है। सुख की अपेक्षा से मानव को अलग नहीं किया जा सकता।

समाधान = सुख। समाधान कैसे होता है? ज्ञान के अनुरूप फल–परिणाम होने पर समाधान होता है। यह अखंड–समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र–व्याख्या में जीने से होता है।

– जीवन विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन २००६, कानपुर में श्रद्धेय श्री नागराज शर्मा के उदबोधन पर आधारित।

(अध्याय: 1–1.2, पेज नंबर 68–70)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/06/blog-post_8283.html

- **ज्ञान का मतलब है – सहअस्तित्व में अनुभव**

"ज्ञान" का मतलब है – सह–अस्तित्व में अनुभव। और कोई ज्ञान होता नहीं है! प्रचलित–विज्ञान (भौतिकवाद) या आदर्शवाद के अनुसार "ज्ञान" के नाम पर जो प्रतिपादित हुआ, उससे अपराध ही होता है। लोगों ने उसके अनुसार आचरण करके देख लिया – उससे दुर्घटना ही हुई, सद्घटना कोई घटित हुई नहीं। दुर्घटना है – धरती का बीमार होना, प्रदूषण छा जाना, व्यक्तिवाद–समुदायवाद के रूप में अपने–पराये की दूरियां बढ़ जाना।

अस्तित्व में मनुष्य एक सामाजिक–न्यायिक इकाई है। "साथ–साथ होने" की अपेक्षा मनुष्य में सहज है। भौतिकवाद (प्रचलित विज्ञानं) और आदर्शवाद दोनों व्यक्तिवाद की ओर ही ले जाते हैं। व्यक्तिवाद का मतलब है – समानान्तर विचारधाराएं , जो कभी मिलने वाले नहीं हैं। इससे हम एक दूसरे के साथ दूरी बना कर रखने वाले हो गए। दूरी बना कर रखने के कारण हम एक–दूसरे के साथ विश्वास पूर्वक जीने में समर्थ नहीं हुए। लोगों को साथ–साथ लाने के लिए कृत्रिम आधारों की आवश्वकता बन गयी।

भौतिकवाद ने "सुविधा–संग्रह" का कृत्रिम आधार दिया – साथ–साथ लाने के लिए। लेकिन सुविधा–संग्रह का कोई तृप्ति–बिन्दु ही नहीं है। सुविधा–संग्रह लक्ष्य के साथ चलने पर "संघर्ष" (द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध) अवश्यम्भावी हो जाता है। इस तरह भौतिकवाद व्यवहारिक सिद्ध नहीं हुआ।

आदर्शवाद ने "रहस्यमयी ईश्वर" (भक्ति–विरक्ति) का कृत्रिम आधार दिया – साथ–साथ लाने के लिए। रहस्यमयता में ही "कल्याण" का चित्रण किया। रहस्य के प्रति आस्थाएं बनी। अपने–अपने रहस्य के प्रति कट्टरताएं और समुदायवादिता पनपी। समुदायवादिता के साथ "अपना–पराया" जुड़ा ही है। इस तरह आदर्शवाद व्यवहारिक सिद्ध नहीं हुआ।

इस तरह दोनों विधियों से मनुष्यों को साथ–साथ लाने के प्रयास असफल हो गए। दोनों विधियों से प्रयत्न खूब हुआ, लोगों ने पूरा जी–जान लगाए। भक्ति–विरक्ति में तत्कालीन "अच्छे" कहलाये जाने वाले लोग जी–जान लगाए। सुविधा–संग्रह में ज्ञानी–अज्ञानी–विज्ञानी तीनो गोता लगा दिए! इस तरह गोता लगाने पर हम घोर–संकट की स्थिति में पहुँच गए, जब धरती ही बीमार हो गयी। अब पुनर्विचार की आवश्यकता बन गयी। साथ–साथ लाने के कृत्रिम–आधारों पर प्रश्न–चिन्ह लग गया।

पूरा मनुष्य–परम्परा ही सुविधा–संग्रह के चक्कर में उलझा है। पूरा मनुष्य–परम्परा ही भ्रमित है। जैसे कुए में भांग घुल गयी हो – ऐसा स्थिति बन गयी है। अब क्या किया जाए? आप–हम उस जगह में खड़े हैं। आप कुछ भी करो, वही भांग–मिला पानी है। सुविधा–संग्रह के लक्ष्य से हम छूटते नहीं हैं। धरती को ही बीमार कर दिया – तो रहोगे कहाँ पर? इसलिए पुनर्विचार की आवश्यकता है।

पुनर्विचार के लिए मध्यस्थ–दर्शन सह–अस्तित्ववाद "विकल्प" के रूप में प्रस्तुत है। **विकल्प** इसलिए – क्योंकि यह पिछली दोनों विचारधाराओं से जुड़ा नहीं है।

विकल्प के लिए प्रधान मुद्दा है – "ज्ञान" स्पष्ट होना। ज्ञान के मुद्दे पर हम स्पष्ट किए हैं, अध्ययन कराने का वादा किए हैं, अध्ययन होता भी है, आंशिक रूप में आप स्वयं उसमें भागीदारी किए हो – और वह है, सहअस्तित्व स्वरूपी

अस्तित्व का दर्शन होना। सह–अस्तित्व स्वरूप में पूरा अस्तित्व होने का ज्ञान होना। सहअस्तित्व में ही जीवन–ज्ञान होना। सहअस्तित्व में ही मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान होना। यह तीनो समझ में आने से, उससे संतुष्टि मिलने से, उससे तृप्ति मिलने से – "ज्ञान" हुआ।

तृप्ति का पहला घाट है – "मैं सब कुछ समझ गया हूँ।" सह–अस्तित्व में अनुभव होने पर तत्काल स्वयं में यह स्थिति बनती है। इसका नाम है – "दृष्टा पद"।

इस तरह समझदार होने पर स्वयं को प्रमाणित करने की योग्यता आती है। प्रमाणित करना = अन्य व्यक्ति को अपने जैसा समझदार बना देना। प्रमाणित करने का मतलब यही है। इस तरह एक व्यक्ति यदि दस व्यक्तियों को अपने स्वरूप में परिणित करता है – उससे संसार का "उपकार" है। यही "ज्ञान का प्रमाण" है। भौतिकवादी विधि से laboratory में अपने शरीर का प्रतिरूप तैयार कर लेने को "ज्ञान" माना है। ईश्वरवादी विधि में चेले बनाने को ज्ञान का प्रमाण माना है। जो जितना ज्यादा चेले बनाता है – वह उतना "अच्छा" गुरु! इन दोनों के **विकल्प** में यहाँ अनेक व्यक्तियों को अपने जैसा समझदार बना लेने को "ज्ञान का प्रमाण" कह रहे हैं।

"मैं सब कुछ समझ गया हूँ।" – मुझ में यह विश्वास डगमगाने की बात अभी तक आया नहीं है। सन् १९७५ में मैंने यह स्थिति हासिल की थी। तब से आज तक जितनी भी घटनाएं हुई, परिस्थितियाँ आईं – वह जड़ हिला नहीं। "अनुभव–ज्ञान में स्थिरता है" – इस बात को माना जाए या नहीं माना जाए?

मैंने प्रतिपादित किया है – "अस्तित्व स्थिर है, विकास और जागृति निश्चित है।" यह प्रचलित–विज्ञान के अस्थिरता–अनिश्चयता मूलक प्रतिपादन पर कितना बड़ा प्रहार है, आप सोच लो! यह hitting point है – इसको मैं अच्छे से जानता हूँ। hitting इसलिए आवश्यक है, क्योंकि नींद वालों को जगाना आवश्यक है। यह hitting point होते हुए भी इसमें कितना प्यार घुला है – आप सोच लो! प्यार घुला है – इसीलिये मैं सफल हो जाता हूँ। "आदमी बनो, मगरमच्छ मत बनो! मगरमच्छ बनने से धरती को बीमार कर दिया, जो ठीक नहीं हुआ।" – यह प्यार नहीं है, तो और क्या है? क्या इस बात का विरोध भी करना बनता है किसी से? इससे दूर भागना बन सकता है। इससे दूर भागते हैं तो हाथ–पैर ठंडा होना बनता ही है। हाथ–पैर ठंडा होता है तो आज नहीं तो कल इसी दरवाजे पर आयेंगे।

प्रश्न: ज्ञान की पारदर्शीयता से क्या आशय है?

उत्तर: मैं यहीं बैठा हूँ, अभी मैंने आपके सामने सारे विगत की राज–गद्दी, धर्म–गद्दी, व्यापार–गद्दी का समीक्षा प्रस्तुत किया। यह ज्ञान की पारदर्शीयता है या नहीं? अनुभव–मूलक ज्ञान से सभी विगत का समीक्षा हो गया – इसको ज्ञान की पारदर्शीयता कहा जाए या नहीं? मैं यहीं बैठा हूँ, संसार में गया नहीं हूँ, किसी से data collect नहीं किया हूँ। अनुभव होने से अस्तित्व सहअस्तित्व स्वरूप में कैसे है – यह समझ में आ गया। अस्तित्व क्यों है – यह भी समझ में आ गया। सहअस्तित्व में अनुभव के आधार पर मैं अस्तित्व में हर बात का विश्लेषण और समीक्षा प्रस्तुत करता हूँ। इसको ज्ञान की पारदर्शीयता का प्रमाण माना जाए या नहीं?

आप मेरा उदाहरण देखो – मैंने बिना कुछ आधुनिक संसार की पढ़ाई किए समग्र अस्तित्व का ज्ञान हासिल किया है। आधुनिक संसार की पढ़ाई की कौनसी सार्थकता है, जो मेरे दर्शन में नहीं आयी है? इसको ज्ञान की पारदर्शीयता माना जाए या नहीं माना जाए?

मैं किसी भी घटना को देखने जाता हूँ तो मुझे वह घटना–परिस्थिति तो समझ में आता ही है, उससे ज्यादा भी समझ में आता है। उस घटना या परिस्थिति के समाधान तक पहुँच जाता हूँ मैं। इसको ज्ञान की पारदर्शीयता माना जाए या नहीं माना जाए? मुझ में यह qualification साधना–समाधि–संयम पूर्वक अनुभव–संपन्न होने पर आया। उससे पहले यह qualification मुझ में नहीं था। यह qualification सभी में हो, उसी के लिए मध्यस्थ–दर्शन के अध्ययन का प्रस्ताव है।

सह–अस्तित्व में अनुभव पूर्वक हम ज्ञान के प्रति पारदर्शी हो जाते हैं।

प्रश्न: ज्ञान की पारदर्शीयता का क्या फायदा हुआ?

उत्तर: इससे नकारात्मक और सकारात्मक का नीर–क्षीर न्याय होता है। सकारात्मक भाग मानव के "जीने" में आता है। नकारात्मक भाग अपराध में जाता है। नकारात्मक भाग को मैंने "अपराध" नाम दिया है। तात्विक रूप में नकारात्मक और सकारात्मक दोनों घटनाएं ही हैं। नकारात्मक घटनाओं में कोई क्रम–बद्धता नहीं होती। सकारात्मक घटनाएं एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी क्रम–वत जुड़ते चले जाते हैं। इन दोनों में यही अन्तर है।

प्रश्न: ज्ञान की पारगामियता से क्या आशय है?

उत्तर: स्वयं में समझ के आधार पर जब मैं अस्तित्व की व्याख्या प्रस्तुत करता हूँ, तो आप में समझने की इच्छा पैदा होता है। ज्ञान एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में transfer होता है। यही ज्ञान की पारगामियता का प्रमाण है। मेरा प्रतिरूप यही है। जीवन का प्रतिरूप होता है – न कि शरीर का! अनुभव मूलक ज्ञान का प्रतिरूप होता है। यह सिद्धांत है। विज्ञानी जो शरीर का प्रतिरूप बनाने में लगे हैं, वह कितना व्यर्थ है – आप सोच लो!

प्रश्न: ज्ञान की पारगामीयता से क्या फायदा हुआ?

उत्तर: इससे उपकार की विधि निकल गयी। समझे हुए को समझाना, सीखे हुए को सिखाना, किए हुए को करना – यही उपकार है। ज्ञान की पारगामियता है – तभी समझा हुआ व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को समझाने में समर्थ हो सकता है। ज्ञान की पारगामियता है – तभी तो शिक्षा विधि से ज्ञान का लोकव्यापीकरण सम्भव है।

जब कोई व्यक्ति मेरे सम्मुख प्रस्तुत होता है तो वह ऐसे क्यों प्रस्तुत हो रहा है, यह मुझे तुंरत समझ में आ जाता है। फ़िर उसको कैसे समझाना है, उसका design मुझमें अपने आप से निकल आता है। वह design सफल हो जाता है। इसमें मुझे कोई श्रम नहीं करना पड़ता – यह स्वयं–स्फूर्त रूप में हो जाता है। ज्ञान पारदर्शी है, पारगामी है – तभी यह सम्भव है।

ज्ञान पूर्वक ही मनुष्य भ्रम–मुक्ति, अपने–पराये से मुक्ति, और अपराध–मुक्ति को पाता है। सकारात्मक रूप में कहें तो – सर्वमानव को एक जाति के रूप में पहचानना बनता है। "मानव जाति एक है" – यह पहचानना अनुभवमूलक ज्ञान से ही

बन पाता है। और किसी विधि से बनता होगा तो आप बताओ! "मानव जाति एक है" – यह पहचानना किसी मशीन से सम्भव हो, तो बताओ! "मानव जाति एक है" – यह रहस्य विधि से पहचानना सम्भव हो, तो आप बताइये!

सहअस्तित्व में अनुभव ही ज्ञान है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति स्वरूपी अस्तित्व क्यों है, और कैसा है – इसका उत्तर स्वयं में स्थापित होना ही अनुभव है। सऊर से जीने की शुरुआत यहाँ से है। इसके अलावा दूसरे किसी विधि से बात बन नहीं पा रही है।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००८, अमरकंटक) (**अध्याय: 2–2.1, पेज नंबर 129–134**)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/03/blog-post_26.html

- सत्यापन

प्रश्न: यह जो आप–हमारे बीच में जो खाली स्थली है, यह "सत्ता" है – ऐसा मुझसे बोलना नहीं बन रहा है।

उत्तर: – पहले बोलना ही बनता है, फिर समझा हुआ को समझाना बनता है, फिर जिया हुआ को जीने के रूप में प्रमाणित करना बनता है। यही क्रम है। मैं भी इसी क्रम से गुजरा हूँ। इससे ज्यादा क्या सत्यापन होगा? इससे कम सत्यापन में काम चलेगा नहीं। ऐसी बात है यह!

प्रकृति जड़ ओर चैतन्य स्वरूप में है। जड़ है – भौतिक ओर रासायनिक क्रियाकलाप। चैतन्य है – जीवन। रासायनिक क्रियाकलाप हरियाली के रूप में तथा जीव–शरीरों ओर मानव–शरीरों के रूप में हमे प्राप्त है। इनको बनाने में मानव का कोई हाथ नहीं है। परमाणु में विकास हो कर गठन–पूर्णता के रूप में हर जीवन है। गठन–पूर्णता के फलन में हर जीवन "जीने की आशा" से संपन्न है। मानव–परंपरा में भी वैसा ही "जीने की आशा" से संपन्न जीवन है। उसके बाद है – विचार, इच्छा, संकल्प, और उसके बाद है – प्रमाण। अभी साढ़े–चार क्रिया में मानव आशा–विचार–इच्छा की सीमा में है। यह सम्पूर्ण जड़–चैतन्य प्रकृति सत्ता (व्यापक–वस्तु) में ही संपृक्त है। व्यापक–वस्तु जड़–प्रकृति में ऊर्जा है, जिससे जड़–प्रकृति (भौतिक–रासायनिक वस्तुओं में) में चुम्बकीय बल सम्पन्नता है। व्यापक वस्तु ही चैतन्य–प्रकृति में ज्ञान है. व्यापक वस्तु ही मानव–परंपरा में ज्ञान रूप में प्रकट है। ज्ञान ही मानव में ऊर्जा है. ज्ञान की ताकत पर ही मानव अपने वैभव को बनाए रख सकता है। इसको छोड़ कर मानव अपराध को विधि मान कर नाश के काम करेगा ही. संपृक्तता का मतलब यह है। यह बात समझ में आने से आगे की बात हो सकती है।
जड़–प्रकृति में ऊर्जा–सम्पन्नता वश क्रियाशीलता है। चैतन्य–प्रकृति (जीवन) का मानव–परंपरा में आशा से विचार, विचार से इच्छा, इच्छा से संकल्प, और संकल्प से प्रमाण तक पहुँचने की बात है। इस तरह साढ़े चार क्रिया से दस क्रिया तक पहुंचना हर मानव की जिम्मेदारी है। जब इच्छा हो तब पहुँच सकते हैं। उसी के लिए हमने मार्ग प्रशस्त कर दिया है। मैंने किसी चीज को निर्मित नहीं किया है। केवल "जो है" उसको स्पष्ट किया है। स्पष्ट होने पर हम अच्छी तरह से जी सकते हैं। स्पष्ट होने की परिपूर्णता ही "अनुभव" है। अनुभव पूर्वक हम अच्छी तरह से जी सकते हैं। अच्छी तरह जीने का स्वरूप है – समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व।

जिसको मैंने पता लगाया है, इसको समझने के लिए क्या हमको किसी आइंस्टीन को पढ़ना है? प्रचलित विज्ञान के साथ हम जिस जगह पहुँच गए हैं, कितनी विलक्षण बात है। ऊर्जा को हम समझे नहीं हैं, और "ऊर्जा" का नाम लेते हैं! ये विज्ञानी ऊर्जा को एक "प्रतिक्रिया" के रूप में ही पहचाने हैं। जैसे – एक लकड़ी का जलना। इसमें जलने को ऊर्जा माना। जबकि वास्तविकता है – एक जलाने वाली वस्तु थी, एक जलने वाली वस्तु थी, इसलिए जलने की घटना हुई। जलने को ऊर्जा माना। जलने से पहले जो लकड़ी और वायु थी – उसको ये जड़ (ऊर्जा–विहीन) मानते हैं। विज्ञानी वैभव को ऊर्जा–विहीन मानते हैं, नाश करने को ऊर्जा मानते हैं। इस तरह विज्ञान द्वारा ऊर्जा को प्रतिक्रिया मानना केवल ह्रास की ओर ले गया। आप इसको हर जगह में, जिसको applied science मानते हैं, जांच करके देखिये।

जिस स्वरूप में मैंने ऊर्जा को पहचाना, वह प्रभाव रूप में विकास–क्रम, विकास, जाग्रति–क्रम, जाग्रति को प्रगट कर चुका है। उस ऊर्जा को आइंस्टीन नहीं पहचाना। आप बताइये – क्या मैं ऐसा कहने योग्य हूँ या नहीं हूँ? ऊर्जा को इस तरह पहचाने बिना मानव अपनी पहचान कर नहीं सकता। यदि मानव अपनी पहचान कर नहीं सकता, तो जियेगा कैसे? ऐसे बिना पहचान के लकडबग्घा जैसे ही जियेगा, और उससे जो होना है वह हो जाएगा। मैंने अस्तित्व की स्थिरता और निश्चयता को जो स्पष्ट किया है, वह विज्ञानियों के सामने प्रकट नहीं है, ऐसी बात नहीं है। लेकिन जब उसी को वे देखे तो कैसे उसको अस्थिर–अनिश्चित मान लिए? उस सोच ने आदमी–जात को कहाँ पहुंचाया – सोच लो! यदि विज्ञान की सोच ही चाहिए, तो आप विज्ञान को ही अपनाओ। यदि नहीं तो **विकल्प** का अध्ययन करो।

प्रश्न: तो आप यथास्थिति को बताते हैं, आवश्यकता को बताते हैं, फिर हमारी इच्छा पर छोड़ देते हैं?

उत्तर: **विकल्प** को अपनाना स्वेच्छा से ही होगा। हम किसी को आग्रह करने वाले नहीं हैं। इच्छा हो तो अपनाओ, नहीं तो जो आप कर रहे हैं – वही ठीक है। उपदेश–विधि को मैंने अपनाया नहीं है। जबकि अनुसंधान से पहले मैं उपदेश–परंपरा से ही था।

संपृक्तता को समझना इस बात का आधार है। यदि संपृक्तता समझ आती है, तो आगे सभी कुछ समझ में आ जाता है।

– श्री ए नागराज के साथ संवाद पर आधारित (मई २००७, अमरकंटक) (अध्याय: 2–2.3 , पेज नंबर 219–222)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2011/11/blog-post_24.html

- अध्ययन की शुरुआत

हर परस्परता के बीच जो हमारी आँखों से खाली–स्थली जैसा दिखता है, वह सत्ता ही है। यह खाली नहीं है – यह ऊर्जा है। यह ऊर्जा सभी वस्तुओं में पारगामी है। पत्थर में, मिट्टी में, पानी में – सभी वस्तुओं में यह पारगामी है। एक परमाणु–अंश से लेकर इस विशाल धरती तक सभी वस्तुओं में यह पारगामी है।

वस्तुओं की ऊर्जा–सम्पन्नता ही सत्ता की पारगामीयता की गवाही है।

मानव में यह ऊर्जा–सम्पन्नता ज्ञान के रूप में होता है। यह ज्ञान है – ४ विषयों (आहार, निद्रा, भय, मैथुन) का ज्ञान, ५ संवेदनाओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का ज्ञान, ३ ईश्नाओं (पुत्तेष्णा, वित्तेष्णा, लोकेषणा) का ज्ञान, और उपकार का ज्ञान। इन १३ शीर्षों में मनुष्य के पास ज्ञान "करने" के रूप में आता है। इन १३ शीर्षों के अलावा मनुष्य और कुछ कर भी नहीं सकता। जिसका ज्ञान होता है, वही हम कर पाते हैं। ४ विषयों का हमें ज्ञान है, इसलिए हम उन विषयों का उपयोग कर पाते हैं। ५ संवेदनाओं का हमें ज्ञान है, तभी उन संवेदनाओं को हम पहचान पाते हैं।

समझना ही ज्ञान है। ज्ञान ही मनुष्य के करने में आता है।

४ विषयों की बात जीव–संसार में "करने" के रूप में है। जीव–जानवर ४ विषयों को भोगते रहते है, उसी के अर्थ में उनकी ५ संवेदनाएं काम करती रहती हैं। जैसे – आहार विषय के लिए शेर गंध इन्द्रिय का प्रयोग करता है। मनुष्य संवेदनाओं के आधार पर विषयों को पहचानता है। जैसे – मनुष्य जीभ से अच्छा लगने के लिए आहार ढूंढता है। मनुष्य और जीव–जानवरों में यह फर्क हुआ। मनुष्य ने संवेदनाओं के आधार पर ही सर्वप्रथम ज्ञान को स्वीकारना शुरू किया।

मनुष्य ने इन्द्रियों को राजी रखने के लिए ज्ञान को स्वीकारना शुरू किया। क्यों शुरू किया? सुखी होने के लिए। मानव का अध्ययन इसी बिन्दु से शुरू होता है।

इस विधि से जब हम अध्ययन करने जाते हैं, तो यह विगत के किसी भी प्रस्ताव से जुड़ता नहीं है। विगत में हम जो कुछ भी किए – अच्छा, बुरा, खरा, खोटा – उसका screen ही ख़त्म। अध्ययन का reference यह हुआ, न कि विगत का कोई अवशेष!

विगत से आपके पास मानव–शरीर है, और भाषा (शब्द–संसार) है। और विगत का कोई पुच्छल्ला इस प्रस्ताव के अध्ययन के लिए आपको नहीं चाहिए। शब्द/भाषा विगत से है – परिभाषाएं इस प्रस्ताव की हैं। परिभाषाएं ज्ञान के अर्थ में हैं।

यहाँ से आप अध्ययन शुरू करिए।

मानव का अध्ययन में हम चलें तो पहली बात आती है – यह शब्द, स्पर्श, गंध, रूप, रस इन्द्रियों का ज्ञान किसको होता है? शरीर को यह ज्ञान होता है, या शरीर के अलावा किसी चीज़ को होता है?

विगत में ज्ञान–ज्ञाता–ज्ञेय ब्रह्म को ही बताया था। साथ ही ब्रह्म को अव्यक्त और अनिर्वचनीय बता कर रास्ता बंद कर दिया था।

उसके **विकल्प** में यहाँ प्रस्तावित है – ज्ञान व्यक्त है और ज्ञान वचनीय भी है। ज्ञान को हम समझ सकते हैं, और समझा भी सकते हैं। ज्ञान का मतलब ही यही है – जिसे हम समझ भी सकें, और समझा भी पाएं। ज्ञान शरीर को नहीं होता। ज्ञान जीवन को होता है। जीवन ही ज्ञाता है। इन्द्रियों से भी जो ज्ञान होता है वह जीवन को ही होता है। जीवन ही समझता है। जीवन ही जीवन को समझाता है।

प्रश्न: विगत ने हमको क्या दिया फ़िर?

उत्तर: विगत में आदर्शवाद ने हमको शब्द–ज्ञान दिया – जिसके लिए उनका धन्यवाद है। फ़िर भौतिकवाद ने हमको कार्य–ज्ञान दिया – उसके लिए उनका धन्यवाद है। इन दोनों से मनुष्य को जो ज्ञान हुआ वह पर्याप्त नहीं हुआ। कुछ और समझने की ज़रूरत बनी रही। इसकी गवाही है – धरती का बीमार होना।

धरती क्यों और कैसे बीमार हो गयी, और यह ठीक कैसे होगी – इसके लिए जो ज्ञान चाहिए वह आदर्शवाद और भौतिकवाद दोनों के पास नहीं है।

यही मध्यस्थ–दर्शन के अध्ययन का reference point है। तर्क–संगत होने के लिए, व्यवहार–संगत होने के लिए, अपने–आप का मूल्यांकन करने के लिए, और स्वयं का अध्ययन करने के लिए – यही reference point है। अध्ययन के लिए इस reference point को अपने में अच्छे से स्थिर बनाना चाहिए, वरना हम बारम्बार वही पुराने में गुड–गोबर करने लगते हैं।

इस तरह – इस **विकल्प** को सोचने के लिए, अध्ययन करने के लिए हमारे पास एक आधार–भूमि तैयार हुई।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अगस्त २००६, अमरकंटक) **(अध्याय: 3–3.1, पेज नंबर 223–225)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/06/blog-post_30.html

- **मानव जाति में मनः स्वस्थता की रिक्तता को भरने के लिए यह विकल्प प्रस्तुत हुआ है.**

समझने के बारे में मुख्य मुद्दा यह है – "पढ़ना समझना नहीं है।" पढ़ने पर "सूचना" होता है। अर्थ की सूचना जब आता है तो उस अर्थ के मूल में अस्तित्व में वस्तु होता है। अस्तित्व में वस्तु पहचान में आया तो समझ में आया। जैसे – "पानी" एक शब्द है। पानी अस्तित्व में एक वस्तु है। "पानी" शब्द से प्यास बुझता नहीं है। पानी वस्तु से ही प्यास बुझता है। इसी प्रकार हर शब्द का अर्थ है। उस अर्थ के मूल में अस्तित्व में वस्तु है। वस्तु समझ में आने से हम समझे।

अभी तक मनुष्य के इतिहास में मनुष्य कैसा है, क्यों है – इसका अध्ययन नहीं हुआ था। दूसरे समग्र अस्तित्व कैसा है, क्यों है – इसका अध्ययन नहीं हुआ था। समग्र अस्तित्व और मानव का अध्ययन न होने से समग्र अस्तित्व में मानव की क्या भागीदारी हो, यह समझ में नहीं आया था। यह न भौतिकवादी विधि से समझ में आया था, न ईश्वर–वादी विधि से समझ आया था। मध्यस्थ–दर्शन दो इन दोनों के **विकल्प** स्वरूप में आया – उससे मानव का अध्ययन और अस्तित्व का अध्ययन दोनों सम्भव हो गया।

मानव और अस्तित्व क्यों है, और कैसा है? – इसका पूरा ज्ञान मैंने प्राप्त कर लिया। क्यों है? – इससे "रहने" का उत्तर आता है। कैसे है? – इससे "होने" का उत्तर आता है। मानव कैसे है? – इसका उत्तर है, अस्तित्व में प्रकटन विधि पूर्वक मानव धरती पर प्रकट "होना" हुआ। मानव क्यों है? – इसका उत्तर है, मानव के "रहने" का प्रयोजन है – समाधान, समृद्धि, अभय, और सह–अस्तित्व पूर्वक "रहना"। "होना" और "रहना" समझ में आने के लिए ही अध्ययन है। अध्ययन से समझ, और समझ से जीना।

इस पर प्रश्न बनता है – अभी तक मनुष्य क्या जीता नहीं रहा क्या? इसका उत्तर है – अभी तक मनुष्य जीव–चेतना में जिया है। मानव–चेतना में जिया नहीं है। जीव–चेतना में होते हुए भी मनुष्य जीवों से अच्छा जीने का सोचा, क्योंकि मानव को कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता बिरासत में मिला ही था। कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता के चलते मनुष्य ने सामन्याकान्क्षा और महत्त्वाकांक्षा संबन्धी सभी वस्तुओं को प्राप्त कर लिया। इस तरह मानव अपने परिभाषा के अनुरूप मनाकार को साकार करने के चौखट में आ गया। मनः स्वस्थता का चौखट टटोला तो पता चला – वीरान पड़ा है! मनः स्वस्थता के पक्ष में मानव–जाती bankrupt है। मनाकार को साकार करने के पक्ष में हम समृद्ध हैं। यह कुल मिला कर अभी तक के मानव के जिए होने की समीक्षा हुई। मनुष्य जाति द्वारा बिना मनः स्वस्थता को प्रमाणित किए मनाकार को साकार करने के क्रम में ही धरती बीमार हुई। धरती के बीमार होने से जो प्रश्न–चिन्ह मानव–जाति के सम्मुख लग गया है – उसी के उत्तर में मध्यस्थ–दर्शन का **विकल्प** है। यह **विकल्प** मानव–जाति के मनः स्वस्थता की रिक्तता को भरने के लिए ही प्रकट हुआ है। – बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७, अमरकंटक) **(अध्याय: 3–3.1, पेज नंबर 232–233)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/08/blog-post_7201.html

- **समझ के करो!**

हमारे पूर्वजों ने – ऋषि, महिषी, सिद्ध, महापुरुषों ने – अनेक तरह की "अभ्यास विधियां" सुझाई जिसमें "करके समझो!" वाली बात को प्रस्तावित किया गया। इन अभ्यास–विधियों को "तप" माना। "तप" के लोकसुलभ होने का कोई रास्ता वे निकाल नहीं पाये।

अब उनके **विकल्प** में यहाँ मेरा प्रस्ताव है – "समझ के करो!"

इससे trial and error की कथा समाप्त हो गयी। trial and error वाला मार्ग uneconomical भी हो सकता है। "समझ के करो" का मार्ग economical है।

"समझ के करो" वाले मार्ग में "छोड़ने–पकड़ने", "त्याग–वैराग्य" का कोई झंझट ही नहीं है। पहले समझ लो, फ़िर decide करो – क्या छोड़ना है, क्या पकड़ना है। समझने के बाद क्या आवश्यक है, क्या अनावश्यक है – यह स्वयं में विश्लेषित हो जाता है। आवश्यक को पकड़ना, या पकड़े रहना होता है। अनावश्यकता को छोड़ना होता है। "त्याग" की परिभाषा ही है – "अनावश्यकता का विसर्जन"।

तर्क विधि से यह प्रस्ताव पूरा पड़ता है। व्यवहारिक विधि से इसके पूरा पड़ने के लिए आपको इसे समझना ही पड़ेगा। और दूसरा कोई रास्ता नहीं है। यदि समझ में आ गया तो आपसे छूटने वाली कोई बात नहीं है। यदि समझ में आ गया है – तो आपसे कुछ miss क्यों होगा?

"समझ" शब्द स्वयं (जीवन) में जागृति हो जाने को ही इंगित करता है। उससे पहले "सुनी हुई बात" ही है।

समझ "ज्यादा" और "कम" की उपाधियों से मुक्त है। "समझे हैं" या "नहीं समझे हैं" – इतना ही है।

भास, आभास, प्रतीति, अनुभूति ही क्रम से श्रवण (सुनना), मनन, साक्षात्कार–बोध (अवधारणा) एवं अनुभव है। अनुभव के पहले हम "समझ गया" यह कहना बनता नहीं। अनुभव के बिना प्रमाण नहीं है।

सह–अस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व को समझना, और जीवन को समझना। ये दोनों यदि समझ में आता है, तो बाकी सब उससे अपने आप निकल आता है।

दृष्टा समझ में आने पर दृश्य स्पष्ट होता है। जीवन ही दृष्टा है। जीवन ४.५ क्रिया में कितने भाग का दृष्टा है, और १० क्रिया में कितने भाग का दृष्टा है – यह मध्यस्थ–दर्शन में स्पष्ट किया गया है। ४.५ क्रियाओं द्वारा जीवन संवेदनाओं का दृष्टा रहता है। १० क्रिया के साथ जीवन सह–अस्तित्व में दृष्टा है।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अगस्त २००६, अमरकंटक) **(अध्याय: 3–3.1, पेज नंबर 239–240)**

https://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/08/blog-post.html

- **सूचना, अध्ययन, अनुभव, प्रमाण**

संवाद का उद्देश्य है – सह–अस्तित्व वस्तु को देखने के लिए 'सूचना' मिल जाए. सूचना के पठन के बाद अध्ययन के अलावा दूसरा कोई मार्ग नहीं है. अध्ययन के बाद अनुभव के अलावा और कोई मार्ग नहीं है. अनुभव के बाद प्रमाण के अलावा और कोई मार्ग नहीं है. मंजिल यही है. अध्ययन की अवधि होती है. अनुभव की अवधि होती है. प्रमाण की कोई अवधि नहीं है. अनंत तक प्रमाण है. अध्ययन करने में, अनुभव करने में समय लगता है – चाहे छोटा से छोटा समय क्यो न हो. प्रमाण के लिए कोई समय नहीं है. प्रमाण निरंतर है. दूसरे अध्ययन में ही जो समय लगता है, वह लगता है. अध्ययन के बाद अनुभव में नगण्य, अत्यल्प समय लगता है. उसके बाद प्रमाण तो कभी समाप्त ही नहीं होता.

अभी तक भौतिकवादी विधि से या आदर्शवादी विधि से अध्ययन नहीं हो पाया था. भौतिकवादी विधि में पहले पठन है, फिर प्रयोग है. आदर्शवादी विधि में श्रवण या पठन के बाद साधना है. साधना में मौन अंतिम बात हुई. इस तरह भौतिकवादी या आदर्शवादी विधि से मानव के जीने में प्रमाण तक पहुँचने का रास्ता नहीं मिला. प्रयोग कोई जीने की जगह नहीं है. मौन कोई जीने की जगह नहीं है.

मध्यस्थ दर्शन के **विकल्पात्मक** विधि में है – सूचना, अध्ययन, अनुभव, फिर प्रमाण. उपलब्धि प्रमाण ही है.

– श्री ए नागराज जी के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७) (**अध्याय: 3–3.1, पेज नंबर 254–255**)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2011/12/blog-post_02.html

- **अनुभव करना, अनुभव कराना हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है।**

दर्शन, वाद, शास्त्र के रूप में जो मैंने वांग्मय लिखा है, वह मेरा अनुभव–मूलक विधि से किया गया चित्रण है – जो आपके लिए सूचना है। सूचना का पठन अध्ययन नहीं है। पठन अध्ययन की पृष्ठ–भूमि है। जीवन में तदाकार–तद्रूप होने का गुण रखा हुआ है। उसके आधार पर अध्ययन विधि में अस्तित्व की वास्तविकताओं के साथ तदाकार होते हैं। वास्तविकताओं से तदाकार होना ही साक्षात्कार है। चित्त में साक्षात्कार होते तक अध्ययन है।

प्रश्न: क्या साक्षात्कार होना है?

उत्तर: पहले सह–अस्तित्व साक्षात्कार होना। सह–अस्तित्व में जीवन साक्षात्कार होना। सह–अस्तित्व में मानवीयता पूर्ण आचरण साक्षात्कार होना। अध्ययन से ये तीनो भाग का साक्षात्कार होना हुआ। साक्षात्कार पूर्ण होने के बाद बुद्धि में बोध होना स्वाभाविक है। साक्षात्कार पूर्ण हुआ है – इसका प्रमाण है, बुद्धि में बोध होना।

प्रश्न: साक्षात्कार पूर्ण होने के "बाद" बुद्धि में बोध होता है, या साक्षात्कार होने के "साथ–साथ" बुद्धि में बोध होता है?

उत्तर: साक्षात्कार पूर्ण होने के बाद बुद्धि में बोध होता है। अधूरे को बुद्धि स्वीकारता नहीं है। जब कभी भी बोध होगा – पूर्णता के साथ ही होगा। पूर्णता के बारे में आपको बताया – गठन–पूर्णता, क्रिया–पूर्णता, आचरण–पूर्णता। जीवन गठन–पूर्ण परमाणु के स्वरूप में साक्षात्कार होने के पहले कोई बोध नहीं होगा। सार रूप में – गठन–पूर्णता, क्रिया–पूर्णता, आचरण–पूर्णता साक्षात्कार होने के बाद बुद्धि में सह–अस्तित्व बोध हो जाता है।

बोध होने के बाद तत्काल ही आत्मा में अनुभव होता है, उसमें कोई देर नहीं लगती। उसके बाद अनुभव मूलक विधि से बुद्धि में अनुभव–प्रमाण बोध, प्रमाण–बोध के आधार पर संकल्प, संकल्प के आधार पर चिंतन, और चिंतन के आधार पर चित्रण।

अध्ययन तक पुरुषार्थ है। अनुभव के बाद अभ्यास है। अनुभव मूलक अभ्यास का स्वरूप है – समाधान–समृद्धि पूर्वक जीना। अनुभव मूलक जीने से "अखंड समाज" स्वरूप में अभय, तथा "सार्वभौम व्यवस्था" स्वरूप में सह–अस्तित्व प्रमाणित होता है।

अनुभव होने के बाद अनुभव–आकाश में जो देखने/समझने का लक्ष्य बनता है, उसको देखा जा सकता है। यह लक्ष्य अनुभव के पहले भी बन सकता है, अनुभव के बाद भी बन सकता है। जैसे – मेरा लक्ष्य बना, जीवन–परमाणु के अंशों को गिनना, उसके आचरणों को अलग–अलग पहचानना।

मुझे समाधि–संयम पूर्वक अनुभव हुआ। संयम के पहले मुझे कोई अनुभव नहीं हुआ। अनुभवगामी विधि में (अध्ययन विधि) में जो हम अध्ययन कराते हैं, उसमें समाधि को bypass किए हैं। सीधे–सीधे संयम–काल में मुझे जो अध्ययन हुआ, वह आपको अध्ययन करा रहे हैं। यह बात आपको समझ में आता है या नहीं आता है, मैं नहीं कह सकता! यह बात आपको समझ में आता है तो अध्ययन के प्रति आपका गंभीर होना बन जाता है। समाधि–संयम का जो फल मुझे मिला उसको मैं मानव–जाति को संप्रेषित कर रहा हूँ। क्या ग़लत कर रहा हूँ? आप ही बताओ!

अनुभव में सम्पूर्ण अस्तित्व आ जाता है। अनुभव के अलावा कुछ बचता ही नहीं है। इस तरह अनुभव के बाद हर व्यक्ति "सर्वज्ञ" हो जाता है। संयत भाषा में कहें तो – अनुभव मूलक विधि से मनुष्य न्याय–धर्म–सत्य को प्रमाणित करता है। अनुभव करना, अनुभव कराना हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है।

प्रश्न: अनुभव कराने के लिए क्या करोगे?

उत्तर: अध्ययन के लिए प्रेरणा देंगे। अपने जीने में अनुभव–प्रमाण को प्रस्तुत करेंगे। प्रेरणा और प्रमाण पूर्वक दूसरे व्यक्ति में अनुभव के लिए मार्ग प्रशस्त होता है। प्रमाण के बिना प्रेरणा सफल नहीं होता। प्रमाण मानव–परम्परा में शरीर के साथ ही होगा। इसी लिए शरीर की आवश्यकता है। अकेले जीवन (बिना शरीर के) प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकता। अपने में संतुष्ट जरूर रह सकता है। सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी है। शरीर भी सह–अस्तित्व में तैयार हुआ है। जीवन भी सह–अस्तित्व में तैयार हुआ है।

सह–अस्तित्व सीमित नहीं है। व्यापक वस्तु सीमित नहीं है। सह–अस्तित्व और व्यापक वस्तु का ज्ञान भी सीमित नहीं है। इसमें अनुभव करने के लिए हर व्यक्ति में प्यास है, कुछ में जिज्ञासा है – ऐसा मैं मानता हूँ। इस प्यास और जिज्ञासा को उत्तरित करने के लिए मध्यस्थ–दर्शन के अध्ययन करने का प्रस्ताव है। इस प्रस्ताव की रोशनी में धरती में प्रचलित सभी राज्य और धर्म संविधानों की निरर्थकता समीक्षित हो गयी।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (दिसम्बर २००८, अमरकंटक) **(अध्याय 3–3.1:, पेज नंबर 267–266)** http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/04/blog-post_16.html

- **अध्ययन में गति पूर्व स्थितियों को छोड़कर ध्यान देने से बनता है**

प्रश्न: हम समझने में अटक कैसे जाते हैं? सीधे–सीधे समझ क्यों नहीं आ जाता?

उत्तर: इसका कारण है – पूर्व स्मृतियाँ। मनुष्य के पास जीवन में पूर्व स्मृतियाँ रहते ही हैं। हम जब मानव–चेतना संबन्धी बात का अध्ययन करना शुरू करते हैं, उसमें जब कभी भी विमुखता आती है – वह पूर्व–स्मृतियों के इसके विपरीत होने से होती है। पूर्व–स्मृतियों के इसके अनुकूल होने पर यह continue होता है।

प्रश्न: जीव–चेतना में जी हुई पूर्व–स्मृतियाँ इसके अनुकूल कैसे हो सकती हैं?

उत्तर: पूर्व–स्मृतियों में हमारी शुभ के लिए "सहज–अपेक्षा" को लेकर भी हमारी स्मृतियाँ हैं। उसमें काहे को कंजूसी करें? हर व्यक्ति के पास शुभ के पास जाने का रास्ता, चाहे छोटा हो, पतला हो, संकीर्ण हो – पर बना हुआ है। संवाद करते हुए, शुभ के लिए सहज–अपेक्षा से जुडी स्मृतियों पर ध्यान दिलाने की आवश्यकता है। प्रतिकूल पूर्व–स्मृतियों को आगे बिछाने से हम अटक जाते हैं।

इस आधार पर मैंने यह निष्कर्ष निकाला – यदि हम मानव–चेतना संबन्धी बात शुरू करते हैं, तो पीछे की जीव–चेतना संबन्धी बातों को लेकर जितनी भी स्मृतियाँ हैं, उनको थोड़ी देर के लिए रोक के रखा जाए। इसके साथ मिलाने का प्रयास नहीं किया जाए। इसके साथ तौलने का प्रयत्न न किया जाए। क्योंकि ऐसा करने से मानव–चेतना संबन्धी बात का अवगाहन करने में अवरोध होता है। पूर्व–स्मृतियों को छोड़ कर यदि वस्तु पर ध्यान दिया, वस्तु के प्रयोजन पर ध्यान दिया – तो उससे अपना गति बनता है। इस **विकल्प** का जो प्रस्ताव है – उससे कोई वास्तविकता इंगित है, आपकी कल्पना यदि उस तक पहुँचा देता है, तो उसको स्वीकारने, बोध करने, अनुभव करने, और जीने की कड़ियों के साथ सुना जाए – तो समझ में आता है। यदि ऐसा नहीं करते हैं, तो केवल सुनने वाली बात हो गयी, सुनते हैं – फ़िर भूल भी जाते हैं। इस तरह प्रयोजन के साथ हम जुड़ते नहीं हैं।

एक सिद्धांत है – सुना हुआ चीज भूल सकता है। समझा हुआ चीज हमको भूल नहीं सकता।

प्रश्न: अपने जीने में हमने पहले गलतियां किए हैं – फ़िर अब नए सिरे से शुरुआत कैसे करें? उनका प्रभाव तो है ही मुझ पर। उसको कैसे अलग करके रखा जाए?

उत्तर: भ्रमित–अवस्था में जीता हुआ आदमी गलतियां करने में विवश होता है, गिरफ्त नहीं होता। क्योंकि सच्चाई के लिए खिड़की कहीं न कहीं हर व्यक्ति में खुली ही रहती है। सहीपन की अपेक्षा में ही हम गलती करते हैं। सहीपन की स्वयं में अपेक्षा ही अध्ययन का आधार है। यह सूत्र है। आपको मैंने कुख्यात डाकू देवी सिंह के बारे में बताया था – जिससे मैं मिला था। उसने बीसियों खून किए होंगे। उससे मैंने पूछा – क्या अपने बच्चों को यही करवाना चाहोगे? उसने उत्तर दिया – "नहीं, यह वाहियात काम है। मेरी मजबूरी है, जो मैं इसे करता हूँ। यदि मैं उनको नहीं मारूंगा तो वे मुझे मार देंगे।"

आप अपनी जिन्दगी में बहुत कुछ पहले से सुने हैं, पढ़े हैं, स्वीकारे हैं, अस्वीकारे हैं। कुछ बातों में आप विवश हैं, कुछ में प्रसन्न हैं – ये सब के साथ आप गुजरे ही हैं। इन गुजरी हुई बातों के साथ आप पूरा संतुष्ट नहीं हुए हैं। पूरा संतुष्ट होने के लिए आपके सामने यह मध्यस्थ–दर्शन का प्रस्ताव है। पूरा संतुष्ट होने का जो यह प्रस्ताव है – उसको ठीक से सुनना होगा, जीने की कड़ियों के साथ सुनना होगा – तभी आप सार्थक रूप में सुन पायेंगे, समझ पायेंगे। इस बात को आपको स्वयं में तय करना होगा। जब यह तय होता है – तब पूर्व–स्मृतियाँ suspend होता है।

सच्चाई को समझते हुए अपनी विवशता को बारम्बार रास्ते में ला कर बिछाना – उचित होगा या अनुचित होगा? इस तरह विवशता को बार बार आगे लाना समझने में लगने वाले समय को बढ़ा देता है। इसलिए यदि शीघ्रता से समझना है तो आप इस उपाय को अपना सकते हैं – अपनी विवशताओं से सम्बंधित जो बातें हैं, उनको suspend करके रखा जाए। प्रस्ताव को समझने के बाद फ़िर सोचें। चाहत के रूप में हम सभी ने शुभ को ही चाहा है। अच्छे–पन की तृषा

चाहत के रूप में हर व्यक्ति में है। जब अच्छेपन को स्वीकारने जाते हैं, तो पूर्व–स्मृतियाँ परेशान करती हैं – हमने ऐसा सोचा था, ऐसा किया था, दूसरे ने ऐसा किया था, आदि। ये गति में अवरोध करते हैं।

सर्व–शुभ का स्वरूप जब समझ में आ जाता है तो विवशताएँ अपने आप से wipe off हो जाती हैं। पत्ते का तने से चिपके रहने का ताकत जब तक रहता है – वह चिपके रहता है। जब कभी भी वह ताकत समाप्त हो जाता है, पत्ता अपने आप से नीचे झड़ कर गिर जाता है। इस तरह जो हमारे पुराने निरर्थक सोच–विचार जो स्मृतियों के रूप में हैं, वे समझ स्वयं में स्थापित होने पर अपने आप झड़ जाते हैं। उनका कोई नामोनिशान नहीं रहता।

जीव–चेतना में हमने जितनी भी विवशताओं का अम्बार लगाया हो – वह एक कागज़ के टपोरे जैसा ही है। इस टपोरे को ढेर करने के लिए एक चिंगारी ही पर्याप्त है। भ्रम स्वयं में पतंगा जैसे हिलता ही रहता है। भ्रम में जीता आदमी अपने सुखी होने का प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाता है – इसलिए उसका जड़ ही हिला रहता है। इसीलिये समझ में आने पर वह उखड जाता है। भ्रम से बनी हुई जितनी भी स्वीकृतियां हैं – वे भय, प्रलोभन, और आस्था के रूप में ही हैं। इसके अलावा भ्रम का और कोई पहुँच कुछ भी नहीं है।

आप एक बार सन्मार्ग के लिए, सदबुद्धि के लिए, सद्प्रवृत्ति के लिए एक बार कल्पना करके तो देखिये! शब्दों से इंगित वस्तु हमारी कल्पना में आ जाए, उसको अनुभव–प्रमाण पूर्वक अपने जीने में प्रमाणित होने की कड़ियों के साथ कल्पना करके देखिये। कल्पना तो जीवन में रहता ही है। इसमें किसको क्या तकलीफ है? समझने के बाद सोचिये समझ के अनुसार जीना है या नहीं?

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७, अमरकंटक) **(अध्याय: 3–3.2, पेज नंबर 333–336)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/04/blog-post_2992.html

प्रश्न : आपके प्रस्ताव के अनुसार मानव या तो “भ्रमित” है या “जागृत” है। भ्रम और जागृति के बीच क्या है?

उत्तर : भ्रम और जागृति के बीच कड़ी है अध्ययन या फिर है अनुसंधान। जो करना है, वही कर लो। भ्रम = समस्या। जागृति = समाधान। समाधान चाहिए या नहीं? समाधान प्राप्त करने के लिए दो ही विधियाँ हैं **विकल्पात्मक** अध्ययन अथवा अनुसन्धान (समाधि–संयम)। सामान्य रूप में अध्ययन विधि सुगम है, अनुसंधान विधि कठिन है। **(अध्याय: 3–3.2, पेज नंबर 344)**